ऋग्वेद

ऋग्वेद

(चतुर्थ खंड)

(सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चार वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ,
१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग
१५० हिन्दी ग्रन्थों के रचियता

—*—

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब
बरेली (उ० प्र०)

※

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

※

मुद्रक :
दाऊदयाल गुप्त,
सस्ता साहित्य प्रेस, मथुरा

※

संशोधित जनोपयोगी संस्करण
१९७२

※

प्र० आठ रुपये

सूक्त ६९

(ऋषि—हिरण्यस्तूपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिर्वत्सो मातुरुपसर्ज्यू धनि ।
उरुधारवे दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२
अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतोमदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३
उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्तिनिष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४
अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परिव्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५।२१

धनुष पर बाण चढ़ाने के समान ही हम क्षरणशील इन्द्र में अपने स्तोत्रों को चढ़ाते हैं । दुग्ध से पूर्ण स्तनों के साथ बछड़ा जन्म लेता हैं, उसी प्रकार इन्द्र के प्राकट्य के साथ ही हम सोम की सृष्टि करते हैं । गौ के बछड़े के पास जाने के समान ही इन्द्र स्तोताओं द्वारा दिये जाने वाले सोम के निमित्त आगमन करते हैं ।१। इन्द्र के लिए ही सोम को सींचते हैं । इन्द्र के लिए ही स्तुतियाँ की जाती और हर्ष वाली रस धारायें इंद्र के मुख में सींची जाती हैं । जैसे रण कुशल वीर द्वारा प्रेषित वाण शीघ्र ही लक्ष्य को प्राप्त होता है वैसे ही घरों में रखे हुए क्षरण-शील मधुर, हर्ष प्रदायक और प्रवृद्ध सोम गति करते हुए मेष लोम के छन्ने पर पहुंचते हैं ।२। जिन वसतीवरी जलों में सोम का शोधन किया जाता और फिर उन्हें मिलाया जाता है, वह जल उन सोमों की स्त्री के समान है, जिससे मिलने के लिए वह मेष लोम पर गिरते हैं । यही सोम पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली औषधियों द्वारा सत्य कर्म रूप यज्ञ में जाकर यजमान को फल से सम्पन्न करते हैं । यह सोम शत्रु की सामर्थ्य को अपने तेज से घटाते और शत्रुओं का उल्लंघन करते हैं । सबके यज्ञ

योग्य वह हरे रङ्ग के सोम, घरों में एकत्र होते हैं ।३। देवता के लिए पवित्र किये गए स्थान पर जैसे देवता गमन करते हैं वैसे ही गौऐं सोम के स्थान पर गमन करती हैं । यह क्षरणशील सोम शब्द करते हुए मेष लोम वाले उज्ज्वल छन्ने को पार करते हैं । यह शुभ्र कवच के समान गव्यादि से अपने देह को आच्छादित करते हैं ।४। स्वर्ग के पृष्ठ भाग पर आरूढ़ सूर्य को पाप रहित शुद्धि के लिए प्रतिष्ठित किया । आकाश-पृथिवी के ऊपर इस सूर्य रूप तेज को सबको पवित्र करने के लिए स्थापित किया, यह अमृत गुण वाले हरे रङ्ग के सोम निष्पीडन काल में वस्त्र के द्वारा सब ओर ढके जाते हैं ।५। (२१)

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥६

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो मातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ।

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद् गोमद्यवमत्सुवीर्यम् ।
यूयंहिसोमपितरोममस्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥८

एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथाइव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रि हरितो वृष्टिमच्छ ॥९

इन्द्रविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृलीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यापृथिवी प्रावतं नः ॥१०।२२

यह सोम शत्रुओं के मर्दन करने वाले, चमसों में स्थित, सूर्य की किरणों के समान सब ओर प्रवाहित होने वाले हैं । यह सूत के बने वस्त्रों के द्वारा सब ओर जाते हैं और इन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी देवता के लिए नहीं गिरते ।६। नदियाँ जैसे समुद्र में जाती हैं, वैसे ही यह सोम ऋत्विजों के द्वारा निष्पीडन होकर इन्द्र के पास जाते हैं । हे सोम ! हमको अन्न पुत्रादि धन प्रदान करो । हमारे घर में सन्तान

और शत्रुओं को सुख दो ।७। हे सोम ! तुम मेरे पितरों के भी उत्पन्न करने वाले हो, अतः तुम मेरे स्वर्गादि लोकों पर स्थित हविरन्न के करने वाले एवं पितर ही हो । हे सोम ! तुम हमको गौ, अश्व, अन्न, भूमि और सुवर्णादि से सम्पन्न धन प्रदान करो ।८। पाषाणों द्वारा निष्पीडित सोम मेघ लोम के छन्ने को पार करते हैं । हरे रंग के सोम वृद्धावस्था को हटाकर वृष्टि प्रेरणा के लिए गमन करते हैं । इन्द्र के रथ के रणक्षेत्र में गमन करने के समान ही निष्पन्न सोम इन्द्र के आश्रय में जाते हैं ।९। हे सोम ! तुम इन्द्र को हर्ष प्रदान करने वाले, शत्रुओं के जेता और निन्दा रहित हो । तुम इन महानकर्मा इन्द्र के लिए क्षरित होओ और मुझ स्तोता को आनन्ददायक धन प्रदान करो । हे द्यावापृथिवी ! तुम अपने श्रेष्ठ धनों से हमारा पालन करो ॥१०॥ (२२)

सूक्त ७०

(ऋषि—रेणुर्वैश्वामित्रः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥४

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५।२३

यज्ञों में जब सोम प्रवृद्ध किये गए तब उन्होंने चार जलों को शोधन-गुण प्रदान किया, उन यज्ञ स्थित सोमों के लिए इक्कीस गौऐं दूध दुहती हैं।१। जब याज्ञिकों ने जल की याचना की तब सोम ने ही आकाश-पृथिवी को जल से भरा। यह सोम अत्यन्त उज्ज्वल जलों को अपनी महिमा से आच्छादित करते हैं। हवियों से सम्पन्न ऋत्विक् इन दीप्त सोम के स्थान के ज्ञाता हैं।२। सोम की अवध्य तरंग सब प्राणियों का पोषण करने वाली हों। अपनी इन्हीं तरंगों के द्वारा यह सोम देवताओं के योग्य हव्य प्रदान करते हैं। जब इन सोम का संस्कार हो जाता है, तभी इनके लिये स्तुतियाँ गमन करती हैं।३। क्षरणशील सोम यज्ञादि की, जल-वृष्टि के निमित्त रक्षा करते और अन्तरिक्ष से पृथिवी के प्राणियों को देखते हैं। दस उँगलियों द्वारा संस्कारित सुन्दर-कर्मा सोम अन्तरिक्ष की मध्यमा वाणी में निवास करते हुए लोकों को देखते हैं।४। आकाश-पृथिवी में वर्तमान सोम इन्द्र को हर्षित करने के लिये छन्ने द्वारा शुद्ध होते हुए सब ओर गमन करते हैं। रणक्षेत्र में योद्धा जैसे शत्रु-पक्ष को वाणों से बींधता है, वैसे ही यह सोम दुःख देने वाले राक्षसों को ललकारते हुए उन्हें अपने बल से बींधते हैं ॥५॥

(२३)

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥६
रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आयोनिंसोमः सुकृतंनि षीदति गव्ययीत्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥७
शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसव्थे हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥८

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरानोवाधद्दुरितातिं पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥६
हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व ।
नावानसिन्धुमतिपर्षिविद्वाञ्छूरोनयुध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०॥२४

जैसे मरुद्गण शब्द करते हुए गमन करते हैं, जैसे बछड़ा गौ को देखकर शब्द करता हुआ उसकी ओर जाता है, वैसे ही मातृभूत आकाश-पृथिवी को देखते हुए यह सोम शब्द करते सर्वत्र गमन करते हैं। यह सोम मनुष्यों का कल्याण करने वाले जल के ज्ञाता होते हुए, मेरे अतरिक्त अन्य किस पुरुष के स्तोत्र की कामना करेंगे ? ।६। यह पवनमान सोम जल की वर्षा करने वाले, शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष और सर्वदर्शक हैं ! यह दो हरे रङ्ग की धारा रूप सींगों को तीक्ष्ण करते हुए शब्द करते और द्रोण कलश में स्थित होते हैं ।७। यह हरे रङ्ग वाले सोम अपने रूप को शोधते हुए ऊँचे होकर छन्ने पर चढते हैं। फिर मित्र, वरुण और वायु के निमित्त दधि दुग्ध और जलादि से मिश्रित होकर श्रेष्ठ कर्म वाले ऋत्विजों द्वारा अर्पित किये जाते हैं ।८। हे सोम ! इन दुर्गम राक्षसों द्वारा पीड़ित किये जाने के पूर्व ही उनसे हमारी रक्षा करो। तुम जल-वृष्टि करने वाले हो, अतः देवताओं के निमित्त बरसो। इन्द्र के उदर में आश्रित होओ जैसे मार्ग के जानने वाला व्यक्ति पथिक का मार्ग-दर्शन करता है वैसे ही तुम हमारे लिये यज्ञ-मार्ग का दर्शन कराओ ।९। रणभूमि को प्रेरित अश्व जैसे गमन करता है वैसे ही तुम ऋत्विजों की प्रेरणा से द्रोणकलश को प्राप्त होओ। हे सोम ! इनके पश्चात् इन्द्र के उदर में सिंचित होओ। मल्लाह जैसे नदी से पार करते हैं, वैसे ही तुम हमको पार लगाओ और हमारी रक्षा के लिये निन्दा करने वाले शत्रुओं का संहार कर डालो ।१०।

(२४)

सूक्त ७१

(ऋषि—ऋषिभोवैश्वामित्रः । देवता—पवमानः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या सदंवेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।

हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो ब्रह्म निर्णिजे ॥१
प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥२
अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥३
परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥४
समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५।२५

इस यज्ञ में बली सोम द्रोण-कलशों में स्थित हैं। ऋत्विजों को दक्षिणा प्रदान की जा रही है। सोम ने आकाश-पृथिवी का अन्धकार नष्ट करने के लिए आदित्य को आकाश में आरूढ़ किया। यही सोम आकाश को जल-धारण करने वाले बनाते हैं और यही सोम विद्वेषी असुरों से स्तोताओं की रक्षा करते हैं।१। शत्रु के संहार में प्रवृत्त वीर के शब्द करने के समान ही सोम शब्द करते हुए गमन करते हैं। यह युवा होकर असुरों के लिए बाधा देने वाले बल को उत्पन्न करते हैं। यह द्रव-रूप से द्रोण-कलश में पहुंचते हुए, छन्ने में अपने रूप को निखारते हैं।२। भुजाओं के बल से पत्थरों द्वारा कूटे गये सोम पात्रों में गमन करते हैं। वृष के समान आचरण करने वाले यह सोम स्तोतों से प्रसन्न होते हुए अन्तरिक्ष में पहुंचते हैं। जल से शुद्ध होने वाले यह सोम हवि वाले यज्ञ में पूजित होते और स्तोताओं को धन प्रदान करते हैं।३। यह सोम शत्रु-पुरों के विध्वंसक इन्द्र को तृप्त करते हैं। यह स्वर्ग में वास करने वाले और मेघों के बढ़ाने वाले हैं। हवि सेवन करने वाली गौएं अपने दूध को सोम में मिश्रित होने पर इन्द्र को प्रेरित करती हैं।४। जैसे रथ को प्रेरित करते हैं, वैसे ही दसों उंगलियाँ सोम को यज्ञ में प्रेरित कर रही हैं। जब स्तोतागण सोम के

स्थान को निश्चित करते हैं, तब गौओं का दूध उस स्थान पर गमन करता है ॥५॥ [२५]

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृत हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवां अप्येति यज्ञियः ॥६
परा व्यक्तोअरुषोदिवः कविर्वृषा त्रिपृष्टो अनविद्ध गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥७
त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दव्यं जनंस सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥८
उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुनापश्यते जाः ॥९।२६

बाज अपने घोंसले में जाता है, उसी प्रकार क्षरणशील सोम अपने कर्म में उपलब्ध गृह में गमन करते हैं। यज्ञ योग्य सोम देवताओं के पास उसी प्रकार जाते है जैसे भेजा हुआ घोड़ा जाता है । यज्ञ में स्तोता इस सोम की स्तुति करते हैं ।६। यह अभीष्ट पूरक, त्रिपृष्ठ, सुन्दर, जल से सिक्त सोम शुद्ध होकर कलश में गमन करते हैं । वे विभिन्न पात्रों में आवागमन करते हुए सोम स्तुतियों के प्रति शब्दवान् होते हैं । अपने उषाओं में निष्पन्न होने वाले सोम शब्द करते हुए शोभा पाते हैं ।७। शत्रुओं का शमन करने वाले सोम की दीप्ति अपने रूप को निखारती है । वह युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं का नाश करती है और हव्य के सहित देवोपासक के पास पहुंचती हुई स्तुतियों से सुसंगत होती है । स्तोताओं द्वारा पशुओं की प्रशंसा करने वाली वाणी से यह सोम संगति करते हैं ।८। गौओं को देखकर बृष शब्द करता है । उसी प्रकार सोम भी स्तुतियों के प्रति शब्दवान् होते हैं । यह सोम आकाश में उत्पन्न तथा भले प्रकार गमन करने वाले हैं । वे सूर्य रूप से आकाश से स्थित होकर पृथिवी को और प्रजाओं को देखते हैं ॥९॥ [२६]

सूक्त ७२

(ऋषि—हरिमन्तः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ।।१
साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यद्वादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीलाभिर्दशभिः काम्यं मधु ।।२
अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिःक्षेति जामिभिः ।
नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरन्धिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ।।४
नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ।।५।२७

हरे रंग के सोम को ऋत्विग्गण शुद्ध करते हैं । कलश स्थित सोम स्तोताओं द्वारा स्तुति होने पर सोम शब्द करते और सुन्दर धन प्रदान करते हैं ।१। जब इन्द्र के जठर ऋत्विजों द्वारा सोम का दोहन किया जाता है, तब स्तोतागण समान मन्त्र का उच्चारण करते हैं । उस समय कर्मनिष्ठ पुरुष इस कामना के योग्य सोम का निष्पीडन करते हैं ।२। देवताओं को प्रसन्न करने के लिये पात्र स्थित सोम दुग्ध आदि से मिश्रित होते है, तब सोम-पुत्री उषा के शब्द की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता । श्रेष्ठ हाथों से निष्पन्न सोम परस्पर एकत्र होते यज्ञ-तत्र गमनशीला उंगलियों से संगति करते हैं । उस समय स्तोतागण उनकी स्तुति करते हैं ।३। हे इन्द्र ! कर्म का नेतृत्व करने वाले ऋत्विजों द्वारा संस्कारित यह सोम तुम्हारे लिए क्षरित होता है । यह देवताओं को प्रसन्न करने वाला सोम अनेक कर्म वाला,पात्रों में प्रवाहित, पुरातन,

यज्ञ साधक है । यह छन्ने में छनता हुआ धारा रूप से तुम्हारे निमित्त ही पात्रों में क्षरित होता है ।४। हे इन्द्र ! कर्मवानों के बाहुओं द्वारा प्रेरित सोम तुम्हारी पुष्टि के लिए निष्पन्न होकर आगमन करते हैं । तब तुम सोम को पीकर शत्रुओं को जीतते और कर्मों को पूर्ण करते हो । पक्षियों के वृक्ष पर बैठने के समान ही यह हरित सोम निष्पीडन के लिये प्रस्तुत हैं ।५।

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥६
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥७
स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षान्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो विभर्ग्विसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशंगं वहुलं वसीमहि ॥८
आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्य सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधिस्तोत्रस्य पवमान नोगहि ॥९॥२८

मेधावी ऋत्विग् शब्दवान् सोम का निष्पीडन करते हैं । फिर उत्पादन में समर्थ गौऐं और मनन योग्य स्तोत्र सुसंगत होकर सोम से उत्तर वेदी पर एकाकार करते हैं ।६। यह कामनाओं के वर्षक सोम धन, सम्पन्न, आकाश के धारक ऋत्विजों द्वारा उत्तर वेदी पर अवस्थित जलों में सिक्त एवं इन्द्र के वज्र रूप हैं । यह मधुर रस से युक्त होकर इन्द्र को सुखी करने के लिए गिरते हैं ।७। हे सोम ! तुम पृथिवी पर मनुष्यों के लिए क्षरित होओ । हे श्रेष्ठ कर्म वाले ! तीनों सवनों में तुम्हारा अभिषवकर्ता तुमसे धन प्राप्त करे । हे सोम ! हम विविध स्वर्णादि धनों को प्राप्त करें । हमारे पुत्रादि और धनों को हमसे पृथक् मत करना ।८। हे सोम ! हमको अश्वों से युक्त सहस्र संख्यक धन प्रदान करो । तुम हमको अपरिमित दूध देने वाली गौओं से युक्त तथा अन्य शत्रुओं के सहित धन दो । हे पवमान सोम ! हमारी स्तुतियों के प्रति आगमन करो ।९। [२८]

सूक्त ७३

(ऋषि– पवित्रः । देवता–पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतःसमतःसमस्वरन्नृतस्ययोना समरन्तनाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ।।१
सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि मेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ।।२
पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ।।३
सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ।।४
पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामपधमन्तिमायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ।।५।२६

यज्ञ-स्थान में सोम की तरंगें उन्नत होती हैं । सोम-रस ऊपर उठते हैं । यह सोम मनुष्य के उपभोग के लिये तीनों लोकों को उपयुक्त करते हैं। नौका के समान, इस सोम की चार स्थलियाँ यजमान को इच्छित फल देने वाली होती हुई पुजती हैं ।१। स्वर्गादि की कामना करने वाले मुख्य ऋत्विज् प्रवाहमान जलों में सोम को प्रेरित करते हैं । इस सोम को सब मिलकर निष्पन्न करते हैं । श्रेष्ठ स्तुतियाँ करने वाले स्तोताओं द्वारा इस हर्षप्रदायक सोम की धाराऐं प्रवृद्ध होती हैं ।२। सोम की किरणें अन्तरिक्ष में निवास करती हैं । किरणों के पिता सोम किरणों के तेज की रक्षा करते हैं । अपने तेज से विश्व को ढक लेने वाले सोम किरणों द्वारा अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं । सब के धारण करने वाले जलों में ऋत्विगण सोम को मिश्रित करते हैं ।३। अन्तरिक्ष में सहस्र धारों से निवास करने वाले सोम की धाराऐं पृथिवी पर बरसती हैं । आकाश के ऊपर अवस्थित कल्याण कारिणी रश्मियाँ, मधुर जीभ वाली

और शीघ्र-गामिनी होती है। सोम की यह रश्मियाँ पापियों के लिये विघ्नरूप होती हैं।४। आकाश-पृथिवी में अधिक उत्पन्न होने वाली सोम की रश्मियाँ ऋत्विजों के स्तोत्रों से प्रदीप्त होती हैं। वे अकर्मण्यों का नाश करती हुई, असुरों को पृथिवी और आकाश से भी इन्द्र के निमित्त दूर भगाती हैं।५। (२९)

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरच्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥६
सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥७
ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे ।
विद्वान्त्स विश्वाभुवनाभिपश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥८
ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९।३०

यह शीघ्रगामिनी सोम किरणें अन्तरिक्ष से एक साथ उत्पन्न हुईं। उन किरणों को देवताओं की स्तुतियों के विरोधी, दुष्टों के साथी, चक्षुवीनहु पापी मनुष्य नहीं पा सकते।३। सुन्दर कर्म वाले ऋत्विज् अनेक रश्मियों वाले, बिछे हुए छन्ने में अवस्थित सोम की स्तुति करते हैं। जो मरुद्गण की माता वाणी का स्तव करते हैं, उनकी बात को मरुद्गण टालते नहीं। वे मरुद्गण द्वेष-रहित, अहिंसनीय, सुन्दर गति वाले और कर्मों का नेतृत्व करने वाले हैं।७। यह सोम अग्नि, वायु और सूर्य इन तीनों तेजस्वी रूपों को धारण करते हैं। इनके सामने कोइ अहंकार नहीं कर सकता। यह यज्ञ की रक्षा करने वाले सूर्य रूप सोम सब लोकों को देखते हुए अकर्मण्य पुरुषों का संहार करते हैं।८। यज्ञ को बढ़ाने वाले यह सत्य रूप सोम मेषलोम वाले छन्ने में वसतीवरी में निवास करते हैं। उन सोमों को कर्म करने वाले ही पाते हैं। कर्म से रहित पुरुष सोमों को प्राप्त नहीं कर सकता, वह नरक को प्राप्त होता है।९। (३०)

सूक्त ७४

(ऋषि—काशीवान् देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१
दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२
महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३
आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४
अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५।३१

यह बलवान् घोड़े के समान वेगवान् सोम स्वर्ग के आश्रित होने की कामना करते हैं। वसतीवरी जलों में जन्म लेने वाले सोम बालक के समान नीचे की ओर मुख करके रुदन करते हैं। आकाश स्थित सोम औषधियों के रसरूप से भूमि पर आने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार के इन सोमों से हम सुन्दर स्तुति करते हुए धनों से सम्पन्न घर को याचना करते हैं।१। यह सोम सब ओर बढ़ने वाले सब के धारण करने वाले और आकाश को टिकाने वाले हैं। इस पात्र स्थित सोम की धाराएँ सब ओर जाने वाली हैं। यह सोम महिमामयी आकाश-पृथिवी को अपने सामर्थ्य से पूर्ण करें और स्तोताओं को अन्न प्रदान करें। इन सोम ने ही सुसंगत हुई आकाश पृथिवी को धारण किया है।२। संस्कारित सोम अत्यन्त मधुर और सुस्वादु होता है, यह इन्द्र के लिए अत्यन्त प्रिय है, इन्द्र का पृथिवी पर आने वाला मार्ग चौड़ा है। वे इन्द्र जल की वर्षा करने वाले, यज्ञ के नेता और गौओं के हितकारी हैं।३।

सूर्य मण्डल से वह सोम घृत और दूध का दोहन करते हैं। इससे जल रूप अमृत उत्पन्न होता है, क्योंकि यह यज्ञ की नाभि के समान है। दाता सोम इन सोमों से मिल कर प्रसन्नताप्रद होते हैं। इनकी रश्मियाँ वृष्टि करती हैं।४। ऋत्विजों द्वारा जल में मिश्रित करने पर सोम शब्दवान् होते हैं। उनका प्रवाहमान शरीर देवताओं का पालन करने वाला है। यह सोम अपनी रश्मियों से ही औषधियों में उत्पन्न होते हैं। हम भी उन सोम से ही दुःख को नष्ट करने वाला पुत्र पाते हैं।५। (३१)

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो विहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥६
श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मोढ्वां असुरो वेदभूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कबन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७
अध श्वेतं कलश गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८
अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमानधावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमानपीतये ॥९।३२

परस्पर संयुक्त सोम की किरणें स्वर्ग से पृथिवी पर क्षरित होती हैं। यह अनेक धाराओं के रूप में स्वर्ग से नीचे वास करते हैं। यही सोम किरणें जल वृष्टि के रूप से देवताओं के लिए हव्य उत्पादन करती हैं।६। कामनाओं की वर्षा करने वाले बलवान् सोम स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं। यह अपने आश्रय स्थान पात्रों को भी उज्ज्वल करते हैं। यह अपनी बुद्धि से कर्म को पाते हुये जल वाले मेघ की वृष्टि के लिये विदीर्ण करते हैं।७। यह सोम श्वेत दुग्ध वाले कलश का अश्व के समान उल्लंघन करते हैं। देवताओं की कामना वाले ऋत्विज सोम की स्तुति करते हैं। कक्षीवान् ऋषि की प्रार्थना पर यह सोम उन्हें पशु प्रदान करते हैं।८। हे सोम! जल में मिला हुआ तुम्हारा

रस छन्ने पर पहुँचता है। हे हर्षकारी सोम! तुम अत्यन्त श्रेष्ठ हो। सुन्दर कर्म वाले ऋत्विजों के द्वारा संस्कारित होकर इन्द्र के पीने के लिए तुम मधुर रस से सम्पन्न होओ ।८। (३२)

सूक्त ७५

(ऋषि--कवि । देवता—पवमानः सोमः । छन्द--जगती)

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधियेषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथ विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ।।१
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ।।२
अव द्युतानिः कलशां अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ।।३
अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्नोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ।।४
परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभि- पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये तं मदाआहतसोविहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवेमघम् ।।५।३३

यह सोम जल के चारों ओर गिरते हैं यह अन्न के लिए बढ़ाने वाले हैं। यह सोम जल से ही स्वयं बढ़ते हैं और सूर्य के रथ पर आरूढ़ होकर सब के द्रष्टा होते हैं।१। सोम कर्मों का पालन करने वाले, अहिंसित और शब्दवान् हैं। यह अत्यन्त प्रिय रस को क्षरित करते हैं। आकाश को दीप्त करने वाले सोम निष्पीड़ित होने पर पुत्र नाम धारण करते हैं उनके इस नाम को उत्पन्न करने वाले नहीं जानते ।२। अभिषव स्थान पर ऋत्विजों द्वारा स्थापित सोम को यज्ञ का दोहन करने वाले ऋत्विज ही निष्पन्न करते हैं। तीन सवनों वाले सोम, यज्ञ के दिनों में प्रातःकाल अधिक सुशोभित होते हुए कलश में शब्द करते हैं।३। अन्न के लिए उपयोगी वह सोम पाषाणों से निष्पन्न किये जाते हैं। छन्ने पर जाते हुए आकाश पृथिवी को तेज से पूर्ण करते हैं, जलों में मिले

हुए इन सोमों की धारा छन्ने पर बहती है ।४। हे सोम ! तुम हमारे सुख के निमित्त आगमन करो। तुम कर्म के द्वारा शुद्ध होकर दूध में मिश्रित होओ । तुम शत्रुओं का नाश करने वाले, प्रतिज्ञा युक्त, अभिषुत और महान् होओ । ऐसे सोम धन प्रदान करने वाले इन्द्र को हमारे पास प्रेरित करे ।५।

सूक्त ७६

(ऋषि—कविः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः–त्रिष्टुप्, जगती)

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजनो अत्यो न मत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥१
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्नथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्तपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२
इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्राणः पिन्व विद्युदभ्रे व रोदसीधिया नवाजांउा मासिशश्वतः ॥३
विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृंश ऋतस्य धीतिमृषिषालवीवशत् ।
य सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥४
वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे बृषभः कनिक्रदत ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥५॥१

यह सोम अन्तरिक्ष से गिरते हैं। यह सब के धारण करने वाले हैं। यह बल के बढ़ाने वाले शुद्ध होने योग्य हरे रङ्ग के ऋत्विजों द्वारा स्तुत्य हैं। अपने वेग को वसतीवरी जलों में अश्व के समान प्रकट करते हैं ।१। इन सोमों ने गौओं की खोज के समय स्वर्ग की कामना की थी। इन्होंने यजमानों को रथ प्राप्त कराये थे। यह वीरों के समान आयुधों से सज्जित सोम इन्द्र के बल को चैतन्य करने के लिए दुग्धादि से मिश्रित किये जाते हैं ।२। हे सोम ! तुम बढ़ाये जाने पर इन्द्र के उदर में प्रविष्ट होओ । तुम अपने कर्मों को करते हुए, विद्युत द्वारा मेघ को दुहने के समान आकाश पृथिवी का दोहन कर अन्न

प्रदान करते हो ।३। यह सत्यभूत सोम सबके देखने वाले विश्व के स्वामी सब में श्रेष्ठ हैं । इन क्षरणशील सोम ने इन्द्र को कर्मों की प्रेरणा दी । इन सोम के कर्म को विद्वान् पुरुष भी नहीं जानते । हमारी स्तुति को पुष्ट करने वाले सोम सूर्य की निम्नमुखी रश्मियों से शुद्ध होते हैं ।४। हे सोम ! तुम वर्षणशील, शब्दवान् और हर्षप्रदायक होते हुए गौओं को प्राप्त होने वाले वृष के समान अन्तरिक्ष से द्रोण-कलश को प्राप्त होते हो । तुम इन्द्र के लिए ही गिरते हो । तुम्हारी रक्षा में निर्भीक रहते हुए हम संग्राम में जीतेंगे ।५। (१)

सूक्त ७७

(ऋषि—कविः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

एष प्र कोशे मधुमां अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा धृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१
स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युक्ते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाहं बिभ्युषा ॥२
ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
इक्षेण्यासो अह्यो न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥३
अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्रावा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥४
चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५

यह सोम बीज-वपन करने में समर्थ, मधुर रस से पूर्ण और इन्द्र के वज्र के समान विकालकर्मा हैं । इनकी धाराऐं जल वृष्टि वाली, शब्द-मती और फलों को प्राप्त करने वाली हैं । यह धाराऐं पयस्विनी गौओं के समान गमन करती हैं ।१। माता द्वारा प्रेरित बाज आकाश में उनसे प्राचीन क्षरणशील मधुर रस से सम्पन्न सोमों को पृथिवी पर

लाया था। वे सोम तृतीय लोक को पृथक् करने वाले तथा मधुर दुग्धादि से मिश्रित होने वाले हैं।२। यह सोम हव्य सेवन करने वाले रमणीय और सुन्दर हैं। मुझ गौओं से सम्पन्न स्तोता को यह सोम अन्न प्राप्त कराने के लिये मिलें।३। यह क्षरणशील उत्तरवेदी में अवस्थित, अनेकों द्वारा स्तुत और शत्रुओं के हननकर्त्ता हैं। वे हमारे शत्रुओं का संहार करें। यह सोम हमारी पयस्विनी गौओं की वृद्धि करें और औषधियों को गुण वाली करें।४। यह अहिंसनीय, रस वाले, सब के जनक सोम वरुण के समान महान् कर्मा हैं। आपत्ति-काल में इन विचरणशील सोमों को निष्पन्न किया जाता है। यह सेंचन-समर्थ सोम शब्द करते हुए कलश में गिरते हैं ॥५॥ (२)

सूक्त ७८

(ऋषि—कविः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती)

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसनो अभि गा इयक्षति।
गृभ्णातिरिप्रभरविस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप यातिनिष्कृतम् ॥१
इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२
समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ताईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नंपवमानमक्षितम् ॥३
गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जि दब्जित्पवते सहस्रजित्।
य देवा सश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४
एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि।
जहि शत्रु मन्तिकेदूरके च य उर्वींगव्यूतिभयं च नस्कृधि ॥५॥३

सोम के असार भाग छन्ने पर ही रह जाते हैं और शोधित रस-भाग अपने स्थान को प्राप्त होते हैं। जलों को आच्छादित करते हुए यह सोम स्तुतियों की ओर शब्द करते हुए गमन करते हैं।१। हे सोम! ऋत्विजों द्वारा तुम इन्द्र के निमित्त प्रस्तुत किये जाते हो। हे मेधावान्!

तुम जल में मिलाये जाकर यजमानों द्वारा बढ़ाये जाते हो। तुम्हारे क्षरण के अनेक छिद्र हैं और हरे रंग की तुम्हारी रश्मियाँ भी असंख्य हैं ।२। अन्तरिक्ष की रश्मियाँ यज्ञ स्थान पर पात्रों में रखे सोमों को गिराती हैं। वे रश्मियाँ ही इस यज्ञ गृह को समृद्ध करने वाले सोम की वृद्धि करती हैं। इस सोम से स्तोतागण अक्षय सुख की याचना करते हैं ।३। यह सोम सुवर्ण, गौ, अश्व, रथ आदि महान् ऐश्वर्यों को पराभूत करने वाले हैं। यह हर्षदाता, अरुण, रसयुक्त और सुखदायक सोम पीने के लिये बनते हैं ।४। हे सोम ! तुम हमारी इच्छित सब वस्तुओं को सत्य करते हो। तुम पास या दूर के शत्रुओं का वध करो। तुम हमारे मार्गों को भय-रहित करो ।।५।। (३)

सूक्त ७९

(ऋषिः—कविः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिदेषु हरय ।
वि च नशन्न इषो आरातयऽर्यो नशन्त सन्निषन्त नो धियः ॥१
प्रणो धन्वन्त्विन्दवो सद्च्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मतस्य कस्य चित्परिह्वृतिवयंधनानि विश्वधा भरेमहि ॥२
उता स्वस्याअरात्याअरिर्हि ष उतान्यस्याआरात्या वृको हि षः ।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥३
दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहः सानविक्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्यप्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥४
एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमाननितारिष आविस्ते शुष्मोभवतु प्रियो मदः ॥५।४

हरे रङ्ग वाले यह सोम क्षरणशील हैं। यह हमारे होते हुए यज्ञ में लाये जावें। हमारे अन्न को नष्ट करने वाले शत्रु स्वयं ही नाश को प्राप्त हों। अनुष्ठान को देवगण स्वीकार करें ।१। सोम के प्रभाव से हम पराक्रमी शत्रुओं को भी खदेड़ दें। हमारे पास शक्तिशाली सोम धन

के सहित आगमन करें। हम बलवानों के बल को भी नष्ट करने वाले होकर सदा धन पाते रहें।२। हे सोम ! जैसे बंजर में पानी न होने से प्यास साथ रहती है वैसे तुम अपने और हमारे शत्रुओं के पीछे लगकर उनका नाश करते हो। हे सोम ! तुम क्षरणशील हो। तुम उन शत्रुओं को क्षरित करो।३। हे सोम ! द्युलोक में स्थित तुम्हारा परम अंश पृथिवी पर क्षरित हो गया, जिससे पर्वतों पर वृक्षों की उत्पत्ति हुई। हे सोम ! तुम्हें पाषाणों से कूट कर विद्वान् ऋत्विज जल में मिश्रित करते हैं।४। हे सोम ! अनुभवी ऋषि तुम्हारे उज्ज्वल रस को निचोड़ते हैं। तुम अपने हर्ष प्रदायक, बलदाता और प्रिय लगने वाले रस को सींचो और हमारी निन्दा करने वाले शत्रुओं का नाश करो ।।५।।

(४)

सूक्त ८०

(ऋषि—वसुर्भारद्वाजः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।
वृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ।।१
य त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ।।२
एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमंगलः ।
प्रत्यङ्स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीलन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ।।३
तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।
नृभिःसोमप्रच्युतोग्रावभिःसुतोविश्वान्देवांआपवस्वासहस्रजित् ।।४
तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिंधोरिवोर्मिःपवमानो अर्षसि ।।५।५

यह सोम यजमानों का देखने वाला है। इसकी क्षरित होने वाली धारा यज्ञ के द्वारा देवताओं को पूजती है। यह सोम स्तुतियों से प्रदीप्त

होते हैं। यज्ञ के सोम-सवन समुद्र के समान महिमामयी पृथिवी को व्याप्त करते हैं।१। हे सोम ! तुम अन्न से सम्पन्न हो। अक्षीण स्तुतियाँ तुम्हारा स्तव करती हैं। तुम दीप्त होकर अपने श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त होते हो। तुम हविर्युक्त यजमानों की आयु-वृद्धि करते हुए उनको यश से सम्पन्न करो। हे वर्षक सोम ! तुम इन्द्र के लिये क्षरित होओ।२। यह अत्यन्त बलकारक रस से युक्त सोम सब प्राणियों को बढ़ाने और यजमानों को अन्न प्राप्त कराने के लिये इन्द्र के उदर में बैठते हैं। यह वर्षणशील, हरे रङ्ग के सोम यज्ञ-वेदी पर क्षरित होते हुए खेल रहे हैं।३। हे सोम ! तुम पाषाणों द्वारा कूटे जाकर मनुष्यों की दस उँगलियों द्वारा निचोड़े जाते हो। तुम अत्यन्त मधुर और असंख्य धाराओं वाले को इन्द्र के लिये निष्पन्न किया जाता हैं। तुम देवताओं के लिए बहते हुए, हमारे लिए धन के जीतने वाले होओ।४। यह सोम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हैं। सुन्दर भुजा वाले पुरुष की दशों उँगलियां, इसका शोधन करती है। हे सोम ! तुम इन्द्र को हर्ष प्रदान करते हुए, समुद्र की लहरों के समान अन्य देवताओं को भी प्राप्त होते हो ।।५।। (५)

सूक्त ८१

(ऋषिः—वसुर्भारद्वजः। देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—जगती त्रिष्टुप्)

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः।
दध्ना यदीमुन्नीता गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ।।१
अच्छा हि सोमः कलशां असिष्यददत्यो न बोलहारघुवर्तनिर्वृषा।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वां अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ।।२
आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भवामघवा राधसो महः।
शिक्षावयोधोवसवे सु चेतुना मा नो गयमारेअस्मत्परा सिचः ।।३
आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ।।४

उभे द्यावापृथिवी विश्व मिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।
भगो नृशंस उर्वन्तरिक्षं विश्वेदेवाः पवमानं जुषंत ॥५॥६

निष्पन्न सोम की धाराऐं इन्द्र के उदर में गमन करती हैं तब निष्पन्न सोम गव्य में मिश्रित होकर इन्द्र को हर्ष प्रदान करते और यजमान का अभीष्ट पूर्ण करते हैं ।१। रथ को वहन करने वाला घोड़ा जैसे वेग से गमन करता है, वैसे सोम कलश में गमन करते हैं। यह सोम कामनाओं के वर्षक, उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता और देवताओं को प्रसन्न करने वाले हैं।२। हे सोम ! तुम धन के स्वामी हो, हमको महान् धन प्रदान करो। हमको गौओं से युक्त धन दो। हे सोम ! तुम अन्न के धारण करने वाले हो, मुझ सेवक के लिए कल्याणप्रद होओ। तुम जो धन हमें प्राप्त कराते हो, वह हमसे कभी पृथक् न हो ।३। क्षरणशील सोम, मित्रावरुण, मरुद्गण, दानशील पूषा, त्वष्टा, अश्विनीकुमार, आदित्य, सरस्वती आदि सब देवता समान मति वाले होकर हमारे यज्ञगृह में आगमन करें ।४। मनुष्यों को बढ़ाने वाले भग देवता, सबको व्याप्त करने वाली आकाश-पृथिवी, महिमामय अन्तरिक्ष, विधाता अर्यमा विश्वेदेवा और अदिति यह सब हमारे यज्ञ में इस पवमान सोम के आश्रित हों ।५। (६)

सूक्त ८२

(ऋषि—वसुर्भारद्वाजः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप)

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेवदस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वार पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥१
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन्दुरिता सोम मृलय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥२
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिनसते वीते अध्वरे ॥३
जायेव पत्यावधि शेष मंहसे पज्राया गर्भं शृणुहि ब्रवीमि ते ।

अन्यवर्णीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥४
यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः पर्यग्रा वाजमिन्दो ।
एवा पवस्य सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५।७

यह वर्षणशील, सुन्दर हरे रङ्ग का सोम निष्पन्न होता हुआ राजा के समान महिमावान् होकर जल में निचुड़ता हुआ शब्द करता है । शोधन किया जाता यह सोम, अपने स्थान की ओर जाने वाले श्येन के समान छन्ने की ओर गमन करता है । जलयुक्त- स्थान की ओर देखते हुए यह सोम क्षरित होते हैं ।१। हे सोम ! यज्ञ की कामना करने वाले होने से तुम पूजनीय छन्ने को प्राप्त होते हो । हे क्रांतकर्मा सोम ! धोये जाने पर तुम रणप्रवृत्त वीर के समान गमन करते हो । तुम जल में मिलकर छन्ने की ओर जाते हो । हे सोम ! हमारे पापों का क्षय करते हुए हमें कल्याण दो ।२। मेघ पुत्र, बड़े पत्तों वाले सोम यज्ञ स्थान में रहते हैं, मेधावी जनों की उँगलियाँ इन्हें पाषाण से मिलाती हुईं दूध जल आदि से मिश्रित करती हैं ।३। हे सोम ! तुम पृथिवी पर उत्पन्न होते हो । तुम मेरे स्तोत्र को सुनो । तुम इस यजमान को सुख प्रदान करो । तुम हमारे जीवन के लिए उत्पन्न होते हो । हे स्तुत्य सोम ! तुम हमारी स्तुतियों में रमण करो और हमारे निन्दक शत्रुओं से निरन्तर सतर्क रहो ।४। हे सोम ! तुमने जैसे पूर्व कालीन स्तोताओं को सौ और हजार संख्या वाला धन दिया था वैसे ही अब हमारा उत्थान करते हुए गिरो । तुमसे यह जल कर्म-प्रेरणा के निमित्त मिश्रित होता है ।५। (७)

सूक्त ८३

(ऋषि—पवित्रः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—जगती)

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥२
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३
गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥४
हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥५।८

हे सोम ! तुम स्तोत्रों के स्वामी हो । तुम्हारी दीप्ति सर्वत्र बढ़ती है । तुम, पीने वाले के सब अंङ्गों में व्याप्त होकर उसे वश में करते हो । व्रत करने वाले मेधावी जन ही तुम्हारे तेज को धारण कर तेजस्वी होते हैं ।१। सोम का शोधक तेज शत्रुओं को संतप्त करता हुआ आकाश के ऊपर फैला है । इनकी दमकती हुई रश्मियां विभिन्न प्रकार से रहती हैं । सोम का पवित्र रस शीघ्र गमन करने वाला और यजमान का हर प्रकार रक्षक है । फिर वह देवताओं की ओर जाने वाली सुमति से स्वर्ग के पृष्ठ भाग पर आरूढ़ होता है ।२। सूर्यरूप से अवस्थित सोम मुख्य है, यह प्राणियों को जल के द्वारा अन्न प्राप्त कराते हैं और मेधावी सोम के द्वारा प्रेरित अग्नि जगत् में निर्माण करने वाले होते हैं । सोम की प्रेरणा से ही देवताओं ने मनुष्यों के कल्याण के लिए औषधियों को गुण वाली बनाया ।३। यह सोम देवताओं के प्राकट्य की रक्षा करते हैं । यह सोम आदित्य के स्थान को पुष्ट करते हैं । पशु-स्वामी सोम हमारे शत्रुओं को बन्धन में डालते हैं । इन सोमों के मधुर रस को पुण्य कर्म वाले व्यक्ति ही प्राप्त करते हैं ।४। यह सोम जल में मिश्रित होकर यज्ञगृह की रक्षा करते हैं । हे सोम ! तुम राजा होकर रथारूढ़ होते और रणक्षेत्र में जाते हो । फिर अन्नों के जीतने वाले होते हो ।५। (८)

सूक्त ८४

(ऋषि—प्रजापतिर्वाच्य: । देवता-पवमान: सोम: । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥१
आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्त्सञ्चृत विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२
आ यो गोभिः सृज्यत ओषधोष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयदैव्य जलम् ॥३
एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्दस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥४
अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोम श्रीणंति मतिभिःस्वार्विदम् ।
धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कवि काव्येना स्वर्चनाः ॥५।८

जलदाता सोम ! तुम सूक्ष्मदर्शी और हर्षकारी हो । तुम इन्द्र, वरुण और वायु के लिए सिंचित होते हुए हमको अक्षीण धन प्रदान करो, और पृथिवी पर मुझे देवताओं का उपासक मानो ।१। सब भुवनों में व्याप्त सोम वहाँ वहाँ की प्रजाओं के रक्षक होते हैं । यज्ञ को फल से पूर्ण करने वाले यह सोम, संसार को प्रकाशित करने वाले आदित्य जैसे उसी संसार के आश्रित रहते हैं, उसी प्रकार यज्ञ को राक्षसों से निर्मल करके यज्ञ के ही आश्रित होते हैं ।२। रश्मियाँ इन सोमों को देवताओं के हर्ष के निमित्त औषधियों में स्थापित करती हैं । यह निष्पन्न होकर अपनी उज्ज्वल धारा के रूप में प्रवाहित होते हैं । यह देव-काम्य सोम शत्रुओं का पराभव करने वाले और इन्द्रादि सब देवताओं को शक्ति से युक्त करने वाले हैं ।३। यह गमनशील सोम प्रातः सवन में किये गए स्तोत्र को प्रवृद्ध करते हुए सहस्र धाराओं सहित गिरते हैं । यह वायु के द्वारा प्रेरित होकर रस को वेग वाला करते हैं ।४। स्तुत होने पर यह सोम सर्वप्रदायक होते हैं । इन्हें अपने दूध से सींचने के

लिए गौऐं खड़ी हो गई हैं। यह शत्रुओं के घर पर अधिकार करने वाले अन्न-सम्पन्न और रस-रूप सोम निचोड़ने से प्रकट होते हैं।५। (१०)

सूक्त ८५

(ऋषि—वेनो भार्गवः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती त्रिष्टुप्)

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१
अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२
अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥३
सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवत काम्यं मधु।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४
कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्यव्ययं समया वारमर्षसि।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५
स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६॥१०

हे सोम! तुम्हारे रस का पान करके पाप करने वाले मनुष्य सुखी न हों। राक्षस और रोग दोनों ही तुम्हारे प्रताप से मिट जाँय। तुम भले प्रकार निष्पीडित होकर इन्द्र के पास जाकर अपना रस क्षरित करो।१। हे ज्ञानी एवं पवमान सोम! तुम देवताओं को प्रिय बनाने वाले हो। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम हमको रणभूमि में भेजो और शत्रुओं को नष्ट करो। हे इन्द्र! तुम भी यहाँ आगमन करो और हमारे शत्रुओं को मारो।२। हे अहिंसित सोम! तुम इन्द्र के अन्न होकर गिरते हो। यह सोम संसार के ईश्वर हैं। स्तोतागण इनका यश-गान करते हैं।३। हे सोम! तुम महान् हो। तुम्हारी धाराऐ असंख्य हैं।

तुम अद्भुत और सहस्र प्रकार के नेत्र वाले हो। तुम हमारे लिये खेत और जल पर अधिकार करते हुए छन्ने की ओर गमन करो। हे वर्षण शील सोम ! हमारे मार्ग को चौड़ा करो। इन्द्र के द्वारा कामना किए गए इस सोम रूप मधु को हम सींचते हैं।४। हे सोम ! तुम कलश में स्थित हो। तुम गोदुग्ध के मिलाये जाने पर शब्द करते हो। फिर तुम छन्ने की ओर जाते हो। संस्कारित होने पर तुम अश्व के समान अभिलषणीय होकर इन्द्र के पेट को भले प्रकार सींचते हो।५। हे सोम ! तुम इन्द्र तथा अन्य सब देवताओं के लिए गिरो। हे सुस्वादु सोम ! तुम अहिंसनीय एवं मधुर रस से पूर्ण हो। मित्र, वायु वरुण और बृहस्पति के लिए तुम सिंचनीय होओ।३।

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥७
पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वी गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्द्रो जयेम त्वया धनधनम् ॥८
अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिव पीयूषः दुहपे नृचक्षसः ॥९
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
अप्सुद्रप्सवावृधानं समुद्र आसिन्धोरूर्मा मधुमन्त पवित्र आ ॥१०
नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः।
शिशु रिहन्तिमतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुन क्षामणि स्थाम् ॥११
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थादिश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य।
भानुःशुक्रण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः
॥१२॥११

अश्व के समान वेग वाले सोम को अध्वर्युओं की दसों अँगुलियाँ निष्पन्न करती हैं। फिर स्तोतागण स्तुतियों को प्रेरित करते हैं। सुन्दर

कीर्ति वाले इन्द्र में यह सोम क्षरित होते हैं ।७। हे सोम ! सुन्दर रूप, बल, भूमि और घर हमको प्रदान करो। हमारे कामों से द्वेष करने वालों को सत्तावान् मत बनाओ। हम महान् धन को विजय करने वाले हों ।८। आकाश स्थित सोम ने नक्षत्र आदि को सुसज्जित किया। यह सोम छन्ने को पार करते हुए गिरते हैं। यह मनुष्यों को देखने वाले सोम शब्द करते हुए आकाश से अमृतरूप रस की वृष्टि करते हैं ।६। मिष्टभाषी वेनों ने दुःख रहित स्थान यज्ञ में सोम को पृथक्-पृथक् निष्पन्न किया। उन्होंने जल में बढ़ने वाले सोम के रस को विस्तृत द्रोण-कलश में धार रूप से सिंचित किया। पहिले वह सोम छन्ना में सींचा गया ।१०। क्षरणशील, सुन्दर पत्र वाले, आकाश में स्थित सोम की हम स्तुति करते हैं। वह सोम बालक के समान संस्कार करने योग्य है। इस हविरन्न में निहित, शब्दवान् और पक्षी के समान सोम से हमारी स्तुतियाँ संगति करती है ।११। रश्मिवन्त सोम आकाश में रहते हुए आदित्यों के सब रूपों को देखते हैं। सोमात्मक सूर्य अपने महान् तेज से देदीप्यमान होते हैं। यह उज्ज्वल सोम आकाश और पृथिवी को तेज से पूर्ण करते हैं ।१२। (११)

सूक्त ८६ (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—आकृष्टा माषाः सिकता निवावरी, पृश्नयोऽजाः, त्रय ऋषिगणाः, अत्रिः, गृत्समदः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—जगती)

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजाइवत्मना।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥१
प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक्।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥२
अत्यो न हियानो अभिवाजमर्ष स्वर्वितकोश दिवो अद्रिमातरम्।
वृषा पवित्रे अधिसानोअव्यये सोमः पुनानः इन्द्रियाय धायसे ॥३
प्रत आश्विनोः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि।

प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्युषिषाण वेधसः ॥४
विश्वाधामानिविश्वचक्षऋभ्वसःप्रभोस्ते सतः परियन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसेसोमधर्मभिःपतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥५।१२

हे सोम ! तुम्हारा रस अश्व-वत्स के समान् वेगवान् हो रहा है। तुम्हारा रस आकाश में उत्पन्न होता है। तुम्हारा पत्तों से निचुड़ता हुआ, मधुर रस द्रोण-कलश में गमन करता है।१। हे सोम ! जैसे अश्व को मार्जित करते हैं, वैसे ही तुम्हारा हर्षप्रदायक रस संस्कृत होकर वेग वाला होता है। यह क्षरणशील मधुर और बढ़े हुए गुण वाले सोम बछड़े की ओर जाने वाली गौ के समान इन्द्र की ओर गमन कर रहे हैं।२। हे सोम ! जैसे अश्व को रणभूमि में भेजते हैं, वैसे ही तुम गमन करो। तुम सत्र के जानने वाले हो, आकाश से मेघ के रचने वाले इन्द्र की ओर गमन करो। यह वर्षणशील सोम इन्द्र के लिये ही छन्ने में जाकर शुद्ध होते हैं।३। हे सोम ! तुम्हारी दिव्य धाराऐं, दुग्ध से मिश्रित हुई द्रोण-कलश में गिरती हैं। ऋषिगण तुम्हें निष्पन्न करते हैं रश्मियाँ देवताओं के शरीरों को प्रकाश देती हैं। तुम सर्वव्यापक और सर्वद्रष्टा हो। तुम धारक रस सींचते हो।५। (१२)

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ।६
यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप यदि निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥७
राजा समुद्रं नद्यो वि गाहतेऽपामूर्मि सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानुपवमानोअव्ययनाभापृथिव्या धरणो महो दिवः ॥८
दिवो नं सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्य पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥९
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं देवाना जनिता विभूवसुः ।

दधाति नत्तंस्वधयोरपीच्यंमन्दितमोत्सर इन्द्रियो रसः ॥१०॥१३

यह सोम दशापवित्र में शुद्ध होते हैं। इनकी दमकती रश्मियां सब ओर गमन करती हैं। यह सोम अपने आश्रय रूप कलश में विश्राम करते हैं।६। यज्ञ को सुशोभित करने वाले सोम क्षरित होते हुए देवताओं के स्थान को प्राप्त होते हैं। यह सोम असख्य धाराओं से छन्ने को लाँघते हुए द्रोण-कलश में पहुंचते हैं।७। नदियों के समुद्र में मिलने के समान ही सोम जल में मिश्रित होते हैं। जल में रहकर दशा पवित्र पर पहुँचते और पृथिवी के नाभि रूप यज्ञ में निवास करते हैं और आकाश को धारण करते हैं।८। अपनी महिमा से ही यह सोम आकाश-पृथिवी को धारण करते हैं और स्वर्ग के ऊँचे स्थान पर शब्द करते हैं। इन्द्र से मित्रता करने के लिये सोम छन्ने में छनत्ते हुए द्रोण-कलश में मिश्रित करते हैं।६। यह सोम देवताओं के पालक, यज्ञ के प्रचारक और ऐश्वर्यवान् हैं। इसका रस देवताओं को अत्यन्त प्रिय है। अपने उस रस को यह सींचते और दिव्य तथा पार्थिव धनों को स्तोताओं को प्रदान करते हैं यह इन्द्र को बढ़ाने वाले, रसरूप एवं अत्यन्त हर्ष-कारी हैं ॥१०॥ (१२)

अभिक्रन्दनन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः।
हरिर्मित्रस्य सदनेषुसीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥११
अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥१२
अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये संसार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वारोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३
द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः।
स्वजज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४
सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतोविश्वा अभि संयाति संयतः ॥१५॥१४

यह हरे रंग के, सौ धाराओं वाले, गतिमान् सोम देवताओं से मित्रता करने को कलश में गिरते हुए शब्द करते हैं। यह असंख्य छिद्रों वाले छन्ने से छनते हुए सब के शुद्ध करने वाले होते हैं ।११। उत्कृष्ट सोम माध्यमिक वाक से आगे चलते हैं। यह गतिमान् जल से भी आगे चलते हैं। जलप्राप्ति के लिये वह युद्ध को वहन करते हैं। किरणों में प्रविष्ट सोम सुन्दर आयुध वाले और ऋत्विज द्वारा संस्कृत होने वाले हैं ।१२। यह स्तुतियों से पूर्ण हुए सोम अपने रस के रहित पक्षी के समान वेग से छन्ने में पहुंचते हैं। हे इन्द्र! आकाश-पृथिवी के मध्य सम्पन्न सोम तुम्हारे कर्म से ही बहते हैं ।१३। स्वर्ग के छूने वाले तेजोमय सोम अन्तरिक्ष को पूर्ण करने वाले हैं। यह जल से मिलकर नवीन स्वर्ग की उत्पत्ति करते और जल रूपसे प्रवाहित होते हैं। वे जलको उत्पन्न करने वाले सनातन इन्द्र की सेवा करते हैं ।१४। सोम ने ही इन्द्र के महान् शरीर को सब से पहिले पाया था। यह इन्द्र को अत्यन्त सुख देने वाले हैं। यह उत्तम वेदों पर अवस्थित होते हैं। इनके द्वारा तृप्ति को प्राप्त करते हुए इन्द्र रणक्षेत्रों की ओर गमन करते हैं ॥१५॥ (१५)

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्यनिष्कृतसखा सख्युर्नप्र मिनाति संगिरम् ।
मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१६

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥१७

आ नः सोम संयन्तं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम् ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८

वृषामतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणासिन्धूनाकलशांअवीवशदिन्द्रस्यहार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१९

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नामजनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायो सख्याय कर्तवे ॥२०।१५

इन्द्र के उदर में प्रविष्ट होने वाले सोम उनके हृदय को कष्ट नहीं देते । यह सोम जलों से संगति करते हुए सैकड़ों छिद्र वाले छन्ने को लाँघते हैं और द्रोण-कलश को प्राप्त होते हैं ।१६। हे सोम ! स्तुति के लिये तत्पर स्तोता सोम यज्ञ मण्डप में विचरण करते हैं । यह स्तोता सोम की स्तुति हैं और गौऐं इन्हें अपने दूध से सींचकर मधुर करती हैं ।७। हे सोम ! हमको अक्षुण्ण अन्न प्रदान करो । तुम्हारा वह अन्न आश्रय देने वाला, मधुर भाषी, सुन्दर सामर्थ्य वाला पुत्र प्राप्त कराता है ।१८। यह सोम स्तोताओं के अभीष्टों की रक्षा करने वाले को पुष्ट करते हैं । यह सूर्य और जल उत्पन्न करते हैं । कलश में प्रविष्ट होने वाले यह सोम इन्द्र के हृदय में रमते हैं ।१९। यह सोम विद्वानों और ऋत्विजों द्वारा नियमित तथा संस्कृत होकर कलश में जाते हुए शब्द करते हैं । यह यजमान के लिए जलोत्पादक सोम इन्द्र और आयु का सख्य भाव प्राप्त करने के लिये मधुर रस सींचते हैं ।२०। (१५)

अयं पुनानं उषसो विरोचयदयंसिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत ।
अयं त्रिःसप्तदुदुहानआशिरंसोमोहृदेपवते चारु मत्सरः ॥२१
पवस्वसोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्द्रो कलमेपवित्र आ ।
सोदन्निन्द्रस्य जटरेकनिक्रदन्नृभियर्तः सूर्यमारोहयो दिवि ॥२२
अद्रिभिः सुतः पवसे आं इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षाअभवोविचक्षणसोमगोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥२३
त्वां सोम पवमानं स्वाक्ष्योऽनु विप्रासो अमन्नवस्यवः ।
त्वांसुपर्णआभरद्दिवस्परीन्दाविश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥२४
अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिंनवन्ते अभि सप्तधेनवः ।
अपामुपस्येअध्यावः कविमृतस्य योनामहिषाअहेषत ॥२५।१६

प्रातः सवन में यह सोम अत्यन्त सुसज्जित होते हैं । वसतीवरी जलों में बढ़ते हुए यह सोम लोकों के रचयिता होते हैं । यह हर्षकारी सोम

हृदय में प्रविष्ट होने के लिये उद्यत होते हैं । इक्कीस ऋत्विज इनका दोहन करते हैं ।२१। हे कलश में निर्मित हुए सोम ! तुम देवताओं को सींचो । तुम उनके उदर में विश्राम करो । ऋत्विजों द्वारा होमे गए सोम इन्द्र के उदर में शब्द करते हैं । इन सोमो ने ही दिन को उत्पन्न करने वाले सूर्य को प्रकट किया है ।२२। हे सोम ! तुम पाषाणों द्वारा कूटे जाकर छन्ने से छनते हुए इन्द्र के उदर की कामना करते हो । तुम मनुष्यों के यत्न से सर्व दर्शन होते हो । तुमने ही गौओं को ढक लेने वाले पर्वत को अंगिराओं के लिये खोला था ।२३। हे पवमान सोम ! यह विद्वान् स्तोता रक्षा की कामना से तुम्हारी स्तुतियाँ करते हैं । तुम आकाश में स्तुतियों से सुसज्जित बैठे थे तब श्येन तुम्हें यहाँ लाया था ।२४। हे सोम ! तुम हरे रङ्ग वाले को सप्त गायत्री आदि छन्द छन्ने पर गिराते हो । महान् आयु वाले मेधावी जन तुम्हें अन्तरिक्ष के जलों में प्रेरित करते हैं ।।२५।। (१६)

इन्दु पुनानोअति गाहतेमृधो विश्वानि कृण्वन्सुपथानि यज्यवे ।
गाःकृण्वानोनिर्णिजहर्यतः कविरत्योनक्रीलन्परिवार मर्षति ।।२६
असश्चतः शतधारा अजिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपोमृजन्तिपरिगोभिरावृततृतीयेपृष्ठेअधिरोचने दिवः ।।२७
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वंपवमान ते वशेत्वमिन्द्रोप्रथमो धामधाअसि ।।२८
त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाःपञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां चपृथिवीचातिजभ्रिषेतवज्योतींषि पवमानसूर्यः ।।२९
त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजःप्रथमाअगृभ्णततुभ्येमाविश्वाभुनवानियेमिरे ।।३०।।१३

यज्ञ करने वाले यजमान के लिये यह सोम शत्रुओं को भगाने वाला मार्ग बनाते हुए कलश में गिरते हैं । यह सोम अश्व के समान उछलते

रसमय रूप वाले होकर छन्ने को प्राप्त होते हैं ।२५। सौ धाराओं वाले सोम की आश्रित परम्परा से साथ रहने वाली सूर्य रश्मियाँ इन्द्र के पास पहुंचती हैं । आकाशस्थित एवं रश्मियों से आच्छादित सोम को उँगलियाँ संस्कृत करती हैं ।२७। हे विश्व-स्वामी सोम ! सभी जीव तुम्हारे तेज से उत्पन्न होते हैं । तुम संसार को धारण भी करते हो, इस लिए यह जगत् तुम्हारे आश्रित है ।२८। आकाश और दिशाओं के धारणकर्त्ता सोम ! तुम आकाश और पृथिवी के धारक हो । तुम संसार के जानने वाले हो, तुम्हारा रश्मियाँ सूर्य के द्वारा पुष्टि को प्राप्त होती हैं ।२९। हे सोम ! तुम छन्ने में शुद्ध किये जाते हो । विद्वान् ऋत्विक् तुम्हें देवताओं के लिए ग्रहण करते हैं । संसार के सभी प्राणी तुम्हारी सेवा में उपस्थित होते हैं ।३०। (१७)

प्ररेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयोवावशाना अनूषत शिशुं रिहन्तिमतयः पनिप्नतम् ॥३१
स सूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथाविदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिजनीनामुप याति निष्कृतम् ॥३२
राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्ययाति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिःपुनानो वाचं जनयन्नु पावसुः ॥३३
पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतोनृभिः रद्रिभि सुतोमहे वाजाय धन्याय धन्वसि व ॥३४
इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्योमदः सुतोदिवोविष्टम्भ उपमोविचक्षणः ॥३५।१८

हरे रङ्ग के, सेंचक जल में शब्दवान् यह सोम छन्ने में पहुंचते हैं । सोम की कामना करने वाले स्तोत्र और उनके स्तोता बालक के समान शब्द करने वाले सोम का यश-कीर्तन करते हैं ।३१। तीनों सवनों द्वारा यज्ञ को विस्तीर्ण करने वाले सोम अपने को सूर्य रश्मियों से आच्छादित करते हैं । यह शोधित हुए, सोम पात्र में गिरते हुए सत्र में जानने वाले होते हुए सब प्राणियों के स्वामी बनते

हैं ।३२। यह सोम स्वर्ग के और जलों के भी स्वामी हैं । यज्ञ-मार्ग में शब्द करते हुए गमन करते हैं । यह असंख्य धाराओं वाले सोम पात्रों में सींचे जाते हैं ।३३। हे सोम ! तुम आदित्य के समान पूजनीय हो । तुम रस की वर्षा करने वाले हो । तुम अनेकों द्वारा निष्पन्न हुए हो । धन-लाभ के लिए पाषाणों द्वारा निष्पीडित होकर तुम रण क्षेत्र में गमन करते हो ।३४। हे सोम ! जैसे बाज अपने घोंसले में गमन करता है, वैसे ही तुम कलश में गमन करते हो । तुम अन्नवान् और बलवान् हो, दूर तक देखने वाले और आकाश को स्थिर करने वाले हो । तुम्हारा अत्यन्त हर्षकारी रस इन्द्र के लिए निष्पन्न हुआ है ।३५। (१८)

सप्तस्वसारोअभिअभिमातरः शिशुं नवं जज्ञान जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं भुवनस्य राजसे ।।३६
ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृत पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ।।३७
त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्वद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ।।३८
गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रे तोधा इन्दो भूवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तंत्वाविप्राउगिरेम आसते ।।३९
उन्मध्व ऊर्मिवंनना अतिष्ठि पदपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रमृष्टिर्जयति श्रवोवृहत् ।।४०।।१८

यह सोम जल के पिता, स्वर्ग में उत्पन्न, विद्वान् मनुष्यों के कर्मों को देखने वाले सोम के समान हैं । सप्त नदियाँ बालक के पास माता के जाने के समान इनके पास गमन करती हैं ।३६। हे सोम ! तुम हरे वर्ण वाले, सबके स्वामी और सब लोकों में जाने वाले हो । तुम्हारे लिए मधुर घृत, दुग्ध और जल को अश्व वहन करें । मनुष्य तुम्हारी अनुज्ञा में रहें ।३७। हे जल-वर्षक सोम ! तुम विभिन्न गति वाले और सब मनुष्यों के देखने वाले हो । तुम हमें स्वर्ण, गो आदि से सम्पन्न

ऐश्वर्य प्रदान करो । हम धनों से सम्पन्न होकर संसार में पूर्ण आयु तक जीवित रहें ।३८। हे सोम ! तुम जल धारक, धनवर्षक, सुवर्ण आदि के प्राप्त करने वाले और वीर्यवान् हो । हे सबके जानने वाले ! मेधावी स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं । अतः तुम मधुर रस के सहित क्षरित होओ ।३९। यह महिमावान् सोम जल में मिश्रित होकर कलश के आश्रित होते हैं, यह अपने छन्ना रूप रथ पर आरूढ़ होते हुए संग्राम करते हैं । अभिषव के समय यह स्तोत्र को चैतन्य करते हैं तथा हमारे निमित्त अन्न रूप ऐश्वर्य के विजेता होते हैं ।४०। (१९)

स भन्दना ऊदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्द्रविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१
सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥४२
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यंजते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासुगृभ्णते ॥४३
विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीलन्नसरद्वृषा हरिः ॥४४
अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥४५।२०

यह सोम प्रजा, दिवस और सुन्दरता से पूर्ण करने वाली स्तुतियों की प्रेरणा करते हैं । हे सोम ! इन्द्र के द्वारा पान किये जाने पर तुम उनसे हमारे लिए अत्यन्त उपयुक्त अन्न और घर को पूर्ण करने वाले सुन्दर ऐश्वर्य की याचना करो ।४१। यह सोम स्तोताओं की प्रातः कालीन स्तुतियों द्वारा जाने जाते हैं । यह द्यावा-पृथिवी के मध्य गमन करने वाले मनुष्यों देवताओं द्वारा सोम, देवता और पृथिवी के प्राणियों को कर्मों में प्रेरित करते हैं ।४२। इस सोम के रस को ऋत्विग्गण गोदुग्ध में मिश्रित करते हैं और देवगण इस बलकारी पेय

का आस्वादन करते हैं । यह सोम सेंचक हैं । इनका रस ऊपर उठता है तब यह निम्नगामी होते हैं । जैसे पशु को जल में लेजाकर स्वच्छ करते हैं, वैसे ही जल में मिला कर सोम का शोधन किया जाता है ।४३। हे ऋत्विजो ! सोम की स्तुति करो । यह सोम रस-रूप अन्न को लाँघते हैं और सर्प द्वारा केंचुली छोड़ने के समान अभिषव द्वारा अपने शरीर को पृथक् करते हैं । यह क्रीड़ा करने वाले अश्व के समान छन्ने से कलश में गमन करते हैं ।४४। सुन्दर गुण वाले जल में शोधित सोम स्तुत होते हैं । यह हरे वर्ण वाले जल मिश्रित, दिनों के मापक, धन प्रापक और सुन्दर दिखाई देने वाले हैं, यह अपने उज्ज्वल छन्ने रूप रथ पर प्रवाहित होते हैं ।४५। (२०)

अर्सजि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशु रिहन्त मतयःपतिप्नतंगिरायदिनिर्णिजमृग्मिणोयायुः ।।४६
प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दोचम्वोःसमज्य सआ सुवानःसोमकलशेषुसीदसि ।।४७
पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योव्यो परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान् रक्ष इन्दोअत्रिणोबृहद्वदेम विदथेसुवीराः ।।४८।२१

इन सोमों ने ही आकाश को धारण कर स्तम्भित किया । यह त्रिधातु वाले सोम निष्पन्न किये जाते हैं । यह सब लोकों में स्थित सोम ऋत्विजों द्वारा स्तुति होते हैं तब उनके शब्द की सभी कामना करते हैं ।४६। हे सोम ! जब तुम्हारा शोधन किया जाता है तब तुम्हारी उज्ज्वल धाराऐं छन्ने को पार करती हुई गमन करती हैं । जब तुम जल से मिश्रित किये जाते हो तब तुम द्रोण-कलश में प्रतिष्ठित होते हो ।४७। हे सोम ! हमारे यज्ञ को सींचो । तुम हमारे स्तोत्र के ज्ञाता हो, अतः अपने प्रिय और मधुर रस को छन्ने पर क्षरित करो । हे सोम ! हमारे शत्रु राक्षसों का वध करो। हम पुत्रवान् होते हुए सुन्दर स्तुतियों को उच्चारण करेंगे और तुमसे सुन्दर धन मांगेंगे ।४८। (२१)

सूक्त ८७

(ऋषि—उशनाः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र तु द्रवपरि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वन त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिनयन्ति ॥१
स्वायुधः पवते देव इन्दुरुशस्तिहा वृजनं अक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या ॥२
ऋषिर्विप्र पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्य गुह्यं नाम गोनाम् ॥३
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृष्णो परि पवित्रे अक्षः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तम बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४
एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायमृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५।२२

हे सोम ! ऋत्विजों द्वारा संस्कारित होकर द्रोण कलश में प्रतिष्ठित होओ और यजमान को अन्न प्रदान करो । हे सोम ! तुम यहाँ शीघ्र आगमन करो । अश्व को स्नान कराने के समान अध्वर्यु गण इस सोम को धो रहे हैं ।१। यह सोम असुरों को नष्ट करने वाले हैं । यह पवमान सोम सुन्दर आयुधों से सम्पन्न, विघ्नों से रक्षा करने वाले, देवताओं के पालनकर्त्ता, आकाश के स्थिरकर्ता और पृथिवी के भी धारणकर्त्ता हैं ।२। यह मनुष्यों को प्रकट करने वाले सोम मेधावी, अतीन्द्रिय द्रष्टा और आगे जाने वाले हैं । यह उशना ऋषि की गौओं के दूध और जल से मिलते हैं ।३। हे इन्द्र ! तुम वृष्टि-प्रेरक हो । यह मधुर सोमरस तुम्हारे लिए ही छन्ने में निष्पन्न हो रहा है । वह शत-संख्यक और असंख्य धनों के देने वाले हैं । वह बल के युक्त, नित्य और यज्ञ में वास करने वाले हैं ।४। सेनाओं के जीतने वाले घोड़े के समान अन्न को

कामना वाले सोम गव्य मिश्रित अन्न के सहित छन्ने से शोधित करके अविनाशी बल के निमित्त प्रस्तुत किये जाते हैं ।।५।। (२२)

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ।।६
एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न श्रृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ।।७
एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विदेत्र ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ।।८
उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ।।९।२३

शोधनीय सोम बहुतों द्वारा बुलाये हुए हैं और यह उपभोग्य धनों के प्रदान करने वाले हैं । हे सोम ! तुम हमको अन्न और धन दो तथा रसरूप अन्न भी प्राप्त कराओ ।६। निष्पन्न सोम गतिमान् अश्व के समान छन्ने की ओर जाते हैं । वे अपनी धारा रूप सींगों को तीक्ष्ण करते हुए गौ–भैंस के चाहने वाले वीरों के समान गमन करते हैं ।७। जिन सोम धाराओं ने पर्वत के छिपे हुए स्थान में पणियों की गौओं को पाया था, वह धारायें ऊपर से क्षरित होकर पात्र में जाती हैं । हे इन्द्र ! आकाश में कड़कती हुई विद्युत् के समान यह धारा तुम्हारे लिये ही गिरती हैं ।८। हे सोम ! तुम शुद्ध होकर चुराई गई गौओं को खोजते हो । तुम इन्द्र के साथ ही रथारूढ़ होकर गमन करते हो । हे सोम ! तुम अन्नवान् हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । हमको श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करो ।।९।। (२३)

सूक्त ८८

(ऋषि—उशनाः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—पङ्क्तिः, त्रिष्टुप्)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ।।१

स ईं रथो न भुरिषालयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ।।२
वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदाइव तमन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ।।३
इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भिद् ।
पद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ।।४
अग्निर्न यो वन आसृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ।।५
एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचोः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ।।६
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ।।७
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ।।८।२

हे इन्द्र ! वह सोम तुम्हारे लिये ही संस्कृत होकर गिरते हैं । तुम जिन सोमों के सृष्टा हो, उन्हीं को अपनी सहायता के लिए स्वीकार करो । हे सोमपाये ! महान् हर्ष प्राप्त करने के लिये इन सोमों का पान करो ।१। जैसे रथ असीमित भार ढोता है वैसे ही यह महिमावान् सोम प्रचुर भार वहन करने वाले हैं । उन प्रचुर धनदाता सोम को रथ के समान ही जोड़ा जाता है । संग्राम की कामना वाले वीर इन सोमों को विजय के निमित्त रणक्षेत्र में ले जाते हैं ।२। वायु के समान अपनी इच्छानुसार गमन करने वाले सोम वायु के नियुत् वेगवान् अश्वों के चालक हैं । यह अश्विनीकुमारों के समान आहूत करते ही आगमन करते हैं । यह सूर्य के समान तेजस्वी सोम धनिक व्यक्ति के समान सब की प्रतिष्ठा के पात्र हैं ।३। हे सोम ! तुम भी इन्द्र के समान ही महान् कर्मा हो तुम शत्रुओं के मारने वाले और उनके पुरों के तोड़ने वाले

हो । हे सोम ! तुम सब शत्रुओं के संहारक और दुष्टों के भी हनन करने वाले हो ।४। वन में प्रकट अग्नि द्वारा बल प्रदर्शित करने के समान जल में उत्पन्न सोम अपने बल को प्रकट करते हैं । वह संग्राम-रत योद्धा के समान भयंकर शब्द करने वाले सोम अत्यन्त गुण और माधुर्य से सम्पन्न रस प्रदान करते हैं ।५। जैसे नदियाँ निम्नगामिनी होकर समुद्र में जाती हैं, जैसे ऊपर से वृष्टि होकर पृथिवी पर जल जाता है, वैसे ही यह सोम छन्ने को लाँघ कर कलश मे पहुंचते हैं ।६। हे मरुद्गण के समान बलवान् सोम ! तुम धरती पर गिरो । वायु के समान प्रवहमान सोम ! तुम जल के समान प्रवाहित होकर सुन्दर मति प्रदान करो । शत्रुसेना के जीतने वाले इन्द्र के समान तुम यजन करने योग्य हो ।७। हे सोम ! तुम विघ्नों के शान्त करने वाले हो । तुम महान् तेज वाले और गम्भीर हो । तुम अर्यमा के समान पूज्य और मित्र के समान पवित्र हो । मैं तुम्हारे कर्म को शीघ्र प्राप्त होता हूं ।८। (२४)

सूक्त ८९

(ऋषि—उशनाः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्नयस्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ।।१
राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ।।२
सिंहं नसन्त मध्वा अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ।।३
मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ।।४
चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ।।५
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।

असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्माधवो अंशुः पवत इंद्रियाय ॥६
वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥७।२५

आकाश की वृष्टि के समान यज्ञों में सोम-रस का सिंचन होता है। आकाश में स्थित अनेक धाराओं वाले सोम हमारे पास विराजमान होते हैं ।१। सोम पयस्विनी गौओं के स्वामी हैं । ये दूध से मिश्रित हो रहे हैं । यह बाज के द्वारा आकाश से लाये गये हैं । इन सरल नौका में चढ़ने वाले सोमों का इनके रक्षक और अध्वर्यु आदि दोहन करते हैं ।२। यह सोम आकाश के स्वामी हैं। यह जलों के प्रेरक, शत्रुहन्ता और हरे वर्ण वाले हैं। इन सोमों को यजमान अपने वश में करते हैं। यह सोम रणक्षेत्र में मुख्य वीर और देवताओं में श्रेष्ठ होकर प्राणियों द्वारा अपहृत गौओं के मार्ग की जिज्ञासा करते हैं। इन सोमों की सहायता से ही इन्द्र जगत् का पालन करते हैं ।३। इन सोम की पीठ मधुर है। यह देखने में दर्शनीय, कर्म में भयंकर और गमन शील हैं । इन्हें अश्व के समान यज्ञ रूप रथ में योजित किया जाता है। दशों उँगलियाँ इनका संस्कार करती हैं और अध्वर्युगण इन्हें प्रवृद्ध करते हैं ।४। चार गौऐ सबके धारण कर्त्ता अन्तरिक्ष में बैठी हैं, घृत प्रदान करने वाली यह गौऐ सोम की सेवा करती हैं । इस प्रकार की अन्य अनेक गौऐं अपने दूध से शोधन करने के लिए सोम-रस को सब ओर से व्याप्त करती हैं ।५। सोम ने पृथिवी को स्थिर किया, आकाश को भी स्तम्भित किया। समस्त प्राणी उनकी स्तुति करते और आश्रित रहते हैं । यह मधुर रस-युक्त सोम इन्द्र के लिए निष्पन्न होने वाले हैं । यह सोम तुम्हारे निमित्त अश्वों से सम्पन्न हों ।६। हे महिमावान् सोम ! तुम अत्यन्त बली हो । इन्द्रादि देवताओं के पीने के लिये क्षरित होओ । तुम्हारी कृपा प्राप्त होने पर हम श्रेष्ठ बल और ऐश्वर्य के स्वामी हों ।७। (२५)

सूक्त ९०

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—पवमानः सोमः। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्योरथो न वाज सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा सशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥१
अभि त्रिपृष्टं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥२
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषालहः साहवन् पृतनासु शत्रून् ॥३
उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्वर्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्य वाजान् ॥४
मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवांमत्सि महामिन्द्रो मदाय ॥५
एवा राजेव क्रतुमांअमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्द्रो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६।२६

यह सोम अध्वर्युओं द्वारा प्रेरित होकर रथ के समान अन्न-वहन करने वाले हैं। यह आकाश और पृथिवी को पूर्ण करते हैं। यह इन्द्र को प्राप्त होकर तेज को तीक्ष्ण करते और सब धनों को हाथ में लेकर हमें देते हैं।१। अन्न देने वाले वर्षक सोम को तीनों सवनों में स्तोताओं की स्तुतियाँ तीक्ष्ण करती हैं, यह सोम वरुण के समान जलों को आच्छादन करने वाले हैं। यह स्तोताओं को धन प्रदान करते हैं।२। हे सोम ! तुम वीरों से सम्पन्न हो, स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हो, तुम्हारे आयुध तीक्ष्ण हैं। तुम समर्थ, सभक्ता, विजेता, अजय और शत्रुओं के पराभवकर्त्ता हो।३। हे सोम ! तुम स्तोताओं को भय-रहित करने के लिए विस्तृत मार्ग द्वारा आकर आकाश-पृथिवी को सुसंगत करो और क्षरित होते हुए हमें महान् धन देने वाले होओ। तुम उषा, सूर्य और उनकी रश्मियों से मिलने के लिए शब्दवान् होते हो।४। हे पवमान सोम ! तुम मित्रावरुण, विष्णु, इन्द्र, मरुद्गण तथा अन्य सब देवताओं के लिए तृप्तिकर होते हुए उन्हें हर्ष प्रदान करो।५। हे सोम !

तुम सब पापों को दूर करके हमें अन्न प्रदान करो और अपनी मङ्गलमयी रक्षाओं के द्वारा हमारी रक्षा करो ।६। (२६)

सूक्त ९१

(ऋषि—कश्यपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द–त्रिष्टुप्,

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वासारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१
वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥२
वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३
रुजा दृलहा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इंद ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥४
स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५
एवा पुनानो अपः स्वर्गा अस्मभ्य तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६।१

जैसे रणक्षेत्र से आकर घोड़े को उंगलियों से धोते हैं, वैसे ही शब्द करने वाले सोम को यज्ञस्थान में कर्म द्वारा निष्पन्न करते हैं। यह सोम देवताओं में श्रेष्ठ हैं और सभी स्तुतियों के स्वामी हैं। इन सोम को दश उंगलियाँ छन्ने के ऊपर रखती है ।१। यह देवताओं का साहचर्य प्राप्त सोम नहुष वंश वालों के द्वारा निष्पन्न होते और यज्ञ में गमन करते हैं। कर्म करने वालों के अभिषुत सोम जल और गव्य से मिश्रित होकर बारम्बार शुद्ध होते हुए यज्ञ को प्राप्त करते हैं ।२। यह पवमान सोम कामनाओं के वर्षक, शब्दवान् और सुन्दर कर्म वाले हैं। यह इन्द्र के निमित्त गव्य के पास गमन करते हैं। यह सोम स्तुतियों से सम्पन्न हैं। यह सूक्ष्म छिद्रों वाले छन्ने को लाँघकर द्रोण-कलश में गिरते हैं ।३।

हे सोम ! तुम संस्कारित होकर अन्न लाने वाले बनो । असुरों के दृढ़ पुरों को तोड़ो । निकट या दूर से आकर आक्रमण करने वाले राक्षसों को और उनके प्रेरकों को भी अपने तीक्ष्ण आयुधों से नष्ट कर दो ।४। हे सोम ! तुम सबके द्वारा स्तुत हो । मेरे अभिनव सूक्त को प्राचीन मार्ग के समान ग्रहणीय करो । तुम असीमित कर्मों वाले, असुरों को असह्य और शत्रुओं के हिंसक हो अपने महान् अंशों को इस यज्ञ स्थान में हमको प्राप्त कराओ ।५। हे पवमान सोम ! हमको गवादि युक्ति धन अनेक सन्तान, जल और अन्नयुक्त स्वर्ग प्रदान करो । अन्तरिक्ष के नक्षत्रों को तेजस्वी बनाओ । हमको दीर्घ आयु दो, जिससे हम सूर्य के चिरकाल तक दर्शन कर सकें ।६। (१)

सूक्त ९२

(ऋषि – कश्यपः । देवता–पवमानः सोमः । छन्द–त्रिष्टुप)

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवां अजुषत प्रयोभिः ॥१
अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन् होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥२
प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्तानु जनान्यतते पञ्च धीरः ॥३
तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥४
तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥५
परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥६।२

यह शोधनीय सोम हरे रङ्ग के हैं । ऋत्विजों द्वारा छन्ने में शत्रु-बध के लिये प्रेरित रथ के समान प्रेरित किये जाते हैं । यह सोम अपने

आनन्दकारी मन्त्र से देवताओं के लिए सेवनीय होते हैं। यह देवोपासक सोम इन्द्र के स्तोत्र को प्राप्त करते हैं।१। यह सोम क्रान्तप्रज्ञ और मनुष्यों के देखने वाले हैं। जिस प्रकार स्तुति करने वाले के लिए होता देवताओं के पास जाता है, वैसे ही यह सोम जल मिश्रित होकर छन्ने पर विस्तृत होते और यह सोम चमस आदि में एकत्र होते हैं।२। यह सोम मार्गों के ज्ञाता, सुन्दर बुद्धि वाले देवताओं के निकटस्थ हैं। यह सब कामों में रमण योग्य, पाँच वर्णों के अनुवर्ती और द्रोण-कलश में स्थित होने वाले हैं।३। हे क्षरणशील सोम! यह विख्यात तैंतीस देवता तुम्हारे स्वर्ग स्थान में निवास करते हैं। दशों उँगलियाँ तुम्हें ऊँचे उठे हुए छन्ने में शुद्ध करती हैं।४। जिस स्थान पर स्तोतागण एकत्र होकर स्तुति की इच्छा करते हैं, हम सोम के उसी स्थान को पावें। दिन के निमित्त प्रकाशित सूर्यात्मक सोम की ज्योति ने राजर्षि मनु की भले प्रकार रक्षा की थी। सबको नष्ट कर देने की कामना वाले असुर के लिए सोम ने अपने तेज को तीक्ष्ण किया था।५। देवाह्वाक ऋत्विज् जैसे यज्ञ-गृह में पहुँचते हैं और जैसे सत्यकर्म वाला राजा रणक्षेत्र में गमन करता है, वैसे ही यह क्षरणशील सोम, भैंस के जल में रहने के समान, द्रोण-कलश में निवास करते हैं।।६।। (२)

सूक्त ९३

(ऋषि—नोधाः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—त्रिष्टुप्)

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः।

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३
स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरन्धिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम् ॥४
नूनो रयिमुप मास्व नृवन्त पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५।३

भगिनी के समान एक साथ सींचने वाली दसों उँगलियाँ सोम को संस्कृत करती हैं। देवताओं द्वारा इच्छा किये गए सोम को यह प्रेरित करती हैं। हरे रंग के यह सोम दिशाओं की ओर गमन करते और कलश में स्थित होते हैं।१। कामनाओं की वर्षा करने वाले, देवताओं की इच्छा करते हुए यह सोम माताओं द्वारा शिशु का पालन किये जाने के समान ही पाले जाते हैं। यह सोम दूध आदि से मिश्रित होकर अपने आश्रित स्थान कलश को प्राप्त होते हैं।२। यह सोम गौओं के थनों को चूमते और धाराओं के रूप में गिरते हैं। जैसे धुले हुए वस्त्र से कोई पदार्थ ढक जाता है, वैसे ही चमस-स्थित सोम को गौएं अपने उज्ज्वल दूध से आच्छादित करती हैं।३। हे सोम! तुम क्षरणशील हो। अपने क्षरण काल में ही हमको अभीष्ट अश्वादि से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो। यह सोम रथयुक्त धनियों की इच्छा करने वाले हैं। इनकी सुन्दर बुद्धि हमको धन देने के लिए प्राप्त हो।४। हे सोम! जल को आनन्ददायक करो। हमको अपत्ययुक्त धन प्रदान करो। स्तुति करने वालों की आयु वृद्धि करो और हमारे यज्ञ में शीघ्र आगमन करो ॥५॥ (३)

सूक्त ९४

(ऋषि—कण्वः। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—त्रिष्टुप्।)

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥१
द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।

धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥२
परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥३
श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥४
इष मूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमानबाधसे सोम शत्रून् ॥५।४

सूर्य के समान सोम को रश्मियों के उन्नत होने पर अश्व के समान सुसज्जित करते हैं। उस समय परस्पर स्पर्धा करने वाली उँगलियां सोम को संस्कृत करती हैं। जैसे गौओं का पालन उनकी सेवा के लिए गोष्ठ में गमन करता है, वैसे ही जल में मिश्रित हुए सोम कलश में गमन करते हैं।१। यह सोम जल के धारण करने वाले अन्तरिक्ष को अपने तेज से ढकते हैं। इनके लिए सब लोक विस्तारमय हों। दूध देने वाली गौओं के गोष्ठ में शब्द करने के समान यज्ञ की साधन रूपिणी स्तुतियां सोम की स्तुति करती हैं।२। स्तोत्रों की ओर गमन करते हुए सोम वीर-पुरुषों के स्थान में झूमते हैं और देवताओं के धनों को यजमान को प्राप्त कराते हैं।३। धन की वृद्धि और समृद्धि के निमित्त सोम का स्तव किया जाता है।४। यह सोम स्तोताओं को अन्न और दीर्घायु देते हैं। सम्पत्ति दान के लिए यह अपनी किरणों से प्रकट होते हैं। सोम के प्रभाव से संग्राम में जय अवश्यम्भावी होती है। इनसे धन पाकर स्तुति करने वालों ने स्थिरता प्राप्त की थी।५। हे सोम! इस ज्योति को बढ़ाओ। हमको गौ-अश्व आदि पशु तथा बल और धन प्रदान करो। तुम इन्द्र को तृप्त करके सब राक्षसों का पराभव करने वाले हो। अतः हमारे इन पशुओं का भी संहार करो ॥६॥ (४)

सूक्त ६५

(ऋषि—प्रस्कण्वः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—त्रिष्टुप, पंक्तिः)

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभियतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥१
हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥२
अपामिवेदूर्मयस्ततु राणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छः ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति स चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥३
तं मर्मृजान महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४
इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो विष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५।५

यह हरे रंग के सोम निष्पीड़ित होने पर शब्द करते हैं और शुद्ध हो कर कलश में जाते हैं। मनुष्यों द्वारा शोधे जाते हुए सोम दुग्धादि में मिल कर अपने यथार्थ रूप को पाते हैं। हे स्तोताओ ! ऐसे इन सोम के लिए स्तुतियों का आविर्भाव करो।१। मल्लाह नाव को चलाता है उसी प्रकार यह सोम यज्ञ में यथार्थ वचन रूप स्तुतियों का प्रेरण करते हैं। यह उज्ज्वल सोम इन्द्रादि देवताओं के छिपे हुए शरीरों को श्रेष्ठ स्तोताओं के निमित्त आविर्भूत करते हैं।२। शीघ्र स्तोत्र करने वाले स्तोता जल की लहरों के समान मनस्विनी स्तुतियों को तरंगित करते हैं वे सोम की कामना करने वाली स्तुतियाँ सोम को प्राप्त होती हैं।३। सोम के शोधनकर्ता ऋत्विज ऊँचे स्थान में स्थित उन काम्यवर्षी सोम का भैंस के स ान दोहन करते हैं और इनकी मनस्विनी स्तुतियां सेवा करती हैं। यह सोम तीनों साधनों में रहने वाले और शत्रुओं के नाशक हैं। अन्तरिक्ष इन्हें धारण करता है।४। हे सोम !

स्तोत्रों का प्रेरक जैसे होता कर्म के लिए प्रेरित करता है, वैसे ही तुम स्तोता को यशस्वी बनाने के लिये उसकी बुद्धि को धन देने के लिए प्रेरित करो। तुम्हारे इन्द्र के साथ होने पर हम स्तोता सुन्दर अपत्ययुक्त धनों को और सौभाग्य को प्राप्त करें ॥५॥ (५)

सूक्त ९६

(ऋषि—प्रदर्दनो दिवोदास। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रनानीः से शूरो अग्रे रथानाँ गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१
समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विदाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥२
स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥३
अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते।
तदुशन्ति विश्वइमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥४
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनितात्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५।६

शत्रुओं की गौओं को प्राप्त करने की कामना करते हुए सोम सेनापति के समान रण-क्षेत्र में अग्रगन्ता होते हैं। उस समय सोमपक्षीय सेना उत्साहित होती है। इन्द्र के आह्वान को मंगलकारी करते हुए सोम मित्र रूप यजमानों के निमित्त गव्यादि को ग्रहण कर इन्द्र को शीघ्र बुलाते हैं।१। हरे वर्ण वाले सोम को उँगलियाँ निष्पन्न करती हैं। यह सोम रथ रूप छन्ने पर आरूढ़ होते हैं और उससे शुद्ध होकर सुन्दर स्तोत्र वाले स्तोता को प्राप्त होते हैं।२। हे सोम! तुम इन्द्र के लिए सुखकर पेय हो। तुम हमारे इस देवकाम्य यज्ञ में इन्द्र के पीने के लिये ही बरसो। तुम जल के कारण रूप और आकाश-पृथिवी को भी खींचने वाले हो। तुम विस्तृत अन्तरिक्ष से आकर संस्कार को प्राप्त

हुए हो। हमको सुन्दर धन आदि दो ।३। हे सोम ! हम पराजित न हों, इसलिए तुम हमारे यज्ञ में आगमन करो। मेरे सब मित्र स्तोता तुम्हारी रक्षा कामना करते हैं। हे सोम ! मैं भी तुम्हारी रक्षा माँगता हूँ ।४। यह क्षरणशील सोम आकाश, पृथिवी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु को भी उत्पन्न करने वाले हों ।।५।। (६)

ब्रह्मा देवानाँ पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्र मत्येति रेभन् ।।६
प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ।।७
स मत्सरः पुत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्द्रो पवमानो मनीष्यं शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ।।८
परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधार शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ।।९
स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ।।१०।७

शब्दायमान सोम छन्ने को लाँघते हैं। सोम देवताओं की स्तुति करने वाले ऋत्विजों के ब्रह्मा, ज्ञानियों के ऋषि, कवियों के शब्दप्रणेता, पक्षियों के स्वामी और वन्य पशुओं के प्रभु तथा आयुधों में श्रेष्ठ आयुध हैं ।६। लहरों वाली नदी के समान यह क्षरणशील सोम स्तुति-वाक्यों को प्रेरक करते हैं। गौओं को जानने वाले और अभीष्ट-वर्षक सोम छिपी हुई वस्तुओं को देखते हैं। यह सोम बलवानों को रोकने योग्य बलों के आश्रित रहते हैं। हे सोम ! तुम शत्रुओं के शासक, असीम बल वाले और हर्षकारी हो। तुम शत्रुओं के बल को जीतो और गौओं को प्रेरित करते हुए अपनी किरणों को इन्द्र की सेवा में भेजो ।८। इन रमणीय और हर्षप्रद सोम के पास देवगण गमन करते हैं। रणक्षेत्र में जाने वाले बलवान् अश्व के समान अनेक धाराओं वाले

पवमान सोम इन्द्र को आनन्दित करने के लिए द्रोण- कलश में गमन करते हैं ।९। यह सोम धनों के स्वामी, शत्रुओं से रक्षा करने वाले और सब प्राणियों के अधिपति हैं । यह शुद्ध होकर यजमान को श्रेष्ठ कर्म-मार्ग का उपदेश करते हैं ॥१०॥

(७)

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधींरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११
यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२
पवस्व सोम मधुमां ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१३
वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
स सिंधुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥१४
एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदिते रिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोलहा ॥१५।८

हे सोम ! कर्मों में चतुर हमारे पूर्व पुरुषों ने तुम्हारे सहयोग से ही यज्ञादि कर्म किये थे । तुम गतिमान् अश्वों को शत्रु-हनन कर्म में प्रेरित करते हो । हे सोम ! तुम इन्द्र रूप से हमको धन प्रदान करो और असुरों को हमसे दूर करो ।११। तुमने जैसे राजर्षि मनु के लिए अन्न धारण किया था, और शत्रुओं को मारा था, जैसे तुम उनको धन दान के लिए आए थे, वैसे ही हे सोम ! हमको भी धन प्रदान करने के लिए इन्द्र के उदर में प्रविष्ट होओ ।१२। हे सोम ! तुम यथार्थ यज्ञकर्ता हो । तुम्हारा रस हर्षप्रदायक है । तुम जल में मिलकर छन्ने से छनो । तुम इन्द्र के पीने के योग्य होकर द्रोण-कलश में स्थित होओ ।१३। हे सोम ! तुम यज्ञकर्त्ता यजमानों को विभिन्न ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले हो । अन्न की कामना से तुम अनेक धाराओं सहित गिरते हो । तुम आकाश से बरसो और दुग्धादि से मिश्रित होकर द्रोण-कलश के आश्रित होते हुए हमारी आयु की वृद्धि करो ।१४। वेगवान् अश्व के समान यह

सोम शत्रुओं को लाँघते हैं। स्तोत्रों द्वारा यह परिमार्जित होते हैं। ये गोदुग्ध के समान पवित्र और विस्तृत घर के समान आश्रय-स्थान हैं। चाबुक द्वारा नियन्त्रित अश्व के समान यह स्तोत्रों से नियन्त्रित होते हैं॥१५॥ (८)

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६
शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येभि रेभन् ॥१७
ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मि सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९
मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥२०॥६

ऋत्विजों द्वारा संस्कृत तीक्ष्ण धारों वाले सोम अपने दृढ़ और तेजस्वी रूप को प्रकट करें। हे सोम! हमको पशु और आयु प्रदान करो। तुम अश्व के समान सर्वत्र गमनशील हो। हम अन्न की कामना वालों को अन्न प्रदान करो।१६। सबके द्वारा कामना किये गये सोम को मरुद्गण बालक के समान संस्कृत करते हैं। वहनशील सोम को सप्तगणों से सजाते हैं। यह सोम स्तोत्रों के साथ शब्द करते हुए दशापवित्र के सूक्ष्म छिद्रों का अतिक्रम करते हैं।१७। आकाश में वास करने की इच्छा वाले सोम सर्वद्रष्टा, स्तुत्य, वाक्य-विन्यासकर्त्ता, ऋषियों के समान मनस्वी, सूर्य के संभक्त और पूजनीय हैं। यह यज्ञ में विराजमान और स्तुतियों से अलंकृत इन्द्र के प्रकट करने वाले हैं।१८। अन्तरिक्ष का सेवन करने वाले महिमावान् सोम आयुधों को धारण करते, जल को प्रेरित करते और पात्रों में अवस्थित होते हैं। वह प्रशंसनीय कर्म वाले सोम चन्द्रमा के चतुर्थ धाम का सेवन करते हैं

।१९। यह सोम पात्र में गमनशील, अभिषवण फलकों पर आश्रित, धन देने के लिए अश्व के समान वेगवान् और वृषभ के समान शब्द करने वाले हैं ।२०। (९)

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीलञ्चम्वो रा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१
प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशां आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥२२
अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३
आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेवयन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥२४।१०

हे सोम ! तुम ऋत्विजों द्वारा निष्पन्न होकर क्षरित होओ । तुम बार-बार शब्द करते हुए छन्ने को प्राप्त होओ । तुम्हारा हर्ष प्रदायक रस इन्द्र को हर्षित करने वाला हो ।२१। शब्दवान् सोम गायक-श्रेष्ठ हैं । इनकी धाराओं को निर्मित किया जा रहा है । यह गव्य-युक्त होकर द्रोण-कलश में क्षरित हो रहे हैं । यह सोम स्तुतियों के समान गान करते हुए पात्रों को प्राप्त होते हैं ।२२। हे सोम ! तुम स्तुति करने वालों के द्वारा संस्कृत होने वाले और पात्रों में क्षरित होने वाले हो । तुम शत्रुओं का वध करते हुए आगमन करते हो । पक्षी के वृक्ष का आश्रय लेने के समान, शुद्ध सोम कलश का आश्रय लेते हैं ।२३। हे सोम ! जैसे माता अपने पुत्र के लिये दूध देती है, वैसे ही तुम्हारा सुन्दर धाराओं से युक्त तेज यजमानों के लिए धन का दोहन करता है । यह सोम हरे रङ्ग के हैं और यज्ञ में लाए जाकर ऋत्विजों द्वारा वरण किये जाते हैं । देवताओं की कामना करने वाले यजमानों के यज्ञ में और वसतीवरी जलों में यह सोम बारम्बार, शब्द करते हैं ।२४।

सूक्त ९७

(ऋषिः—वसिष्ठः, इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः, वृषगणो वासिष्ठः मन्युर्वासिष्ठः,

उपमन्युर्वासिष्ठा, व्याघ्रपाद्वासिष्ठः, शक्तिर्वासिष्ठः, कर्णश्रुद्वासिः, मृजीको वासिष्ठः, वसुको वासिष्ठः, पाराशरः शक्तिः कुत्सः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—त्रिष्टुप्)

अस्य प्रेसा हेममा पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥१
भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान्कविचनानि शंसन् ।
आ बच्यस्वचम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२
अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
समू प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसा क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥४
इंदुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नभिः स्तवानो अनु धाम पूव मगन्निन्द्रं महते सोभगाय ॥५॥११

यजमान के पशु सम्पन्न श्रेष्ठ यज्ञ मण्डप में जैसे ऋत्विज गमन करते हैं वैसे ही निष्पन्न सोम शब्द करते हुए छन्ने की ओर जाते हैं। यह सोम सुवर्ण के द्वारा शुद्ध हुए अपने तरंग-युक्त सुमधुर रस को देवताओं के पास प्रेरित करते हैं ।१।हे सोम ! कल्याणकारी तेज के धारक, स्तोत्रों के प्रशंसक, चैतन्य और सबके देखने वाले हो । तुम इस मण्डप में अभिषवण फलकों पर आश्रय लो ।२। यह सोम आनन्दप्रद, यशस्वी और पार्थिव हैं । यह छन्ने के द्वारा शुद्ध होते हैं । हे सोम ! तुम शुद्ध होकर शब्द करो और अपनी कल्याणकारी रक्षाओं द्वारा हमारा पालन करो ।३। हे स्तोताओ ! देवताओं की पूजा करते हुए उनकी सुन्दर स्तुति करो और अभीष्ट धन के लिये सोम को शुद्ध करो । यह सोम छन्ने में छनते और कलश में बैठते हैं ।५। यज्ञ करने वालों के द्वारा प्रेरित सोम देवताओं से मित्रता करने के लिए कलश में गिरते और स्तुत होकर स्वर्ग में गमन करते हैं। यह अत्यन्त

सुख, सौभाग्य और कल्याण के निमित्त इन्द्र का सामीप्य प्राप्त करते हैं ।५। (११)

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूय पात स्वतिभिः सदा नः ॥६
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावक पदः वरोहो अध्येति रेभन् ॥७
प्र हंसासस्तृपल मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आंगूष्यं पवमान सखायो दुमर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥८
स रहत उरुगायस्य जूतिं वृथा कीलन्त मिमते न गावः ।
परीणमं कृणुते तिग्मश्रृङ्गों दिवा हरिर्दद्दशे नक्तमृज्रः ॥९
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पयरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०।१२

हे सोम ! तुम स्तुतियाँ करने पर धन के निमित्त आगमन करो । तुम्हारा हर्ष प्रदायक रस संग्राम में सहायक होने के लिए इन्द्र के पास गमन करे । तुम हमारी रक्षा के लिए देवताओं के साथ एक ही रथ पर आरूढ़ होकर आगमन करो ।६। उशना के समान स्तोत्र करने वाले ऋषि इस मन्त्र के रचयिता हैं । वे इन्द्र की उत्पत्ति के ज्ञाता हैं । इन ऋषियों के मित्र पवित्राकारक, अनेक कर्मों वाले सोम शब्द करते हुए पात्रों में गमन करते हैं ।७। वृषगण नामक ऋषि शत्रुओं के बल से डर कर शत्रु-हिंसक सोम के लिए यज्ञ स्थान को प्राप्त हुए । यह पवमान सोम स्तुतियों के योग्य और दुर्भर्ष हैं । स्तोतागण इनके प्रति श्रेष्ठ वाद्यों के सहित स्तुतियों को गाते हैं ।८। यह सोम बहु-स्तुत, शीघ्र-गन्ता, क्रीड़ाकुशल हैं । अन्य व्यक्ति इनकी समानता नहीं कर सकते । यह सोम अनेक प्रकार के तेजों से सम्पन्न हैं । अन्तरिक्ष सोम दिन में हरे और रात्रि में शुभ्र प्रकाश वाले दिखाई देते हैं ।९। असुरों के सहारक, पवमान, गमनशील, बली सोम इन्द्र के लिये बलकारी रस को प्रेरित करते हुए क्षरित होते हैं । यह बल स्वामी सोम वरणीय धनों के दाता और शत्रुओं का नाश करने वाले हैं ।१०। (१२)

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्र स्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११
अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येववग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३
रसाय्याः पयसा पयसा पिन्वमाम ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः सतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४
एवा पवस्व मदिरोमदायोग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्ण भरमाणोरुशन्तगव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥१३

यह सोम पाषाणों द्वारा अभिषुति होकर अपनी हर्ष प्रदायक धाराओं के द्वारा देवताओं को सींचते हैं। यह छन्ने के द्वारा क्षरित होते हैं। यह उज्ज्वल सोम इन्द्र के आश्रय के निमित्त इन्द्र को हर्ष प्रदान करते हुए गिरते हैं।११। यह शोधित, क्रीड़ाशील, इन्द्रादि देवताओं के पूजक और प्रियकर्मा सोम क्षरित होते हैं। तब दश उँगलियाँ उन्हें छन्ने पर रखती हैं।१२। वृषभ के समान शब्द करते हुए सोम आकाश पृथिवी को व्याप्त करते हैं। रणक्षेत्र में भी सोम का शब्द इन्द्र के समान ही सुनाई पड़ता है। इनके उच्च स्वर के कारण सभी इनको जान लेते हैं।१३। हे सोम ! तुम मधुर रस वाले, शब्दवान् और दूध से मिलने वाले हो। हे पवमान सोम ! तुम जल से सींचे जाकर शुद्ध होते हो और जब तुम्हारी धाराऐं बढ़ती हैं तब इन्द्र के प्रति गमन करते हो।१४। हे सोम ! जल के रोकने वाले मेघ को अपने तीक्ष्ण आयुधों से खोल कर नीचे गिरने वाला करते हो। तुम इन्द्र के हर्ष के लिये क्षरित होओ। तुम हमारी गौओं की कामना करने वाले हो अतः शीघ्र क्षरित होओ।१५। (१३)

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व परिवसि वृण्वन् ।

घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधिष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६
वृष्टिं नो अर्ष दिव्य जिगत्नुमिलावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन् बन्धूँरिमाँअवराँ इन्दो वायून् ॥१७
ग्रन्थिं न विष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८
जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥१९
अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँउप याता पिबध्यै ॥२०॥१४

हे सोम ! तुम स्तुतियों से हर्षित होकर हमारे यज्ञ मार्ग को सुगम करते हुए द्रोण-कलश में गिरो । तुम अपनी धाराओं सहित छन्ने पर जाते हुए, दुष्ट शत्रुओं को तीक्ष्ण आयुध से हनन करो ।१६। हे सोम ! तुम अत्यन्त सुख देने वाली, गमनशीला, आकाश से उत्पन्न, दान वाली वृष्टि करो । और पृथिवी पर चलने वाले उसके पुत्र के समान वायु की खोज करते हुए आगमन करो ।१७। हे सोम ! जैसे गाँठ को खोल कर अलग करते हैं, वैसे ही मुझे पापों से मुक्त करो । तुम मुझे श्रेष्ठ बल वाला मार्ग बताओ । तुम अश्व के समान शब्द करने वाले गृह से युक्त और शत्रु हन्ता हो, अतः मेरे पास आगमन करो॥१८॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त हर्ष उत्पन्न करने वाले हो । तुम देवताओं की कामना वाले यज्ञ में धाराओं सहित आगमन करो । सुन्दर गन्ध, रूप, गुण वाले होकर मनुष्यों में कर्म क्षेत्र में विचरण करते हुए प्रेरणा दो ।१९। जैसे छूटे हुए अश्व को रथ में बाँधकर शीघ्रता से गन्तव्य स्थान को जाते हैं, वैसे ही यज्ञ में संस्कृत सोम द्रोण-कलश की ओर शीघ्रता से गमन करते हैं । हे देवताओ ! सोम का पान करने के लिए उसका सामीप्य प्राप्त करो ।२०। (१४)

एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥२१

तक्षद्यद्रीं मनसो वेनतो वाग्जेष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदिमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥२२
प्र दानुदो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यभ्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३
पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥२४
अर्वा इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रावृहतीरिषो दा भवासोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५॥१५

हे सोम ! आकाश से हमारे यज्ञ में अपने रस की वर्षा करो । तुम हमको कामना के योग्य, समृद्ध और अपत्ययुक्त श्रेष्ठ धन प्रदान करो ।२१। अन्तःकरण से जैसे ही इच्छित वचन निकलता है, वैसे ही यज्ञ के समय अत्यन्त चमत्कृत द्रव्य लाया जाता है । इस सोमरूप द्रव्य के प्रति गो-दुग्ध शीघ्र ही गमन करता है तब सोम कलश में आश्रित होते हैं । यह सोम सब के प्रिय और स्वामी के समान पूज्य हैं ।२२। दानियों के अभीष्टों के पालक आकाश में उत्पन्न सुन्दर बुद्धि वाले सोम अपने रस को इन्द्र के लिए क्षरित करते हैं । दसों ऊँगलियाँ यथेष्ठ सोमों को अभिषुत करती हैं । यह सोम सज्जन पुरुषों में बल धारण करते हैं ।२३। धनों के स्वामी, मनुष्य द्रष्टा, निष्पन्न सोम देवताओं और मनुष्य के हितैषी जलों के धारणकर्त्ता हैं ।२४। हे सोम ! अश्व के सग्राम में गमन करने के समान तुम यजमानों के अन्न-लाभ के निमित्त इन्द्र और वायु के पान करने के लिए गमन करो । तुम हमको विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करो । हे संस्कृत सोम ! तुम हमारे लिए धन प्राप्त कराने वाले होओ ।२५। (१५)

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवःसुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥२६
एवा देव देवताते पवस्व महे सोमप्सेरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ।२७

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये दजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८
शत धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिवं आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥२९
दिवो न सर्गा असमृग्रमह नां राजा न मित्रं प्र मिनासि घोरः ।
पितुर्न पुत्रःक्रतुभिर्यतान आपवस्व विशेअस्याअजीतिम् ॥३०।१६

सुन्दर बुद्धि वाले यह सोम देवताओं को तृप्त करने वाले यज्ञ-सम्पन्न कर्त्ता सबके लिए ग्रहणीय, होताओं के समान इन्द्रादि के स्तोता और अत्यन्त शक्तिशाली हैं । यह हमें अपत्ययुक्त घर दें ।२६। हे सोम ! तुम स्तुत्य हो । देवता तुम्हारा पान करते हैं । इस देव-काम्य यज्ञ में देवताओं के पान के लिए ही क्षरित होओ । हम तुम्हारे द्वारा प्रेरित होकर शत्रुओं को पराभूत करेंगे । संस्कारित होकर तुम इस आकाश-पृथिवी को हमारे सुन्दर आश्रय वाली करो ।२७। हे सोम ! तुम शत्रुओं के लिए भयानक मन से भी अधिक वेगवान् और ऋत्विजों द्वारा निष्पीड़ित एवं अश्व के समान शब्द करने वाले हो । तुम हमको सरल मार्ग बताकर कर्मों में लगाओ ।२८। हे सोम ! तुम देवताओं के निमित्त जन्म लेते हो । तुम्हें शोधन करने वाले ऋत्विज तुम्हारी सैकड़ों धाराओं को शुद्ध करते हैं । हे सोम ! तुम महान् धनों के आगे-आगे चलते हो । आकाश में छिपे धनों को तुम हमारी ओर प्रेरित करो ।२९। सोम की धाराऐं भी सूर्य की रश्मियों के समान ही निर्मित की जाती हैं । जैसे कर्मवान् पुत्र पिता का पराभव नहीं करता, वैसे ही तुम इन प्राणियों को पराभूत मत करो, क्योंकि तुम इनके मित्र और स्वामी भी हो ।३०।

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्र वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैं ॥३१
कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाच मतिभिः कवीनाम् ॥३२

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावोयन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमयन्ति मतयो वावशानाः ॥३४
सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतःपूयतेअज्यमानःसोमेअर्कास्त्रिष्टुभः स नवन्ते ॥३५।१७

हे सोम ! जब तुम छन्ने को लाँघकर गमन करते हो, तब तुम्हारी धारायें मधुर होती हैं। तुम गौ दुग्ध के प्रति क्षरित होते और अपने पूजनीय तेज से आकाश को पूर्ण करते हो ।३१। यह सोम यज्ञ मार्ग पर गमन करते हुए बार-बार शब्दायमान होते हैं। हे सोम ! तुम उज्ज्वल हो और विशिष्ट शोभा को प्राप्त हो रहे हो। तुम स्तुति करने वाले की मति को शब्दोच्चारण के लिए प्रेरित करते हो ।३२। हे सोम ! तुम इस देव-यज्ञ में अपनी धाराओं को क्षरित करते हुए कलश की ओर गमन करो। तुम आकाश में उत्पन्न हुए हो। तुम अपने शब्द के द्वारा सूर्य के तेज को प्राप्त होओ ।३३। तीनों वेदों का स्तोता यजमान यज्ञ धारण करने वाला है और वह सोम को कल्याणकारिणी स्तुतियाँ करता है। सोम को अपने दूध में मिश्रित करने के लिए गौयें सोम के समीप गमन करती हैं ।३४। विद्वान् स्तोता स्तुतियों से सोम का पूजन करते हैं। हर्षदात्री गौऐं सोम की कामना करती हुई सोम को गोरस से सींचती हैं। वह सोम ऋत्विजों द्वारा पूर्ण किये जाते हैं। त्रिष्टुप् छन्दात्मक मंत्र भी इन सोमों से संयुक्त होते हैं ।३५। (१७)

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥३६
आ जागर्विर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७
स पुनान उप सूरे न धाताभे अप्रा रोदसी विष आवः ।

प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणीब प्रयंसत ।।३८
स वर्धिता वधनः पूयमानः सोमोमीढ्वाँअभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ।।३९
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधमञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रेअधिसानोअव्येबृहत्सोमो बावृधेसुवान इन्दुः ।।४०।१८

हे सोम ! शब्द करते हुए तुम पात्रों में सींचे जाकर कल्याण करने वाली रक्षाओं के द्वारा हमारे स्तोत्रों को बढ़ाओ और महान् शब्द करते हुए इन्द्र के उदर में विश्राम लो । हे सोम ! हमारी स्तुतियों को सशक्त करो ।३६। कल्याण हस्त ऋत्विज इन परस्पर सुसंगत सोम का छन्ने से स्पर्श कराते हैं । यह जागरणशील सोम शुद्ध होकर चमसों को प्राप्त होते हैं ।३७। आकाश पृथिवी को अपनी महिमा द्वारा व्याप्त करने वाले निष्पन्न सोम इन्द्र के पास गमन करते हैं । यह सोम अन्धकार का भी नाश करते हैं । इनकी मधुर धारा पालन करने वाली है । यह सोम हमको शीघ्र धन प्रदान करें ।३८। यह सोम अभीष्ट वर्षक, देवों के बढ़ाने वाले, प्रबुद्ध और छन्ने में निष्पन्न हुए हैं । यह अपने तेज से हमारा पालन करें । सोम पीकर पणियों द्वारा चुराई हुईं गौओं के मार्ग को जानते हुए हमारे पूर्वज अन्धेरे से ढके पर्वत को सोम तेज से देखते हुए गौओं को प्राप्त कर सके ।३९। यह सोम जल की वृष्टि करने वाले, लोकों के लिए जल धारण करने वाले, अन्तरिक्ष की प्रजाओं को प्रकट करते हुए सब का अतिक्रमण करते हैं । कामनाओं के वर्षक यह सोम ऊँचे उठे हुए छन्ने पर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।४०। (१८)

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ।।४१
मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ।।४२

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥४३
मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न पवस्वा समुद्रात् ॥४४
सोमःसुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥४५॥१६

जल के द्वारा उत्पन्न सोम देवताओं के आश्रित हुए इन्होंने इन्द्र के लिए बल धारण किया और सूर्य को तेज प्रदान किया। इन सोम ने अनेकों प्रशंसनीय काम किये हैं ।४१। हे सोम ! तुम शुद्ध होकर मित्रा-वरुण के लिए तृप्ति के साधन होते हो और मरुद्गण के बल को तथा इन्द्र के हर्ष को बढ़ाते हो । हे सोम ! तुम आकाश-पृथिवी को पुष्ट करो, हमारे धन और अन्न के लिए वायु को हर्षयुक्त करो और हमको धन प्रदान करो ।४२। हे सोम ! तुम विघ्नों के नष्ट करने वाले हो । तुम हिंसाकरी असुरों को भी उनके कर्मों से रोकने में समर्थ हो । तुम अपने क्षरणशील रस को दूध से मिश्रित करते हुए पात्रगण होते हो । हे इन्द्र के सखा रूप सोम ! तुम हमारे भी सखा होओ ।४३। हे सोम ! तुम अपने मधुमय कोश की वृष्टि करो । हमको काम्य अन्न और सुन्दर अपत्य प्रदान करो । शुद्ध होने पर तुम इन्द्र के लिए आनन्द देन वाले बनो और हमारे लिए अन्तरिक्ष के धनों को प्राप्त कराओ ।४४। जैसे प्रवाहित नदी निम्नगामिनी होती है, उसी प्रकार सोम नीचे होकर कलश में गिरते हैं । जैसे वेगवान् घोड़ा लक्ष्य पर जाता है वैसे ही निष्पन्न सोम गमन करता है । जल से मिश्रित होकर यह कलश में प्रविष्ट होता है ।४५। (१६)

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः नामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६
एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव यातिव याति समनेषु रेमन् ॥४७
नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।

अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावादेवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८
अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोभि मित्रावरुणा पूयमानः।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥४९
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।
अभिचन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्नथिनो देव सोम ॥५०।२०

हे सोम की कामना वाले इन्द्र ! वेग वाले श्रेष्ठ सोम तुम्हारे लिए चमसों में गिरते हैं। हय सब के देखने वाले, बलवान् सोम देवताओं की कामना करने वाले यजमानों की कामना पूर्ण करने में समर्थ किये गये हैं।४६। रसरूप धार से क्षरित होने वाले सोम शीत, ताप, वर्षा के शमनकर्त्ता यज्ञ को बनाते हैं। यही सोम जल में अवस्थान करते हुए स्तोत्रोच्चारक होता के समान शब्द करते हुए यज्ञ स्थान में गमन करते हैं और यही अपने तेज से सब के धारक आकाश-पृथिवी को व्याप्त करते हैं।४७। हे कामना के योग्य सोम ! तुम हमारे यज्ञ में आकर वसती-वरी जलों में गिरो। तुम सब को प्रेरणा देने वाले, रथी, याजिक मधुर रस से पूर्ण एवं सुस्वादु हो। देवताओं के समान सत्य स्तुतियों से भी सम्पन्न हो।४८। हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर वायु मित्र और वरुण के समीप उनके पीने के लिए गमन करो। वेगवान् रथ पर आरूढ़ होने वाले सुकर्मा अश्विनीकुमारों तथा वज्रहस्त और कामनाओं के वर्षक इन्द्र के पास भी गमन करो।४९। हे सोम ! सुन्दर अस्त्रालङ्कारों सहित आगमन करो। निष्पन्न होकर हमारी प्रतिष्ठा के लिए स्वर्ण प्रदान करो। तुम हमको रथ के सहित अश्व दो और मधुर दुग्धदात्री सद्यः प्रसूता सुन्दर गौ भी प्रदान करो।५०। (२०)

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥५१
अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥५२
उत न एवा पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे।

षष्टि सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥५३
महीमे अस्य वृषनाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥५४
सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दातासिमघवामघवद्‌भ्य इन्दो ॥५५॥२१

हे सोम ! तुम छन्ने से शुद्ध होकर हमको दिव्य और पार्थिव धन प्रदान करो । जमदग्नि के समान हमको उपभोग्य धन दो तथा धनोपार्जन के योग्य कर्म-बल भी हमें प्रदान करो ।५१। हे सोम ! यजमानों के वसतीवरी जलों को प्राप्त होओ । अपनी निष्पन्न धारा से सब धनों की वर्षा करो। तुम्हारे पास वायु के समान वेग वाले सूर्य और इन्द्र भी गमन करते हैं वे तुम्हारे द्वारा तृप्त होकर पुत्र प्रदायक हों । हे सोम ! तुम भी मुझे सुन्दर कर्म वाला पुत्र प्राप्त कराओ ।५२। हे सोम ! तुम सबके आश्रय-योग्य हो । तुम हमारे इस यज्ञ में अपनी धाराओं सहित बरसो। वृक्ष से फल पाने की इच्छा वाला पुरुष वृक्ष को कँपा कर फल प्राप्त करता है, उसी प्रकार सोम ने साठ सहस्र धनों को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए हमें प्रदान किया ।५३। सोम के यह दो कर्म-बाण वृष्टि और शत्रुओं का पतन करना बहुत आनन्द देने वाले हैं । घोड़ों के द्वारा युद्ध और द्वन्द युद्ध इन दोनों के द्वारा सोम ने शत्रुओं को मारा और उन्हें भगा दिया । हे सोम ! अयज्ञिकों को और सब प्रकार के शत्रुओं को यहाँ से भगाओ ।५४। हे सोम ! तुम शुद्ध होकर दशापवित्र को प्राप्त होते हो । अग्नि, वायु और सूर्य इन तीनों ज्योतियों को तुम पाते हो । तुम दिये जाने योग्य धनों को देने वाले सब धनिकों से भी श्रेष्ठ धनी हो ।५५।

(२१)

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्सा ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥५६
इन्दु रिहन्ति महिषा अदब्धा पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समंजते रूपमपां रसेन ॥५७

त्वया वय पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रोवरुणोमामहन्तासदिति:सिन्धु पृथिवी उतद्यौः ॥५८।२

यह सोम सब संसार के स्वामी,विद्वान्, और सब के जानने वाले हैं। वह अपने रसों को यज्ञ की ओर प्रेरित करते हुए छन्ने से निकलते हैं।५६। धन की कामना वाले स्तोता जैसे शब्द करते हैं, उसी प्रकार कर्मों के ज्ञाता ऋत्विज् दशों नँगलियों द्वारा शब्दायमान सोम को शुद्ध करते हुए जल में मिलाते हैं। देवगण सोम की धारा के पास शब्द करते हुए उसके माधुर्य रूप रस का आस्वादन करते हैं।७। हे सोम ! छन्ने में शोभित हुए तुम हमको संग्राम में अनेक कर्म करने वाले बनाओ। पृथिवी, आकाश, समुद्र, मित्र, वरुण और अदिति आदि सब हमको धन-युक्त प्रतिष्ठा दें।।५८।। (२२)

सूक्त ९८

(ऋषि—अम्बरीष ऋजिष्वा च । देवता—पवमानः सोमः ।
छन्द—अनुष्टुप् बृहती)

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्द्रो सहस्त्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥१
परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत ।
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥२
परिष्य सुनावो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥३
स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे ।
इन्द्रो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥४
वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः तुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥५

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियामिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥६।२३

हे सोम ! तुम विभिन्न पुष्टियों से सम्पन्न, बहुतों द्वारा कामना किये जाने वाला, यश से सम्पन्न, अत्यन्त पराक्रमी को भी पछाड़ने वाला बलशाली पुत्र प्रदान करो ।१। जैसे रथारूढ़ वीर कवच धारण करता है, वैसे ही छन्ने पर क्षरित होने वाला सोम दूध से आच्छादित होता है। काठ के पात्र से चलते हुए सोम धारा रूप में गिरते हैं ।२। संस्कारित सोम देवताओं की प्रेरणा से हर्ष के निमित्त छन्ने पर गिरते हैं। सुन्दर तेज के सहित सोम दुग्धादि कामना करते हुए धारा के रूप में गमन करने वाले होते हुए अन्तरिक्ष में पहुंचते हैं ।३। हे सोम ! तुमने अनेक उपासकों और हविदाता यजमानों को धन प्रदान किया है और मुझे भी तुम बहु असंख्यक पुत्रादि से युक्त सुन्दर धन देते हो ।४। हे सोम ! तुम हमारे हो। तुम शत्रु का नाश करने में समर्थ हो। अनेकों द्वारा कामना किए गए और तुम्हारे द्वारा दिये गये श्रेष्ठ धन और अन्न हमारे पास हों। हे ऐश्वर्य रूप सोम ! हम कल्याण से सुसंगति करें ।५। जिन सोमों को कल्याणकारिणी भगिनी रूपा दश उँगलियाँ पाषाणों से अभिषुत करतीं और सुन्दर धाराओं वाले सोम को वसतीवरी में मिलाती हुई सेवा करतीं हैं, वह सोम यजमान द्वारा निष्पन्न किये जाते हैं ।६।(२३

परि त्यं हर्यतं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
यो देवान्विश्वां इत्परि मदेन सह गच्छति ॥७
अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्वर्ण हर्यतः ॥८
स वां यज्ञेषु मानवी इन्दर्जनिष्ट रोदसी ।
देवी देवी गिरिष्ठा अस्रेधं तं तुविष्वणि ॥९
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

नरे च दक्षिणवते देवाय सदनासदे ॥१०
ते प्रत्नासो व्युष्टियु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सुनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥११
तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२।२४

सबके द्वारा कामना किये गये सोम दशापवित्र द्वारा शोधित होते हैं। यह सोम अपने हर्षयुक्त और हृष्टिप्रद रस के सहित सब देवताओं की ओर गमन करते हैं ।७। हे स्तोताओ ! तुम बल के साधन रूप सोम-रस को पीकर रक्षित होओ, क्योंकि सबके द्वारा कामना किये गए यह सोम स्तोताओं को यथेष्ट धन प्रदान करने वाले होते हैं ।८। उच्च शब्द से गुंजरित यज्ञ में ऋत्विजों ने सोम को निष्पीड़ित किया । हे मनुजा द्यावा-पृथिवी ! पर्वत पर निवास करने वाले सोम ने ही तुम दोनों को पूर्ण किया है ।९। हे सोम ! तुम वृत्र-हन्ता इन्द्र के पीने के लिये कलशों में सीचे जाते हो और देवताओं को हवि देने की इच्छा वाले तथा ऋत्विजों को दक्षिणा देने वाले यजमान तुम्हें यथेष्ट फल के लिए सींचते हैं ।१०। नित्य प्रति प्रातः सवन में यह पुरातनकालीन सोम छन्ने पर गिरते हैं। उन प्रातः समय अभिषुत होने वाले सोम को देखते ही हरश्चित् नामक दस्यु गल गये अथवा कहीं जाकर छिप गये ॥११॥ हे मित्रो ! इस सुन्दर गन्ध वाले, अत्यन्त हृष्टिप्रद सोम का हम तुम पान करें और उस बलकारी सोम की शरण को प्राप्त हों ॥१२॥ (२४)

सूक्त ९९

(ऋषि—रेभसूनू काश्यपौ । देवता—पवमानः । छन्द—बृहती, अनुष्टुप्)

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥१
अधा क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥२

तमस्य मर्जयामसि मदो इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ।।३
तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां बिभ्रतीः ।।४
तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ।।५।२५

शत्रुओं के धर्षक, सबके द्वारा कामना किये गए सोम के निमित्त बल प्रकट करने वाले धनुष पर प्रत्यंचा को चढ़ाते हैं। पूजा की इच्छा वाले ऋत्विज् विद्वान् देवताओं के सामने श्वेत वर्ण वाले छन्ने को विस्तृत करते हैं।१। यजमानों की कर्मों में लगी हुई उँगलियाँ सोम को कलश में गमन करने की प्रेरणा करती हैं तब यह सोम यज्ञों में पहुँचते हैं।यह सोम जल से सुशोभित होकर अन्नों की ओर गमन करने वाले होते हैं।२। इन्द्र द्वारा पान किये जाने वाले रस को हम अलंकृत करते हैं। गमनशील स्तोता पूर्वकाल में और अब भी यज्ञ में सोम-रस का पान करते हैं।३। प्राचीन स्तोत्रों का उच्चारण करने वाले स्तोता उन निष्पन्न सोमों की स्तुति करते हैं। उँगलियाँ भी देवताओं को सोमरूप हवियां प्रदान करती हैं ।४। सबको धारण करने वाले सोम को छन्ने पर शुद्ध करते हैं। उस जलशक्ति सोम की दूत के समान ही स्तोतागण स्तुति करते हैं ।।५।। (२५)

स पुनानो मदिन्ततः सोमश्चमूषु सीदती ।
पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ।।६
स मृज्यते सुकर्मभिदवो देवेभ्यःसुतः ।
विदे यदासु संदर्दिर्महीरपो वि गाहते ।।७
सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्तमो वि नीयसे ।
इंद्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ।।८।२६

अत्यन्त हर्ष प्रदायक सोम शुद्ध होकर चमसों पर बैठते और रस देते हैं। अभिषुत सोम हमारे कर्मों के ईश्वर हैं ।६। देवताओं के लिए निष्पन्न होने वाले उज्ज्वल सोम को ऋत्विज शुद्ध करते हैं। जबवे जल में स्नान करते हैं तब प्रजाओं को धन देने वाले माने जाते हैं ।७। हे सोम ! तुम सर्वत्र बढ़ते हुए और शुद्ध होकर छन्ने पर लाये जाते हो। तुम अत्यन्त हर्षदायक होकर इन्द्र के निमित्त चमसों पर प्रतिष्ठित होते हो ॥८॥ (२६)

सूक्त १००

(ऋषि:—रेभसूनू काश्यपो। देवता—पवमानः सोमः। छन्द—अनुष्टुप्)

अमी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१
पुनान इंदवा भर सोम द्विवर्हसं रयिम्।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥२
त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥३
परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति।
रंहमाणा व्यव्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥४
क्रत्वे दक्षाय नः कवे: पवस्व सोम धारया।
इंद्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५।२७

नवोढ़ा गौऐं जैसे अपने बछड़े को चाटती हैं, उसी प्रकार इन्द्र के प्रिय और सबके द्वारा इच्छित सोम जल मिलता है।१। हे सोम ! तुम तेजस्वी हो। दिव्य और पार्थिव धनों को प्राप्त कराओ। यजमान के गृह में निवास करते हुए तुम उसके समस्त धनों का पालन करते हो।२। हे सोम ! मेघ जैसे जल वृष्टि को प्रेरित करता है, वैसे ही तुम अपनी धारा की प्रेरणा करो। तुम दिव्य और पार्थिव धनों को देने वाले

हो ।३। संग्राम में जैसे शत्रु को जीतने वाले वीर पुरुष का अश्व स्वच्छन्द दौड़ता है, वैसे ही हे सोम ! तुम्हारी वेगवती धाराऐं छन्ने पर दौड़ती हैं ।४। हे सोम ! तुम इन्द्र, मित्र और वरुण के लिये निष्पन्न हुए हो । तुम हमारे लिए ज्ञान और बल देने वाले होते हुए प्रवाहित होओ ॥५॥ (२७)

पवस्व वाजसातम पवित्रे धारया सुतः ।
इंद्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६
त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥७
पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥९।२८

हे सोम ! तुम निष्पीड़ित होकर अन्नदाता के लिए अपनी उज्ज्वल धाराओं सहित क्षरित होओ । तुम इन्द्र, विष्णु और अन्य देवताओं के लिए मधुर हर्ष प्रदायक होओ ।६। हे सोम ! गौओं द्वारा बछड़ों को चाटने के समान, हवि वाले यज्ञ में जल तुम्हें चाटता है ।७। हे सोम ! तुम अपनी विविध रश्मियों के सहित अन्तरिक्ष में गमन करते हो । तुम यजमान के घर में रह कर सब अन्धकारों को मिटाते हो ।८। हे सोम ! तुम महान्कर्मा हो । तुम अपनी महिमा से कवच रूप होकर आकाश-पृथिवी के धारण करने वाले होते हो ॥९॥ (२८)

सूक्त १०१

(ऋषि—अन्धीगुः श्यावाश्वि, ययातिर्नाहुषः, नहुषो मानवः, मनुः—सावरणः,प्रजापति । देवता-पवमानः सोमः । छन्द—अनुष्टुप् गायत्री)

परोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः इंदुरश्वो न कृत्व्यः ॥२

त दुरोषमभीनरः सोमं विश्वाच्याधिया । यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥३
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इंद्राय मंदिनः ।
पवित्रवंतो अक्षरन्देवान्गचछन्तु तो मदाः ॥४
इन्दुरिन्द्राया पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्यशान ओजसा ॥५॥१

हे मित्रो ! आगे स्थित भक्षण के योग्य सोम के पवित्र और हर्ष-प्रदायक रस के लिए लम्बी जीभ वाले प्राणी को यहाँ से दूर भगाओ। वेगवान् अश्व के समान यह सोम अपनी पापनाशिनी धारा के सहित सब ओर गमन करते हैं ।२। अपनी सब कामनाओं को फलवती देखने के उद्देश्य से इस कामना योग्य सोम को ऋत्विजगण निष्पन्न करते हैं ।३। वह हर्षकारी और निष्पन्न सोम छन्ने से छनते हुए इन्द्र के लिए पात्रों में जाते हैं । हे सोम ! तुम्हारा हर्षकारी रस इन्द्र आदि देवताओं के पास गमन करे ।४। इन्द्र के लिए सोम क्षरित होते हैं । यह सोम शब्द करने वाले, अपने बल से ही जगत् के स्वामी और स्तोत्रों के रक्षक हैं । यह अतिथियों द्वारा पूजे जाने की इच्छा करते हैं ॥५॥ (१)

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचपीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६
अयं पूषा रयिभगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥७
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इंदवः ॥८
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥९
सोमाः पवन्त इंदवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यःस्वर्विदः ॥१०॥२

सोम अनेकों धाराओं के रूप में क्षरित होते हैं। यह स्तोत्र प्रेरक, धन के स्वामी और इन्द्र के सखा सोमरस को सींचते हैं।६। यह सोम पुष्टिकर, काम्य और धन के कारणरूप हैं। यह शुद्ध होकर क्षरित होते और अपने तेज से आकाश-पृथिवी को प्रकाश देते हैं।७। शुद्ध सोम पुष्टि के मार्ग पर जा रहें हैं और गौएं उनके प्रति प्रिय शब्द कर रही हैं।८। हे सोम ! तुम्हारा रस ओज और चमत्कारी गुणों से युक्त है। वह पांचों वर्णों को प्राप्त होने वाला है। उस रस के द्वारा हम धन पावें। तुम अपने रस को क्षरित करो।९। यह सोम देवताओं के मित्र पाप रहित सुन्दर सर्वज्ञ हैं। अभिषुत होने वाले यह हमारे लिए ही आये हैं ॥१०॥ (२)

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यभितः समस्वरन् वसुविदः ॥११
एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्यशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१२
प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।
अप श्वानमराधस हता मखं न भृगवः ॥१३
आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो नयोनिमासदम् ॥१४
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥१५
अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥१६।३

वह सोम भारी पाषाणों द्वारा निष्पन्न होकर शब्द करते और धन प्रापक बनते हैं।११। यह सोम छन्ने में शुद्ध होकर दही में मिलकर गमनशील जल से युक्त होकर उज्ज्वल पात्रों में बैठते हैं।१२। निष्पन्न

होते हुए सोम का शब्द कर्मों में विघ्न उपस्थित करने वाले कुत्ते को नष्ट करे। हे स्तोताओ ! जैसे भृगुवंशी ऋषियों ने मख नामक पुरुषों को प्राचीनकाल में मारा था, वैसे ही तुम उस धृष्ट श्वान को हिंसित करो ।१३। माता-पिता की रक्षाओं से आश्वस्त पुत्र जैसे उनके हाथों में आ पड़ा है, वैसे ही यह सोम छन्ने में गिर पड़ते हैं और फिर कलश में जाते हैं ।१४। वे बल को सिद्ध करने वाले सोम सशक्त हैं। यह अपने तेज से आकाश-पृथिवी को ढकते हैं। जैसे यजमान के घर में ब्रह्मा जाता है, वैसे ही हरे रंग वाले सोम अपने आश्रयभूत कलश में जाते हैं ।१५। यह छन्ने से कलश को प्राप्त होते हैं। कामनाओं के वर्षक, हरे रंग के यह सोम शब्द करते हुए इन्द्र के पवित्र स्थान को प्राप्त होते हैं ।१६।

सूक्त १०२

(ऋषि—त्रिताः । देवता—पवमानः सोमः । छन्दः—उष्णिक्)

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वापरि प्रिया भुवदध द्विता ॥१

उप त्रितस्य पाष्यो रभक्त यद् गुह पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२

त्रीणि त्रितस्य धारणा पृष्ठेष्वेरया रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये ।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥४

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः ।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥५।४

यज्ञ करने वाले, जल के पुत्र सोम अपने यज्ञ धारण करने वाले रस से हव्य को व्याप्त करते हैं। यह सोम आकाश-पृथिवी के मध्य, अन्तरिक्ष में निवास करते हैं ।१। यह सोम त्रित के यज्ञ में अभिषव को प्राप्त हुए। इन सोम की गायत्री आदि छन्दों के द्वारा ऋत्विग्गण स्तुति करते हैं ।२। हे सोम ! तुम त्रित

के तीनों यज्ञ सवनों में क्षरित होओ । मेधावी स्तोता इन्द्र को मिलाने वाली स्तुति करता है । अतः साम के गान होने पर इन्द्र को यहां लाओ ।३। यह सोम कर्म के कारण करने वाले हैं यजमानों को ऐश्वर्य-वान् बनाने के लिए सात छन्द इनकी प्रशंसा करते हैं । यह सोम धनों के जानने वाले हैं ।४। सभी देवता समान मति वाले होकर सोम-कर्म की कामना करते हैं । यह देवता हर्षदाता सोम का सेवन करते हैं ।।५।। (४)

यमी गर्भ मृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् ।
कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ।।६

समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा ।
तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ।।७

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रज दिवः ।
हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ।।८।५

यज्ञ के बढ़ाने वाले वसतीवरी जल ने यज्ञ स्थान में सोम को दर्शन के लिए प्रकट किया । यह सोम बहुतों द्वारा चाहने योग्य, पूजनीय और सब का कल्याण प्रदान करने वाले हैं ।६। यज्ञकर्ता ऋत्विज आदि सोम को जल में मिश्रित करते हैं । समान मन वाली, सत्य रूप एवम् महिमा-मयी द्यावापृथिवी के पास सोम स्वयं आते हैं ।७। हे सोम ! तुम अपने तेज से आकाश के अन्धकार को मिटाओ, तुम अहिंसित यज्ञ स्थान में अपने सत्य के धारण करने वाले श्रेष्ठ रस को खींचते हो ।।८।।

सूक्त १०३

(ऋषिः—द्वित आप्त्यः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—उष्णिक्)

प्र पुनानाय वेधसे सोमय वच उद्यतम् ।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ।।१

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति ।
त्री षधस्थापुनानः कृणुते हरिः ।।२

परिकोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति ।

अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥३
परिणेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः।
सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥४
परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम्।
पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥५
परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः।
व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥६।६

हे त्रित ! तुम इस निष्फल और कर्म विधायक सोम के लिए श्रेष्ठ और प्रसन्न करने वाली स्तुतियाँ करो।१। यह हरे रंग के सोम गोदुग्ध से मिलकर छन्ने में गमन करते हैं। निष्फल होकर यह अपने लिए तीन स्थानों को आश्रित करते हैं।२। यह सोम जब अपने रस को छन्ने से क्षरित करते हैं, तब सातों छन्द सोम का स्तोत्र करते हैं।३। यह स्तुतियों को बढ़ने वाले हरे रंग के शुद्ध सोम छन्ने पर जाते हैं और निष्पीड़ित होने पर सब देवता सोम के पास गमन करते हैं।४। हे सोम ! तुम रथारूढ़ होकर इन्द्र के समान ही देव सेना में पहुँचो यह सोम ऋत्विजों द्वारा निष्पीड़ित होने पर स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।५। घोड़े के समान युद्ध की इच्छा करते हुए यह सोम पात्रों में स्थित अपने तेज के सहित सब ओर गमन करते हैं ॥६॥

सूक्त १०४

(ऋषि—पर्वतानारदौ द्वे शिखण्डिन्यो वा काश्यप्यावप्सरसौ।
देवता—पवमानः सोमः। छन्द—उष्णिक्)

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥२
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।

यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥३
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥४
स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५
सनेमि कृध्य स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् ।
अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि न ॥६।७

ऋत्विजो ! इन निष्पीड़ित हुए सोम का यश-गान करो । इसे यज्ञ के हव्यादि पदार्थों से माता-पिता द्वारा शिशु को अलंकृत करने के समान ही सजाओ ।१। ऋत्विजो ! इन गृह-साधक, हर्षकारक देव पालक और बली सोम को, बछड़े को गौ से मिलाने के समान ही जल से मिश्रित करो ।२। इस बलदाता सोम को शुद्ध करो । मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं के पीने के लिए सोम प्रवृद्ध कल्याणकारी हुए हैं ।३। हे सोम ! तुम धन देने वाले हो हमारी वाणी तुम्हारी स्तुति करती है । तुम्हारे रस से हम इस गोदुग्ध को आच्छादित करते हैं ।४। हे सोम ! तुम तेजस्वी रूप वाले और आनन्द के अधिपति हो । तुम मित्र के समान यथार्थ मार्ग बनाने वाले हो ।५। हे सोम ! तुम हमारे मित्र होओ । मायावी और दुष्ट राक्षसों को मारते हुए हमारे पापों को दूर करो ॥६॥ ७)

सूक्त १०५

(ऋषि—पर्वतनारदौ । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—उष्णिक्)

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१
सं वत्सइव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२
अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वातये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥३

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व ।
शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥४

स नो हरीणां पत इंदो देवप्सरस्तमः ।
नखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥५

सनेमि त्वमस्मदां अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वां इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥६।८

हे ऋत्विजो ! देवताओं के हर्ष के निमित्त सोम का स्तवन करो। जैसे माता-पिता अपने बालक को सुसज्जित करते हैं, वैसे ही गव्यादि से सोम को सजाया जाता है। ।१। यह सोम स्तुतियों से सजाये जाकर हर्षकारी और सेना की रक्षा करने वाले हैं । जैसे गौ से बछड़े को मिलाते हैं, वैसे ही सोम को जल से मिलाते हैं ।२। बल साधक सोम देवताओं के सेवनार्थ अत्यन्त सम्पन्न हो। निष्पन्न होकर यज्ञ को सम्पन्न कराने वाला गवादियुक्त धन प्राप्त कराओ। मैं तुम्हारे रस को दुग्धादि से मिश्रित करता हूँ ।४। हे सोम ! तुम हरित वर्ण के हो । तुम्हें ऋत्विग्गण कर्म में योजित करते हैं। हे पशुओं के अधीश्वर दीप्त सोम ! तुम हमारे लिए प्रकाशित किरणों से युक्त होओ ।५। हे सोम ! प्राचीन ऋषियों के समान ही तुम हमारे भी सखा होओ । देवताओं के विद्वेषी एवं भक्षक राक्षसों को हमसे दूर भगाओ । तुम हमारे कार्यों में विघ्न डालने वाले शत्रुओं को ललकारो । भीतरी और प्रत्यक्ष मायाओं वाले असुरों को यहाँ से दूर भगादो ।६। (८)

सूक्त १०६

(ऋषि—अग्निश्चाक्षुषः, चक्षुमानवः, मनुराप्सवः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द–उष्णिक्)

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी जातास इंदवः स्वर्विदः ॥१

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः
सोमा जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्सप्सुजित् ॥३
प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्द्रो परि स्रव ।
द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥४
इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः ।
सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥५।९

यह सोम सबके जानने वाले, पात्रों में गिरने वाले, शुद्ध होने वाले और कामनाओं के वर्षक हैं । ऐसे गुण वाले सोम इन्द्र की ओर गमन करें ।१। यह सोम संसार के सब प्राणियों के समान ही इन्द्र को जानते हैं और इन्द्र के लिए ही क्षरित होते हैं ।२। सोम के हर्ष से उत्साहित होकर इन्द्र सबके द्वारा माना किये गये धनुष को धारण करते हैं । यह इन्द्र अन्तरिक्ष में अहि को जीतने वाले हैं । यह अपने वर्षणशील वज्र को धारण करते हैं ।३। हे चैतन्य सोम ! इन्द्र के लिये पात्रों में गिरो । हे सर्वज्ञ और पवमान सोम ! तुम शत्रु से बचाने वाले बल के सहित यहाँ आगमन करो ।४। हे सर्वदर्शन सोम ! तुम अपने वृष्टि धारण रूप मद के सहित इन्द्र के लिए क्षरित होओ । तुम यजमानों के लिए श्रेष्ठ मार्ग बनाने वाले हो ।५। (९)

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः ।
सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥६
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥७
तव द्रप्सा उदप्रुत इंद्रं मदाय वावृधुः ।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥८
आ नः सुतास इंदवः पुनाना धावता रयिम् ।

वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥९

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति ।

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१०।१०

हे सोम ! तुम देवताओं के आने पर शब्द करते हो। तुम अपने मधुर रस के सहित कलश को प्राप्त होते हुए हमारे लिए सरल मार्ग के दिखाने वाले होओ।६। हे सोम देवताओं के सेवन के लिये अपनी बलवती और मधुर धाराओं के रूप में क्षरित होओ। तुम अपने अत्यन्त हर्षकारी रस के सहित कलश में प्रतिष्ठित होओ।७। हे सोम ! इन्द्रादि देवता अमृतत्व की प्राप्ति के लिए तुम्हारा पान करते हैं। जल से मिश्रित और प्रवाहित तुम्हारा रस इन्द्र की वृद्धि का कारण होता है।८। हे सोम ! तुम पृथिवी पर जल-वृष्टि करने में समर्थ हो। निष्पन्न होने पर तुम हमारे लिए ऐश्वर्यं लाने वाले होओ।६। यह सोम स्तोत्र के आगे शब्द करते हुए छन्ने के द्वारा क्षरित होते हैं ॥१०॥ (१०)

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीलन्तमत्यविम् ।

अभित्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥११

असर्जि कलशां अभि मीलहे सप्तिर्न वाजयुः ।

पुनानो वाच जनयन्न सिष्यदत् ॥१२

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रह्या ।

अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१३

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।

रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥१४।११

यह सोम जल में क्रीड़ा करते हुए छन्ने का अतिक्रमण करते हैं। स्तोता इन्हें अपनी स्तुतियों से बढ़ाते हैं। स्तोत्र स्वयं ही इन त्रयसवनीय सोम की स्तुति करते हैं।११। घोड़े को जैसे युद्ध के लिये सजाते हैं वैसे अन्न की कामना वाले सोम को ही कलश में अलंकृत

करते हैं । शुद्ध हुए सोम शब्द करते हुए पात्रों में क्षरित होते हैं ।१२। यह हरे रंग के सोम सरल गति से बाधक छन्ने को पार करते हैं । यह सोम, स्तुति करने वाले को अपत्यादि से सम्पन्न कीर्ति प्रदान करते हैं ।१३। हे सोम ! तुम देवताओं की कामना करते हुए धारा रूप में गिरो। तुम्हारी धाराऐं हर्षप्रदायक होती हैं । यह सोम शब्द करते हुए छन्ने के चारों ओर जाते हैं ।।१४।। (११)

सूक्त १७०

(ऋषि—सप्तर्षयः । देवता—पवमानः सोम ।
छन्द—वृहती, गायत्री, पंक्तिः)

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तम हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ।।१
नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ।।२
परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ।।३
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ।।४
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्न सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ।।५।१२

देवताओं के लिए श्रेष्ठ हव्य सोम, मनुष्यों के हित करने वाले होकर अन्तरिक्ष में गमन करते हैं । ऋत्विजों ने उन्हें पाषाणों द्वारा शोधित किया । हे ऋत्विजो ! उन सोमों को शुद्ध करते हुए तुम जल से सिंचित करो ।१। हे सोम ! तुम छन्ने के द्वारा गिरो । हम संस्कृत करते हुए दुग्धादि तथा सत्तू से युक्त करते हुए तुम्हारे गुणयुक्त होने की कामना करते हैं ।२। हे सोम ! तुम निष्पन्न होकर देवताओं को तृप्त करने वाले और सबके दर्शन के निमित्त अपने तेज के सहित क्षरित होते हो ।३। हे सोम ! तुम संस्कृत होकर वसतीवरी जल से युक्त तथा धारा रूप से क्षरित होकर यज्ञ में सुशोभित होते हो । हे सोम ! तुम स्वर्णिम

और दीप्ति युक्त होते हो ।४। यह प्रसन्नताप्रद सोम गो दुग्ध का दोहन करने वाले हैं । यह निष्पन्न होने के लिए ऋत्विजों द्वारा ग्रहण किये हुए तथा यज्ञ के स्तम्भरूप हैं । यह यजमान को अन्न प्रदान करने के लिये गमन करते हैं ॥५॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥६
सोमो मीढ्वान्पवते गातु वित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥७
सोम उ षुवाणः सोतृभिरधिष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८
अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥९
आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०।१३

हे सोम ! तुम शुद्ध होकर छन्ने पर गिरते हो । तुम विद्वान् और पितरों के भी अग्रगन्ता हो । तुम हमारे यज्ञ को मधुर रस से सींचो ।६। यह सोम सबको मार्ग दिखाने वाले, कामनाओं की वर्षा करने वाले सूक्ष्म दर्शक पवमान हैं । हे सोम ! तुम देवताओं की अत्यन्त कामना करते हो और सूर्य को प्रकाशमय करते हो ।७। यह सोम ऋत्विजों के द्वारा निष्पन्न होकर दशा पवित्र में पहुंचते हैं । यह अपनी हरे रंग की धाराओं सहित कलश में गमन करते हैं ।७। नीचे रखे कलश में यह गोदुग्ध से मिलते हुए गिरते हैं । यह दुग्धादि के सहित प्रवाहमान् सोम जल के समुद्र में जाने के समान अपने रस सहित द्रोण-कलश में गमन करते हैं । यह सोम देवताओं के लिये शोधित किये जाते हैं ।९। जैसे मनुष्य अपने घर में बैठता है वैसे ही यह सोम कलश में बैठते हैं । पाषाणों द्वारा निर्मित होकर यह छन्ने से निकलते हुए कलश में क्षरित होते हैं ॥

(१३)

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीलहे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११
प्र सोम देववीतये सिन्धु न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२
आ हयतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्नमज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥१३
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४
तरत्समुद्रं पावमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥१५॥१४

अन्न की कामना वाले यह सोम सूक्ष्म छिद्रों वाले छन्ने से गिरते हैं। ऋत्विजों द्वारा क्रोधित किये जाने पर यह सोम विजयाकांक्षी घोड़े को सजाये जाने के समान ही अलंकृत किये जाते हैं ।११। हे सोम ! जैसे जल से समुद्र पूर्ण होता हे, वैसे ही देवताओं के पीने के निमित्त तुम भी जल से पूर्ण किये जाते हो। तुम अपने मधुर रस के सहित द्रोण-कलश को प्राप्त होते हो ।१२। यह सोम पुत्र के समान संस्कारित किये जाने के योग्य हैं। यह श्वेत छन्ने को आच्छादित करते हैं। जैसे वीर पुरुष अपने रथ को रणभूमि में प्रेरित करते हैं, वैसे दसों उँगलियाँ इन्हें जल में प्रेरित करती हैं ।१३। अपने रस का यह सोम सब ओर प्रवाहित करते हैं ।१४। सत्यरूप यह सोम मित्रावरुण के पालनार्थ गमन करते हैं। यह शुद्ध होकर कलश में जाते हैं ॥१५॥ (१४)

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रयः ॥१६
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१७
पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।

अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥१८

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
तुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥१९

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुनाइव पप्तिम ॥२०।१५

यह सोम सूक्ष्मदर्शी, दिव्य और स्पृहणीय हैं तथा इन्द्र के लिए क्षरित होने वाले हैं ।१६। यह अनेक धाराओं वाले सोम छन्ने से पार होते हैं । इन हर्षकारी सोम को ऋत्विगण शोधन करते हैं । वह सोम इन्द्र को सींचने वाले हैं ।१७। यह सोम स्तुतियों को प्रकट करने वाले, शोधनीय,कान्तकर्मा और इन्द्रादि देवताओं के पास गमन करने वाले हैं । जल में मिश्रित और काष्ठापात्रों में स्थित सोम दुग्धादि से मिश्रित किये जाते हैं ।१८। हे सोम मैं तुम्हारी प्रार्थना में लगा हूं । मैं तुम्हारा मित्र हूं । मेरे मार्ग में राक्षस विघ्न उपस्थित करते हैं, तुम उनका संहार करो ।१९। हे सोम ! मैं तुम्हारे सख्य भाव की दिन-रात कामना करता रहता हूं । हम तुम्हें सूर्य रूप से देखने की इच्छा किया करते हैं, जैसे चिड़ियायें सूर्य को लाँघने की चेष्टा करती हैं ।२०। (१५)

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥२१

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥२३

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥२४

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥२५
अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाःकृण्वानो न निर्णिजम् ॥२६॥१६

हे सोम ! तुम अन्तरिक्ष में शब्द करते हो । तुम अपने स्तोता मित्रों को बहुतों के लिए लाभकारक धन, पीले रङ्ग का (सुवर्ण धन प्रदान करो ।२१। हे सोम ! तुम शुद्ध जल से मिलते हुए कलश में शब्द करते हो और दुग्ध से मिश्रित होते हुए अभिषवण स्थान को प्राप्त होते हो ।२२। हे सोम । तुम देवताओं के लिए हर्षकारी होकर बैठते हो और सब स्तोत्रों को देखते हुए अन्न प्राप्ति के लिये गिरते हो ।२३। हे सोम ! तुम दिव्य और पार्थिव पदार्थों के लाभ के निमित्त सिंचित होओ । तुम्हें मेधावीजन अपनी उँगलियों और स्तुतियों के द्वारा प्रेरित करते हैं ।२४। यह सोम गमनशील, मरुद्गण से सम्पन्न हैं । यह अन्न और स्तुतियों को देखते हुए मधुर धारा सहित छन्ने से छनते हुये संस्कृत होते हैं ।२५। अभिषव करने वालों के द्वारा जल में मिलाए जाकर यह सोम कलश में गमन करते हैं । यह दुग्धादि को अपने रूप में मिला कर स्तुति की कामना करने वाले होते हैं ।२६। [१६]

सूक्त १०८

(ऋषि:—गौरिवीतिः, शक्तिः, ऋजिष्वा, उर्ध्वसद्‌ता, कृतयशा ऋणञ्चयः ।
देवता— पवमानः सोम । छन्दः—उष्णिक् बृहती पंक्ति, गायत्री)

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥१
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाज नैतशः ॥२
त्वं ह्यङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयः ॥३

येना नवग्वो दध्यङ् ङपोर्णु ते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥४
एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
क्रीलन्नू र्मिरपामिव ॥५॥१७

हे सोम ! तुम अत्यन्त महान् और पुत्रदाता हो । इन्द्र के लिये हर्ष-प्रदायक और मधुर होकर गिरो ।१। हे कामना के वर्षक सोम ! तुम्हारा पान करके इन्द्र श्रेष्ठ ज्ञानी होते और शत्रुओं के अन्न को उसी भाँति अतिक्रमण करते हुए त्यागते हैं जिस भाँति युद्ध में जाने वाला अश्व शत्रु सेनाओं का अतिक्रमण करता है ।२। हे सोम ! तुम देवताओं को अमरत्व प्राप्त करने वाले हो । तुम उनके प्रति शीघ्र शब्द करते हो ।३। यज्ञानुसार करने वाले अङ्गिराओं ने सोम के द्वारा जिन अपहृत गौओं के मार्ग का उद्घाटन किया था मेधावी जनों ने उन गौओं को सोम के द्वारा ही पाया था । इन्द्राग्नि को सुख पहुंचाने वाले यज्ञ में जिन सोमों के द्वारा यजमानों के कल्याणकारी अन्न को पाया था, सोम देवगण की अमरत्व-प्राप्ति के लिए शब्द करते हैं ।४। अतीव हर्ष प्रदायक क्रीड़ाकारी सोम अपने धारा रूप से छन्ने में क्षरित होते हैं ।५। (१७)

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभिजंतत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥६
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥७
सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥८
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देवयुः ।
वि कोशं मध्यम युव ॥९
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१०॥१८

अन्तरिक्ष में स्थित मेघ से जिन सोम ने वृष्टि को प्रेरित किया था, वे सोम गौओं और घोड़ों को भी प्रेरित करते हैं। हे सोम! तुम शत्रुओं का मर्दन करने वाले हो अतः दुष्ट राक्षसों का वध करो।६। हे ऋत्विजो! सोम अंतरिक्ष के जल का प्रेरण करने वाले और अश्व के समान् वेगवान् हैं। तुम उन्हें निष्पन्न करते हुए स्तुति करो।७। जल के बढ़ाने वाले, कामनाओं की वृद्धि करने वाले यह सोम देवताओं को अत्यन्त प्रिय हैं। इन्हें अनेक धाराओं सहित सींचो। जल से उत्पन्न होने वाले यह सोम स्तुतियों के योग्य, दिव्य और जलों से ही प्रवृद्ध होने वाले है।८। हे सोम! तुम स्तुत्य हो, तुम हमको दिव्य अन्न प्रदान करो। देवताओं की कामना करने वाले होकर वृष्टि के लिये मेघ को विदीर्ण करो।९। हे सोम! जैसे राजा अपनी प्रजा का वहन करता है वैसे ही अभिषुत होने पर तुम सब प्राणियों के वाहक होते हो। गौ की इच्छा करने वाले यजमान के यज्ञादि कर्मों को सम्पन्न करो और कलश के जलों की वृष्टि करो।१०। [१८]

एतमु त्यं मदच्युत सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥११

वृषा वि जज्ञे जयदन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इलानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१३

यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥१४

इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः ।
पवस्व मधुमत्तम ॥१५

इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तम ॥१६।१९

देवताओं की कामना करने वाले ऋत्विज इस बहुत-सी धाराओं वाले, अन्नों के धारण कर्त्ता और अभीष्टवर्षी सोम का दोहन करते हैं।११। जो मेधावीजन सोम की स्तुति करते हुए उसे दुग्धादि से मिश्रित करते हैं, उनके द्वारा ही कामनाओं के वर्षक,अमृतत्व से युक्त,अन्धकार नाशक और शब्दवान् सोम को जाना जाता है। यज्ञ के तीनों सवनों में सब कर्म सोम के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।२। अपत्ययुक्त सुन्दर घरों, गौओं अन्नों तथा अन्य सब धनों के प्राप्त कराने वाले सोम ऋत्विजों के द्वारा शोधे जाते हैं।१३। जिन सोमों का इन्द्र, मरुद्गण, अर्यमा और भग देवता मान करते हैं और जिन सोमों के द्वारा मित्र वरुण और इन्द्र को हम अपने समक्ष बुलाते हैं, वही सोम निष्पन्न किये जाते हैं।४। हे अत्यन्त मधुर और हर्षकारी सोम ! तुम ऋत्विजों द्वारा योजित होकर इन्द्र के पानार्थ प्रवाहित होओ।१५। हे सोम ! नदियाँ जैसे समुद्र में जाती हैं वैसे ही तुम कलश में गमन करो। तुम मित्र, वरुण और वायु के लिए और इन्द्र के हृदय को प्रसन्न करने के लिये श्रेष्ठ-रस से सम्पन्न बनो।१६। (१६)

सूक्त १०६

(ऋषिः—अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः देवता—पवमानः सोमः। छन्द—गायत्री)

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवा ॥२
एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥३
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥४
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥५
दिवो धर्तासि शुक्रः पियूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥६
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥७
नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥८
इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥९
पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१०।२०

हे सोम ! तुम आस्वाद के योग्य हो। इन्द्र, मित्र, पूषा और भग देवताओं के लिये सिंचित होओ ।१। हे सोम ! तुम्हारे रस से युक्त और बल के निमित्त निष्पन्न भाग को इन्द्र और सब देवता पीवें ।२। हे सोम ! तुम उज्ज्वल और दिव्य हो। तुम्हें देवता पीते हैं। तुम श्रेष्ठ निवासप्रद होते हुए क्षरित होओ ।३। हे सोम। तुम सबका पालन करने वाले और महान् रस के प्रवाहित करने वाले हो। देवताओं के शरीर को देखते हुए कलश में गिरो ।४। हे सोम ! तुम देवताओं के निमित्त क्षरित होओ। अपने तेज से आकाश-पृथिवी और सब प्राणियों के सुख देने वाले होओ ।५। हे सोम ! तुम आकाश के धारण करने वाले हो। सत्य के आश्रय रूप इस यज्ञ में पीने योग्य होते हुए अपने बल के सहित क्षरित होओ ।६। हे प्राचीन सोम ! तुम अत्यन्त यशस्वी हो छन्ने से निकल कर सुन्दर धाराओं वाले होते हुए प्रवाहित होओ ।७। यह सोम सबके जानने वाले, छन्ने से छने हुए हैं। यह हमको समस्त धन प्रदान करें ।८। सोम देवताओं की वृद्धि करने वाले हैं। यह हमको अपत्ययुक्त सभी ऐश्वर्य प्रदान करें ।९। हे सोम ! जैसे अश्वों को जल से स्वच्छ करते हैं। वैसे ही तुम्हें धोते हैं। तुम हमारे ज्ञान, बल और धन के निमित्त गिरो ।१०। (२०)

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय: ॥११

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥१३

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५

प्र सुवानो अक्षः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥१८

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥१९

अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥२०

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥२१
इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥ २२।२१

हे सोम ! शक्ति के लिए तुम्हारे रस को अभिषवकारी शुद्ध करते हैं और महान् अन्न पाते हैं ।११। हरे वर्ण के यह सोम जल से उत्पन्न होते हैं, ऋत्विग्गण इन्हें देवताओं के लिए संस्कृत करते हैं ।१२। जल के आश्रय-स्थान अन्तरिक्ष से यह सोम कामना योग्य धन के लिए बरसते हैं ।१३। इन्द्र के लिए यह सोम कल्याणकारी होते हैं। इनके द्वारा धारण किये गये शरीर से ही इन्द्र ने सब पापी असुरों को नष्ट कर डाला ।१४। ऋत्विजों के द्वारा निष्पीडित एवं स्वच्छ सोम गोदूध में मिलाये जाते हैं, तब इन्हें सब देवता पीते हैं ।१५। अनेक धारा वाले यह शोधित सोम छन्ने से चारों ओर क्षरित होते हैं ।१६। जल से संस्कारित और गो दुग्धादि से मिश्रित सोम सब ओर टपकते हैं ।१७। हे ऋत्विजों द्वारा अभिषुत सोम ! तुम छन्ने के द्वारा कलश को प्राप्त होते हो ।१८। छन्ने को तान कर यह बलवान् और अनेक धाराओं वाले सोम इन्द्र के निमित्त ही छीने जाते हैं ।१९। इन्द्र कामनाओं की वृष्टि करने वाले हैं। ऋत्विज् इनके हर्ष के लिये सोम को मधुर रस से मिश्रित करते हैं ।२०। हे सोम ! तुम हरे वर्ण के हो। देवताओं के पीने के लिए ऋत्विग्गण तुम्हें शोधते हैं ।२१। सोम का रस इन्द्र के निमित्त निष्पन्न किया जाता है। फिर जल मिश्रित करते हुए उसे हिलाते हैं ।२२। (२१)

सूक्त ११०

(ऋषि—त्र्यरुणत्रसदस्यू । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥१
अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥२
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।

गोजीरियो रंहमाणः पुरन्ध्या ॥३
अजीजनो अमृत मर्त्येष्वां ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥४
अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥५
आदीं के चित्पश्य मानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥६।२२

हे सोम ! तुम सहनशील हो । तुम अन्न-प्राप्ति के निमित्त रण-क्षेत्र में जाओ तुम हमारे ऋणों की भी पूर्ति करते हो और शत्रु नाश के लिये गमन करते हो ।१। हे निष्पन्न सोम ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम स्वराष्ट्र की रक्षा के लिये शत्रुओं की ओर गमन करते हो ।२। हे सोम ! तुम धन प्रदान करते हो । तुमने जल के आश्रय-स्थान अन्तरिक्ष में अपने बल से सूर्य को प्रकाशित किया है । तुम अत्यन्त वेग वाले और अनेक प्रकार के ज्ञानों से सम्पन्न हो ।३। हे सोम ! तुम अविनाशी हो । तुमने मङ्गल करने वाले, जल-धारक अन्तरिक्ष में सूर्य को प्रकाशित किया है । तुम रक्ष-क्षेत्र की ओर सदा गमन करते रहते हो ।४। हे सोम ! जल के लिये जैसे गहन जल से पूर्ण जलाशय बनाया जाता है, वैसे ही तुम अपने स्तोता मित्रों को अन्न-दान करते हो ।५। सबको प्रेरणा देने वाले आदित्य ने अभी पूर्ण रूप से अन्धकार का नाश भी नहीं किया, तभी स्वर्ग में उत्पन्न वसुरुच् नामक पुरुषों ने बन्धु रूप सोम की स्तुति की ।६। (२२)

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्व नो वीर वीर्याय चोदय ॥७
दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥८
अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।

यूथे नः निष्टा वृषभो वि तिष्टसे ॥६
सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीलन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधाराः शतवाज इन्दुः ॥१०
एष पूनानो मधुमां ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरुर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११
स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप ग्रर्गंहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥१२।२३

हे सोम ! कुश-छेदन करने वाले यजमानों ने महान् बल और अन्न के निमित्त अपनी बुद्धि को तुम्हारे आश्रित किया । तुम हमको भी युद्ध-कुशल बनाओ ।७। स्वर्ग-निवासी देवताओं के पान योग्य सोम का आकाश से दोहन करते हैं और उस अभिषुत सोम की स्तोतागण श्रेष्ठ स्तुति करते हैं ।८। हे सोम ! तुम अपने बल से ही आकाश पृथिवी और समस्त प्राणियों का शासन करते हो ।६। अतीव सामर्थ्य वाले पवमान सोम छन्ने पर बालक के समान क्रीड़ा करते हैं ।१०। यह सोम आयु के देने वाले, रस की धाराओं से सम्पन्न, माधुर्यमय, अन्न प्रदान करने वाले और धन प्राप्त करने वाले हैं । यह प्रवाहित होते हैं ।११। संग्राम की कामना वाले शत्रुओं को यह पराभूत करते और दुर्धर्ष असुरों का बध करते हैं । हे सोम ! तुम सुन्दर आयुध वाले होकर शत्रु—नाशक गुणों के सहित प्रवाहित होओ ।१२। (२२)

सूक्त १११

(ऋषि—अनानतः पारुच्छेपिः । देवता—पवमानः । छन्द—प्रष्टिः)

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति त ।
स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यक्वभि ऋक्वभिः ॥१

त्वं त्यपणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व
आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न सोम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥२
पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते
दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३।२४

सूर्य जैसे अपनी रश्मियों से जगत् के अन्धकार को दूर करतें हैं वैसे ही यह संस्कारित सोम सब असुरों को मिटाते हैं। इनका हरित वर्ण बड़ा सुन्दर लगता है। इनकी उज्ज्वल धारायें दमकती हैं। यह तेजस्वी एवं सप्त बन्द वाले अन्तरिक्ष के सब नक्षत्रों को दबाते है ।१। हे सोम! तुम यज्ञ के धारणकर्ता जल के सहित भले प्रकार सस्कृत होते हो। तुमने पणियों द्वारा चुराई गौओं को पाया था। सामवेद की ध्वनि जैसे दूर से ही सुनाई पड़ती है, वैसे ही तुम्हारा शब्द दूर से ही सुनाई पड़ता है। यह सुन्दर सोम स्तुतियों से प्रवृद्ध होकर स्तोताओं को अन्न देते हैं और कर्म करने वाले यजमान सोम के शब्द से आनन्द की अविभूति करते हैं ।२। सब के जानने वाले सोम पूर्व दिशा में जाकर सूर्य-रश्मियों से मिलते हैं। स्तोताओं के स्तोत्र इन्द्र के पास जाकर उनमें विजय का उत्साह भरते हैं। जब इन्द्र के पास वज्र पहुँचता है और रणभूमि को प्राप्त हुए इन्द्र और सोम शत्रुओं को परास्त करते तब स्तोतागण उनकी स्तुति करते हैं ।३। (२४)

सूक्त ११२

(ऋषि—शिशुः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—पंक्तिः)
नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।

तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्द्रो परिस्रव ॥१
जरतीभिरोषधीभि पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिद्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥२
कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥३
अश्वो वोलहा सुख रथं हसनामुपमन्त्रिणः ।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतींद्रायेन्दोपरिस्रव ॥४।२५

हमारे कर्म विभिन्न प्रकार के हैं । बढ़ई काष्ठ के कार्य की कामना करता है, ब्राह्मण सोम का अभिषवण करने वाले यजमान की कामना करता है और वैद्य रोग की कामना करता है । उसी प्रकार मैं सोम की कामना करता हूं । हे सोम ! तुम इन्द्र को सींचो ।१। उज्ज्वल शिलाओं, पुराने काष्ठों और पक्षिओं के पंखों से वाणों को बनाया जाता है । अपने वाणों के विक्रय करने के लिए शिल्पकार धनी पुरुष को ढूंढ़ता है । वैसे ही मैं सोम की वृष्टि को ढूंढ़ता हूं । हे सोम ! तुम इन्द्र को सींचो ।२। मैं स्तोता हूं, पुत्र वैद्य है और कन्या जौ पीसने का कार्य करती है । सय सब पृथक-पृथक कार्य करते हैं । गौऐं जैसे गोष्ठ में घूमती हैं, वैसे ही धनकामना करते हुए हम भी हे सोम ! तुम्हारी परिचर्या करते हैं । हे सोम ! तुम इन्द्र को सींचो ।३। जैसे अश्व सुन्दर, कल्याणकारी और सरलता से चलने योग्य रथ को चाहता है, जैसे सभा सचिव व्यंगात्मक बात की इच्छा करते हैं वैसे ही मैं सोम की इच्छा करता हूं । हे सोम ! तुम अपने रस से इन्द्र को सींचो ।४। (२५)

सूक्त ११३

(ऋषि—कश्यपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—पंक्तिः)

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इंद्रायेन्दो परिस्रव ॥२
पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिंद्रायेन्दो परिस्रव ॥३
ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इंद्रायेन्दो परिस्रव ॥४
सत्यमुग्रस्त बृहतः सं स्रवंति संस्रवाः ।
स यंति रसिनो रसाऽपुनानोब्रह्मणा हर इंद्रायेन्दो परिस्रव ॥५॥२६

महान बली और वीर्यवान् होने के लिए इन्द्र शर्यणावत् तड़ाग वाले सोमों का पान करें । हे सोम ! तुम इन्द्र के लिए अपने मधुर रस से सींचो ।१। कामनाओं के वर्षक और दिशाओं के अधिपति के समान तुम आर्जीक देश से आगमन करो । तुम्हें पवित्र स्तोत्रों और श्रद्धायुक्त श्रेष्ठ कर्मों से निष्पन्न किया जाता है । हे सोम ! तुम अपने मधुर रस से इन्द्र को सींचो ।२। सूर्य की पुत्री, अन्तरिक्ष के जल में बड़े हुए इस सोम को स्वर्ग से यहाँ लाई । गन्धर्वों ने सोम ग्रहण कर उसे रस से पूर्ण किया । हे सोम ! तुम अपने मधुर रस से इन्द्र को सींचो ।३। हे सोम ! तुम्हारे कर्म यथार्थ हैं तुम यज्ञ के स्वामी और अमृत रूप हो । तुम श्रद्धा सहित श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले यजमान की प्रेरणा से सोम को अपने मधुर रस से सींचो ।४। पवमान और महाबली सोम की धाराऐं गिर रही हैं और उनका मधुर रस प्रवाहित हो रहा है । हे सोम ! ऋत्विज द्वारा संस्कृत होकर इन्द्र को सींचो ।५। (२६)

यत्र ब्रह्मा पवमान छंदस्यां वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीमते सोनेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥६
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इंद्रायेन्दो परिस्रव ॥७

यत्र राजा ववस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रयेन्दो परिस्रव ॥८
यत्रानुकामं चरण त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥९
यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रघ्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१०
यत्रानदाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्ययत्राप्ताःकामास्तत्रमाममृतंकृधीन्द्रायेन्दोपरिस्रव ॥११।२७

हे सोम ! जहाँ सप्त छन्दों में निमित्त स्तोत्र कहे जाते हों, जहाँ जहाँ पाषाणों से तुम्हारा अभिषव किया जाता हो और जहां सोमाभिषव से प्रसन्न देवताओं का स्तोता पूजा जाता हो, वहाँ तुम अपने श्रेष्ठ रस की वर्षा करो ।६। हे सोम ! तुम इन्द्र के लिये क्षरित होते हुए मुझे अखण्ड प्रकाश वाले अविनाशी स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराओ ।७। हे सोम ! जहाँ मन्दाकिनी आदि नदियाँ प्रवाहित हों जहां वैवस्वत राज्य करते हों और जिसे स्वर्ग का द्वार कहते हैं मुझे उसी स्थान पर रखो और इन्द्र के लिये क्षरित होओ ।८। सूर्य की अभिलषीय रश्मियाँ जिस ऊर्ध्वलोक में हैं, जहाँ के निवासी ज्योतिपुंज के समान तेजस्वी हैं उसी लोक में, हे सोम ! मुझे स्थाई निवास दो और अपने मधुर रस को इन्द्र के लिये सींचो ।९। जिन लोकों में सब कर्मों के आश्रयभूत आदित्य रहते हैं जहाँ स्वधासहित दिया गया हव्य और तृप्ति है, जहाँ इन्द्रादि सभी अभिलषणीय देवता निवास करते हैं, उसी लोक में, हे सोम ! तुम मुझे अविनाशी पद दो और अपने मधुर रस को इन्द्र पर सींचो ।१०। हे सोम ! आनन्द, और स्नेह जिस लोक में वर्तमान रहता है और जहाँ सभी कामनायें इच्छा होती ही पूर्ण हो जाती हैं उसी अमर लोक में मुझे निवास दो । हे सोम ! तुम इन्द्र के लिये क्षरित होकर उन्हें तृप्त करो ।११। (२७)

सूक्त ११४

(ऋषि—कश्यपः । देवता—पवमानः सोमः । छन्द—पंक्तिः)

य इन्दोःपवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सु प्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१
ऋषे मत्र कृतां स्तोमै कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥२
सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या येसप्त तेभिःसोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥३
यत्ते राजञ्छृत हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरीतीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनामदिन्द्रायेन्दो
परिस्रव ॥४॥२८

जो मेधावी स्तोता सोम के तेज का अनुगामी होता है, वह आयुष्मान् पुरुष पुत्रवान् मङ्गलमय कहलाता है । तथा जो व्यक्ति सोम की मनोनुकूल अभिषव आदि सेवा करता है उसे भी ऐसा ही कहते हैं । हे सोम ! तुम क्षरित होकर इन्द्र को तृप्त करो ।१। ऋषियों और मन्त्र-द्रष्टाओं ने स्तोत्र रूप वाक्यों को बनाया है,उन ऋषियों के अनुगत होकर स्तोत्रों को बढ़ाओ और स्वामी रूप सोम को नमस्कार करो । यह सोम वनस्पतियों की रक्षा करने वाले हैं । सोम ! तुम क्षरित होकर वज्र-धारी इन्द्र को तृप्त करो ।२। सूर्य को आश्रय देने वाली सात दिशाओं, सप्त होताओं और सात आदित्यों के सहित हे सोम ! तुम हमारे रक्षक होओ और इन्द्र के लिए क्षरित होकर उन्हें तृप्त करो ।३। हे सोम ! हवन योग्य जिस हवि का तुम्हारे निमित्त पाक किया गया है,उसके द्वारा हमारा पालन करो । शत्रु हमारे वस्त्रों को न छीनें और हमको हिंसित भी न करें । तुम इन्द्र के लिये क्षरित होकर उन्हें तृप्त करो ।४। (२८)

इति नवम् मण्डलं समाप्तम्

अथ दशमं मण्डलम्

१ सूक्त प्रथम [अनुवाक]

(ऋषि—त्रितः । देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्)

अग्रे बृहन्नुषसामुर्ध्वो अस्थाग्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥२
विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्व सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥३
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नवृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ताइं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥४
होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धि देवस्य देवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ॥५
स तु वस्त्राण्यध तेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः शद इलायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥६
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशते यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥७।२६

अन्धकार से निकलते हुए अग्नि आह्वानीय रूप में अपने तेज से और उषाकाल में ज्वाला रूप में प्रकट होते हैं । कर्म के निमित्त श्रेष्ठ ज्वालाओं से प्रज्वलित हुए अग्नि अपने तेज के द्वारा ही यज्ञों को सम्पन्न करते हैं ।१। हे अग्ने ! तुम अरणियों से मथकर प्रदीप्त किये जाते हो । तुम ओषधियों में स्थित, आकाश-पृथिवी के गर्भरूप, अद्भुत वर्ण वाले और मंगलमय हो । तुम अपने तेज से कृष्णवर्ण के असुरों को पराभूत करने वाले और औषधियों के पुत्ररूप हो । तुम शब्द करते हुए काष्ठरूप वनस्पतियों से उत्पन्न होते हो ।२। मुझ त्रित ऋषि को यह मेधावी और व्यापक अग्नि हर प्रकार रक्षित करें । यह अग्नि उत्कृष्ट और महान् हैं ।

यज्ञकर्त्ता यजमान इनके जल की याचना करते हुए पूजते हैं ।३। हे अग्ने । अन्न-प्राप्ति के लिये तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम विश्व के धारण कर्त्ता, वनस्पतियों और अन्नों के उत्पादक और सूखे हुए काष्ठ रूप वनस्पतियों की ओर गमन करने वाले हो । तुम ही हमारे यज्ञ कर्मों के सम्पन्न करने वाले हो ।४। यज्ञों के ध्वजा रूप, उज्ज्वल, देवताओं के आह्वानकर्त्ता और स्वामी, यजमानों के लिये पूजनीय, इन्द्र के पास के करने वाले अग्नि की सुन्दर कीर्त्ति वाला ऐश्वर्य पाने के निमित्त हम यज्ञकर्ता स्तुति करते हैं ।५। हे अग्ने ! तुम पृथिवी की नाभि पर सुवर्ण के समान दमकता हुआ तेज धारण करते हुए प्रकट होते हो । तुम आह्वानीय स्थान में प्रतिष्ठित होकर अपने तेज से सुशोभित होते हुए हमारे यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं का पूजन करो । ।६। हे अग्ने ! पुत्र जैसे माता-पिता की सेवा करता हुआ उन्हें सुख देता है, वैसे की तुम आकाश पृथिवी को विस्तृत करते हुए उन्हें पर्ण करते हो । तुम हम कामना वाले उपासकों के प्रति आगमन करो और इस यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं को भी ले आओ ।।७।। (२९)

सूक्त २

(ऋषि—त्रितः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

पिप्रीहि देवां उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूं ऋ तुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः ।।१
वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋताव ।
स्वाहा वय कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ।।२
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोलहुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होया सो अध्वरान्त्स ऋतून्क षयाति ।।३
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ।।४
यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ।।५

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतु जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥६
यं त्वा द्यावापृथिवी य त्वापस्त्वष्टा वं त्वा सुजनिमा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥७।३०

देव-यज्ञों के समयों के ज्ञाता और स्वामी अग्निदेव । तुम स्तुतियों की कामना वाले देवताओं को पूजते हुए उन्हें प्रसन्न करो। हे होताओं में सर्वश्रेष्ठ अग्ने ! तुम देव-पुरोहितों के सहित पूजन करो ।१। हे अग्ने ! तुम सत्यरूप एवं सत्यप्रतिज्ञ हो । होता, पोता, विद्वान् एवं ऐश्वर्यों के देने वाले हो । तुम तेजस्वी और प्रवृद्ध हो, देवताओं को हवि प्रदान करते हुए उन्हें पूजो ।२। हम देवताओं के श्रेष्ठ मार्ग पर चलें । हमारे सब कर्म भले प्रकार सम्पन्न हों । मनुष्यों के यज्ञों का सम्पादन करने वाले अग्नि यज्ञों का स य निश्चित करते हुए, देवताओं का भले प्रकार पूजन करने वाले हो ।३। हे देवगणों ! हम ज्ञानशून्य पुरुषों ने तुम्हारे कर्मों को जानते हुए भी अब छोड़ दिया है । अतः यज्ञ के योग्य समयों में हम अग्नि को योजित करते हैं । वे सब के दाता अग्निदेव हमारे सभी श्रेष्ठ कर्मों के पूरक हों ।४। हम मनुष्यों का यज्ञ-ज्ञान-शून्य मन हमें दुर्बल बनाता है, हम जिस कर्म को नहीं जानते,उसे अग्नि जानते हैं अतः यज्ञों का सम्पादन करने वाले अग्नि हमारे निमित्त देवताओं का यज्ञ करने वाले हों ।५। हे अग्ने ! तुम ब्रह्मा के द्वारा यज्ञों के ध्वजरूप में उत्पन्न हुए हो । तुम मुझे दास आदि से सम्पन्न भूमि और ऐश्वर्य प्रदान करो और स्तुतियों से युक्त श्रेष्ठ हविरत्न देवताओं को प्रदान करो ।६। हे अग्ने ! तुम तीनों लोकों में प्रकट हो । तुम्हें सुन्दर जन्म वाले प्रजापति ने जन्म दिया है । तुम समिधाओं से चैतन्य होने वाले और पितृयान मार्ग के ज्ञाता हो तुम अपने ही तेज से सुशोभित हुए बैठते हो ।७। (३०)

सूक्त ३

(ऋषि त्रितः । देवता—अग्नि । छन्द–त्रिष्टुप्)

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सृषुमाँ अदर्शि ।

चिकिद्वि भाति भाषा बृहतासिक्नीमेति रुशशीमपाजन् ॥१
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूयस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२
भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३
अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो वृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥४
स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य वृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठः क्रीलुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानिक्षति द्याम् ॥५
अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य वस्नयन्नियुद्भिः ।
प्रस्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥६
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७।३१

हे सर्वाधीश्वर अग्ने ! तुम हवियों को देवताओं के पास पहुंचाते हो । यजमानों के धनों को वढ़ाने वाले होते हुए तुम शत्रुओं को भयंकर प्रदीप्त और सबके लिये दर्शनीय होते हो । यह अपने तेज से अन्धकार को दूर करते हुए एवं विभावान् होते हुए सबके ज्ञाता वनते हैं ।१। यह अग्नि पिता रूप सूर्य से प्रकट होने वाली उषाओं को बढ़ाते हुए अपने तेज से रात्रि को दवाते हैं । आकाश को स्तम्भित करने वाले अपने तेज से यह अग्नि सूर्य के प्रकाश को स्थित कर सुशोभित होते हैं ।२। यह उषा के द्वारा सेवा करने योग्य एवं मंगल रूप अग्नि अपनी बहिन उषा के समीप गमन करते हुए अपने उज्ज्वल तेज से रात्रि के काले अन्धकार को मिटाते हैं । यह शत्रु नाशक अग्नि अपने श्रेष्ठ ज्ञान, उज्ज्वल वर्ण और सुवर्ण के समान दैदीप्यमान तेज के सहित प्रतिष्ठित होते हैं ।४। अग्नि की दीप्तिमयी और गमन करती हुई रश्मियां स्तोताओं के लिये बाधक नहीं होतीं । यह स्तुतियों की पात्र, सुखकारिणी मंगलमयी रश्मियाँ सुन्दर दर्शन वाली और अन्धकार की नाशिनी हैं । यह कामनाओं की

वर्षा करने वाले, तीक्ष्ण तेज वाली और देवताओं को तृप्त करने वाली के रूप में विख्यात हैं ।४। यह सुन्दर दीप्तिवाली, शब्दमती, महती रश्मियाँ शब्द करती हुई गमन करती हैं । अग्नि अत्यन्त विस्तार वाले, महान् तेजस्वी, प्रवृद्ध और क्रीड़ामय हैं । आकाश भी इनके तेज से दमकता है ।५। यह प्रकाशमान लपटों वाले अग्नि देवताओं की ओर गमन करते हैं । इनकी वायु से सुसंगत और शोषक किरणें शब्द करती हैं । गमनशील, व्यापक, पुरातन, उज्ज्वल वर्ण वाले एवं देवताओं में प्रमुख अग्नि अपने ही तेज से प्रकाशित होते हैं ।६। हे अग्ने ! महान् देवताओं को हमारे यज्ञ स्थान में लाओ और तुम भी हमारे यज्ञ में विराजमान होओ । तुम आकाश-पृथिवी के मध्य सूर्य के रूप में प्रकाशित होते हो । हे अग्ने स्तोतागण तुम्हें सरलता से प्राप्त करते हैं । तुम वेगवान् और शब्द करने वाले हो । अपने अश्वों के सहित हमारे इस यज्ञ में आओ ।७। (३१)

सूक्त ४

(ऋषि—त्रितः । देवता—अग्नि । सोमः । त्रिष्टुप्)

प्र ते यक्षि प्रत इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥१
यं त्वा जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महांश्चरसि रोचनेन ॥२
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥३
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥४
कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५

तनूत्यजेव तस्कारा वनगू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६
ब्रह्म च ते जातवेदो च गीः सदमिद्वर्धनी भूत ।
रक्षाणो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो अप्रयुच्छन् ॥७।३२

हे अग्ने ! मैं तुम्हारे निमित्त सुन्दर स्तोत्रों का पाठ करता और हवि-प्रदान करता हूं । हे सर्व पूज्य अग्नि ! हमारे द्वारा किये जाने वाले देवताओं के सभी आह्वानों में तुम आते हो । तुम सब जगत के ईश्वर और प्राचीन हो । यज्ञ की कामना वाले पुरुष को तुम धन दान द्वारा सुखी करते हो । हे सर्व ऐश्वर्य के दाता अग्ने ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हुआ हवि देता हूं ।१। हे अग्ने ! तुम देवताओं और मनुष्यों के भी दूत हो। तुम आकाश-पृथिवी के मध्य हवि-हवन करते हुए अन्तरिक्ष में जाते हो । जैसे शील से व्याकुल गौऐं गोष्ठ में जाती हैं, वैसे ही यजमान तुम्हारे आश्रय में जाते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम्हें माता रूप पृथिवी जय-शील पुत्र के समान पुष्ट करती हुई तुमसे मिलने की इच्छा करती हैं। तुम अन्तरिक्ष के विस्तृत मार्ग से यज्ञ में गमन करते हो जैसे गाएं गोष्ठ में जाने को तत्पर होती हैं, वैसे ही तुम यज्ञ करने वालों से हवि ग्रहण करते हुए देवताओं के समीप जाने की इच्छा करते हो । क्योंकि तुम यज्ञादि शुभ कर्मों की अभिलाषा करने वाले हो ।३। हे अग्ने ! हम बुद्धिहीन मनुष्य तुम्हारी महिमा को नहीं जानते, हे मेधावी और चैतन्य रूप ! तुम ही अपनी विशिष्ट महिमा के ज्ञाता हो। तुम वनस्पतियों के निकटस्थ हो और अपनी जीभ से उनको खा डालते हो । तुम ही प्रजाओं के स्वामी होते हुए आहुतियों का सेवन करते हो ।४। नवोत्पन्न अग्नि जीर्ण वनस्पतियों के द्वारा प्रकट होते हैं । यह धूम्ररूप ध्वज वाले, उज्ज्वल, पालनकर्त्ता और जंगल में रहने वाले हैं यह बिना स्नान ही पवित्र हैं । जैसे प्यासा बैल जलाशय की ओर जाता है, वैसे ही यह वन के जल की ओर गमन करते हैं । इन्हीं अग्नि को, सब कर्मवान् मनुष्य समान मन

वाले होकर प्रज्वलित करते हैं ।५। जैसे वन में विचरण करने वाले दो दस्यु किसी यात्री को रस्सी से बाँधकर खींचते हैं, वैसे दश उंगलियों वाले हमारे दोनों हाथ यज्ञ की समिधाओं के द्वारा अग्नि का मंथन करते हैं। हे अग्ने ! मैं तुम्हारा अभिनव स्तोत्र करता हूं । जैसे रथ को घोड़ों से जोड़ा जाता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र को जान कर अपने तेज को हमारे यज्ञ में जोड़ो ।६। हे अग्ने ! हमारे द्वारा दी गई हवियाँ और नमस्कारयुक्त स्तुतियाँ तुम्हें बढ़ाती हुई, स्वयं भी बढ़ें । तुम हमारे शरीरों की सावधानी से रक्षा करने वाले होओ । हे अग्ने ! हमारे पुत्र पौत्रादि सब जनों की रक्षा करो ।७।

सूक्त ५

(ऋषि—त्रितः । देवता— अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१
समानं नीलं वृषणो वसानाः संजिग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२
ऋतायनी मायनी सं दधाते मित्त्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३
ऋतस्य हि वर्त्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥४
सप्त स्वसृररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥५
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६
असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७।२३

यह अग्नि देवता समुद्र के समान विशाल आश्रय वाले एवं धनों के धारणकर्त्ता हैं । यह विभिन्न प्रकार से उत्पन्न होने वाले तथा विभिन्न रूप वाले हैं । यह हमारी हृदयस्थ कामनाओं के ज्ञाता और अन्तरिक्ष का सामीप्य प्राप्त कर मेघ का प्रेरण करते हैं । इनकी समानता कोई नहीं कर सकता । हे अग्ने ! मेघ में स्थित विद्युत् रूप से तुम गमन करो । १। आहुतियाँ देने वाले यजमान अग्नि के निमित्त स्तोत्र करते हुए घोड़ियों से सम्पन्न हुए । यह अग्नि जल के आश्रय रूप हैं । विद्वज्जन इनकी सेवा करते हुए और इनके प्रमुख नामों का उच्चारण करते हुए स्तुति करते हैं ।२। सत्यरूप वाले और कर्मवान् आकाश-पृथिवी, समयानुसार माता-पिता द्वारा पुत्र को उत्पन्न करने के समान, इन्हें प्रकट करते हैं । यही आकाश-पृथिवी का पालन करते हैं और हम इन सब स्थावर जङ्गम प्राणियों के नाभि के समान मेधावी अग्नि को बढ़ाने वाले वैश्वानर अग्नि की शरण को प्राप्त हुए उन्हीं की उपासना करते हैं ।३। सब संसार को व्याप्त करने वाले आकाश-पृथिवी ने अग्नि, विद्युत् और सूर्य रूप से तीनों लोकों में विद्यमान अग्नि को कृत: मधु और पुरोडाशादि से प्रवृद्ध किया । कामनाओं को चाहने वाले तथा यज्ञों के संपादनकर्त्ता यजमान बल प्राप्ति के लिए भी प्रकट हुए अग्नि देवताओं की परिचर्या करते हैं।४। अग्नि सबके जानने वाले और स्तुत्य हैं । इन्होंने भगिनी रूपिणी अपनी सात ज्वालाओं को, यज्ञ के द्वारा सब पदार्थ को सरलता से देखने के लिए उन्नत किया । इन ज्वालाओं को प्राचीन कालीन में अग्नि ने आकाश पृथिवी के मध्य प्रतिष्ठित किया था । यजमान इन अग्नि की सदा कामना किया करते है । इन्हीं अग्नि ने वर्षा-रूप धन दिया ।५। मेधावी-जनों ने सात जघन्य पापों को मर्यादित किया है । इन सात कृत्यों में से एक का भी आचरण करने वाला पापी बताया जाता है । इन सब पापों से अग्नि ही रक्षा कर सकते हैं । यह अग्नि आदित्य की रश्मियों में, जल में और निकटस्थ मनुष्यों के घरों में निवास करते हैं ।६। सृष्टि के पूर्व यह अग्नि अव्यक्त थे । अब, सृष्टि रचना के पश्चात् व्यक्त हो गये । अतः वे हमसे पूर्वजन्मा हैं । वे परमधाम के आश्रित, सूर्य मंडल में अवस्थित

और यज्ञ स्थान में पहिले से निवास करने वाले हैं। वे स्वयं ही वृषभ और स्वयं ही गौ हैं, अर्थात् उनका कोई लिंग भेद नहीं है ॥६॥ (३)

सूक्त ६

(ऋषिः—त्रितः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥१
यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२
ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥३
शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रोहोता स जुह्वा यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४
तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिनमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥५
सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥६
अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७।२

जिन अग्नि की रक्षाओं के द्वारा यज्ञ के अवसर पर स्तोता रक्षित होता है, जो अग्नि सूर्य रश्मियों के रूप में महान् तेज के सहित सर्वत्र जाते हैं, यह अग्नि वही हैं।१। इन सत्य से सम्पन्न अग्नि की हिंसा कोई नहीं कर सकता। क्योंकि यह अग्नि देवताओं के तेज से अत्यन्त तेजस्वी होगये हैं। यह अपने सखा रूप यजमान के हित कार्य करने के

लिए अपने अश्व के द्वारा यजमान के पास पहुंचते हैं ।२। सर्वत्र गमन-शील अग्नि यज्ञ के भी स्वामी हैं। उषा के उत्पन्न होते ही यजमानों के स्वामी होते हैं। इनकी इच्छा के अनुसार ही यजमान अग्नि में हव्य देते हैं, अतः शत्रु का बल उन यजमानों को हिंसित नही कर सकता ।३। स्तुतियों द्वारा स्तुत और अपने बल से प्रवृद्ध अग्नि शीघ्र ही देवताओं के पास गमन करते हैं। यह अग्नि देवताओं के आह्वान करने वाले, स्तुत और देवताओं द्वारा ही नियुक्त हैं ।४। हे ऋत्विजो ! जो अग्नि सब भोग्य वस्तुओं के देने वाले हैं उनको इन्द्र के समान स्तुति करते हुए हमारे सामने प्रकट करो उनकी हवि दो। वे देवताओं का आह्वान करने वाले और मेधावी हैं। स्तोतागण स्तुतियो के द्वारा उनका पूजन करते हैं ।५। हे अग्ने ! जैसे शीघ्र गमन करने वाले अश्व युद्ध की ओर जाते हैं, वैसे ही संसार के सब धन तुम्हारी ओर गमन करते हैं। हे अग्ने ! तुम इन्द्र के रक्षा-साधनों को हमें प्राप्त कराओ ।६। हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही महान् हो गए और प्रतिष्ठित होते ही आहुति व पात्र हुए। तुम्हें देखते ही देवगण तुम्हारी ओर गये और तुम्हारे उज्वलित होते ही यजमानों ने तुम्हें हव्य प्रदान किया। हे रक्षक अग्ने तुम्हारी रक्षाओं से रक्षित ऋत्विज् वृद्धि को प्राप्त हुए हैं ।।७।। (१)

सूक्त ७

(ऋषि—त्रितः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव।
सचेमहि तव दस्य प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ।।१
इमा अग्ने मतयस्तुभ्य जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः।
यदा ते मर्तो अनु भागमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ।।२
अग्नि मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ।।३

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥४
द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥५
स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥६
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नःसुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो अप्रयच्छन् ॥७।२

हे अग्ने ! तुम दिव्य हो, तुम दर्शन के योग्य और यज्ञ करने वाले हो । तुम हमको दिव्य और पार्थिव अन्न प्रदान करो और विभिन्न दृढ़ रक्षा साधनों द्वारा हमारी रक्षा करो ।१। हे अग्ने ! तुमने गौओं और अश्वों से युक्त धन हमको प्रदान किया है, इसीलिए तुम स्तुत्य हो । हमने यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही उच्चारित किया है । तुम जब मनुष्य को उपभोग्य धन देते हो तब तुम्हारी स्तुति की जाती है । तुम अपने तेज से विश्व को व्याप्त करते और सुन्दर कर्मों की वृद्धि के लिए प्रकट होते हुए हमें धन प्रदान करो ।२। जैसे आकाश में विद्यमान, पूजनीय एवं प्रकाशित सूर्य की कामना की जाती है वैसे ही मैं उन अग्नि को अपना पिता, भ्राता और मित्र मानता हुआ उनके मुख की सेवा करता हूं ।३। हे अग्ने ! तुम नित्य होता और देवताओं के आह्वानकर्त्ता हो, अतः यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही प्रकट हुए हैं । तुम अपने जिस सेवक का पालन करते हो, वह मैं तुम्हारे सम्पर्क में रह कर यज्ञ करने वाला होऊँ । तुम्हें हवि प्राप्त हो सके, इसलिये तुम्हारे द्वारा मुझे अश्वादि से युक्त धन प्राप्त हो ।४। देवताओं का आह्वान करने के लिये मनुष्यों ने अग्नि को प्रदीप्त किया है तथा मित्र के समान संगति के योग्य यह अग्नि यजमानों की भुजाओं द्वारा उत्पन्न हुए हैं ।५। हे अग्ने ! तुम दिव्य हो, अतः दिव्य लोक वासी देवताओं के लिए यज्ञ करो । जो मनुष्य तुम्हारी महिमा

को नहीं जानते वे क्या कर सकेंगे ? हे सुन्दर जन्म वाले ! तुम समय-समय पर यज्ञ करते रहे हो, अतः अब भी करो ।६। हे अग्ने ! तुम प्रकट और अप्रकट भयों से हमारी रक्षा करो । तुम शोभन एवं पूजनीय हो, हमारे लिये अन्न के उत्पादन कर्त्ता और देने वाले बनो । हे अग्ने ! हमारे शरीर की रक्षा करते हुए हमको अन्न से सम्पन्न करो ।।७।। (२)

सूक्त ८

(ऋषि—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । देवता—अग्निः इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानलपामुपस्थे महिषो ववर्ध ।।१
मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु प्रथमो जिगाति ।।२
आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ।।३
उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे स्वायै ।।४
भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ।।५।३

देवाह्वाक अग्नि वृषभ के समान शब्द करने वाले हैं । जल के आश्रय स्थान अन्तरिक्ष में वास करने वाले विद्युत् रूप अग्नि अपनी महिमा से ही बढ़ते हैं । अपने समीपस्थ को व्याप्त करने वाले अग्नि अपनी धूपरूप महती पताका को धारण करते हुए आकाश—पृथिवी में विचरण करते हैं । १ । महान् तेज वाले और कामनाओं की वर्षा करने में समर्थ अग्नि आकाश-पृथिवी के मध्य सुख से रहते हैं । यह शब्द करने वाले अग्नि रात्रि और उषा के गर्भ से उत्पन्न होते हुए यज्ञों में श्रेष्ठ कर्म करते हैं और आह्वानीय आदि स्थानों को प्राप्त करते हुए देवताओं में श्रेष्ठ

होकर गमन करते हैं। २। जिस सुन्दर बल वाले, अग्नि, के तेज को यज्ञ में धारण करते हैं, वह अग्नि अपने माता-पिता रूप पृथिवी आकाश पर अपने रूप को बढ़ाते हैं। यह अग्नि यज्ञ स्थान को व्याप्त करने वाले, हव्यादि अन्नों से सम्पन्न और सुन्दर ज्योति वाले हैं। हे अग्ने! मेधावी-जन तुम्हारी परिचर्या करते हैं। ३। हे अग्ने! तुम परस्पर सुसंगत, दिन-रात्रि की शोभा के बढ़ाने वाले हो और उषाकाल से पहिले ही आगमन करते हो। तुम अपने तेज से सूर्य को प्रकट करते हुए और सात स्थानों को प्राप्त होते हुए यज्ञ करते हो। ४। हे अग्ने! तुम यज्ञ रक्षक, चक्षु रक्षक, चक्षु के समान दर्शन शक्ति से सम्पन्न करने वाले हो। जब तुम आदित्य होकर यज्ञ की ओर गमन करते हो तब तुम ही रक्षा करते हो। हे जल के पौत्र! अपने जब तुम यजमान से हव्य को स्वीकार करते हो, तब उसके दूत बन जाते हो ॥५॥ (३)

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने हव्यवाहम् ॥६
अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥७
स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितोगाः ॥८
भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम्।
त्वाष्ट्रस्यचिद्विश्वरूपस्यगोनामाचक्राणस्त्रीणिशीर्षापरावक् ॥९।४

हे अग्ने! तुम जब अन्तरिक्ष में सुख देने वाले अश्वों से सम्पन्न वायु से संगति करते हो, तब तुम कर्म और जल के स्वामी हो जाते हो। जो सूर्य सबके भजनीय और आकाश में सर्वश्रेष्ठ हैं, तुम उनके धारण करने वाले हो। तुम्हारी ज्वालाऐं यज्ञ में दी जाने वाली हवियों का वहन करती हैं।६। त्रित ऋषि ने यज्ञ सम्पन्न होने पर यज्ञ पिता से अपनी रक्षा के लिये याचना की। तब उन त्रित ऋषि ने माता-पिता की श्रेष्ठ

स्तुतियाँ उच्चारित की थीं और उन्हें प्रसन्न करके युद्ध में रक्षा का साधन रूप अस्त्र प्राप्त किया था ।७। इन्द्र की प्रेरणा से त्रित ऋषि ने अपने पिता से आयुध प्राप्त करके संग्राम किया । तब इन्होंने सात रस्सियों वाले त्रिशिरा का संहार किया और त्वष्टा के पुत्र की गौओं को भी ले लिया ।८। इन्द्र सज्जनों के स्वामी हैं। उन्होंने अत्यन्त तेज वाले अहंकारी त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को चीर डाला और उसकी गौओं को बुलाते हुए उसके तीनों मस्तक को छिन्न कर दिया ॥९॥

सूक्त ९

(ऋषि–त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपोवाम्बरीषः देवता–आपः
छन्द--गायत्री, अनुष्टुप्)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जेदधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः उशतीरिव मातरः ॥२
तस्मा अरङ्गमामवो यस्यक्षयाय जिन्वथाआपो जनयथाचनः ॥३
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः ॥४
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । आपो याचामि भेषजम् ॥५
अप्सुमेसोमोअब्रवीदन्तर्विश्वानिभेषजा । अग्निंचविश्वशम्भुवन् ॥६
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥७
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम् ॥८
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥९।५

हे जल ! तुम सुख के भण्डार हो । हमको मेधावी बनाओ और अन्न प्रदान करो ।१। हे जल ! माताएँ जैसे बालकों को दूध देती हैं उसी प्रकार तुम अपना रसरूप सुख प्रदान करो ।२। हे जल ! तुम जिस पाप को दूर करने के निमित्त हमारा पालन करते हो, हम उसी पाप

को नष्ट करने की कामना से तुम्हें अपने सिर पर डालते हैं। तुम हमारे वंश को बढ़ाओ ।३। दिव्य गुण वाले जल पीने के योग्य हुए, अब वे हमारे यज्ञ को कल्याणकारी बनावें। वे जल अप्रकट रोगों को उत्पन्न न होने दें और प्रकट रोगों को शान्त करें। सुन्दर गुण वाले यह जल आकाश से बरसें ।४। जल ही मनुष्यों के आश्रयदाता और काम्य पदार्थों के स्वामी हैं। उन जलों से हम औषधियों को गुणवती करने की याचना करते हैं ।५। सोम का कथन है कि इन्हीं जलों में अग्नि का निवास है और औषधियाँ भी इनकी आश्रिता हैं ।६। हे जल ! हमारी देह-रक्षक औषधियों को बढ़ाओ, जिससे हम दीर्घकाल तक सूर्य के दर्शन करने वाले हों ।७। हे जल ! मेरे द्वारा जो हिंसा आदि दुष्कर्म हुए हैं अथवा मिथ्या भाषण आदि का जो पाप मेरे द्वारा हो गया है, तुम उन पापों से मेरी रक्षा करो ।८। मैंने आज जल का आश्रय लिया है। हे अग्ने ! तुम भी जल से पूर्ण होकर मुझे तेज प्रदान करो ।।९।। (५)

सूक्त १०

(ऋषि—यमी वैवस्वती, यमो वैवस्वतः। देवता—यमो वैवस्ततः, यमो वैवस्वती। छन्द—त्रिष्टुप्)

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ।।१
न ते सखाः सख्यं वष्टयेतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ।।२
उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजस मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ।।३
न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ।।४
गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्यपृथिवी उत द्यौः ।।५।६

हे यम ! मैं इस विशाल समुद्र के मध्य तुमसे मिलने की इच्छा करती हूँ। तुम माता की कोख से ही मेरे जन्म के साथ हो ।१। हे यमी ! तुम मेरी सहोदरा हो। हमारा अभीष्ट यह नहीं है। प्रजापति के स्वर्गलोक के रक्षक देवगण सब देखते हुए विचरण करते हैं ।२। हे यमी ! देवताओं को अपना इच्छित करने की सामर्थ्य प्राप्त है। अतः तुम मेरी इच्छा के अनुसार बर्तो ।३। हे यमी ! हम सत्यभाषी हैं, कभी मिथ्या नहीं बोलते। सूर्यलोक के निवासी जलधार के आदित्य और वहीं वास करने वाली योषा हमारे माता-पिता हैं ।४। हे यमी ! सबके आत्मरूप प्रजापति ने हमें जन्म से ही साथी बनाया है। आकाश-पृथिवी भी हमारे इस जन्म सम्बन्ध को जानते हैं। अतः प्रजापति के कर्म को कोई अन्यथा करने में समर्थ नहीं है ॥५॥ (६)

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नृन् ॥६
यमस्य मा यम्यं काम भागन्त्समाये योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्व रिरिच्यां विचिद्वृहेब रथ्येव चक्रा ॥७
न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथयेव चक्रा ॥८
रात्रिभिरस्माः अहमिदशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९
आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बबृहि वृषभाय बाहुमन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०।७

हे यम ! प्रथम दिन के आचरण का जानने वाला कौन है उसे किसने देखा है ? मित्रावरुण के महान् धाम के बारे में तुम क्या कहना चाहते हो ? ।६। हे यम ! जैसे रथ के दोनों चक्र एक कार्य में प्रयुक्त होते है, वैसे ही हम समान मति वाले होकर समान कार्य को करें । ६ । हे यमी ! देवताओं के दूत सदा चैतन्य रहते हैं, उनके लिए दिन रात्रि की कोई

बाधा नहीं है । अतः तुम मेरे पास से दूर होओ ।८। दिन रात्रि में यम के यज्ञ-भाग को यजमान प्रदान करें, सूर्य का तेज यम के लिए तेजस्वी बनावे परस्पर सुसंगत आकाश-पृथिवी यम के बाँधव हैं । यम की बहिन यमी भाई से दूर चली जाय ।६।। हे यमी ! मेरे पास से अन्यत्र गमन करो ।१०। (७)

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता वह्वे तद्रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ।।११
न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत्प्रमुद कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ।।१२
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।।१३
अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्यवात्वं मन इच्छा स वा तवाधा कुणुष्व संविदं सुभद्राम् ।।१४।८

हे यम ! जिस भाई के रहते बहिन अनाथा रहे, वह कैसा भाई है ? और वह बहिन भी कैसी है, जिसके रहते भाई का दुःख दूर न हो ।११। हे यमी ! मैं तुम्हारे स्पर्श से भी दूर रहना चाहता हूँ अतः तुम मेरे पास से दूर होओ ।१२। हे यम ! तुम दुर्बुद्धि वाले हो । मैं तुम्हारे मनको समझ नहीं पाती । तुम मुझे दूर भगाना चाहते हो ।१३। हे यमी ! तुम मेरे पास से चली जाओ । इसी में तुम्हारा कल्याण है ।१४। (८)

सूक्त 11

(ऋषिः—हविर्धान आङ्गि । देवता—अग्नि । छन्दः—त्रिष्टुप्)

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ।।१
रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः
प्रथमो वि वोचति ।।२

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्ववंती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ।।३
अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनोअध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ।।४
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ।।५।६

अग्नि कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं यह यजमान के कर्म द्वारा आकाश से जलों को दोहन करते हैं । सूर्यात्मक अग्नि सब जगत् के ज्ञाता हैं और यज्ञ में उत्पन्न हुए अग्नि के अनुकूल ऋतुओं को पूजते हैं ।१। अग्नि गुण-गान करने वाली गन्धर्व पत्नी और जल से शोधित हवियों ने अग्नि को पूर्ण किया । यह अहिंसित अग्नि हमें यज्ञ कर्म में प्रेरित करें । सब यजमानों में प्रमुख हमारे ज्येष्ठ भ्राता और मैं उन अग्नि की स्तुति करते हैं ।२। उषा सुन्दर कीर्त्ति वाली, उपासना के योग्य और सुन्दर शब्द वाली है । वह सूर्य से पूर्व प्रकट होती है और तब यज्ञ-कर्म के लिये अग्नि को प्रकट किया जाता है । देवताओं को बुलाने वाले अग्नि यज्ञ की कामना वाले यजमानों पर प्रसन्न होते हैं ।३। श्येन पक्षी अग्नि की प्रेरणा से उस महान् सोम को लाया । जब स्तोतागण इन दर्शनीय और देवताओं को बुलाने वाले अग्नि की स्तुति करते हैं, तब यज्ञ कर्म का आरम्भ होता है ।४। हे अग्ने ! तुम तृण के समान सुकोमल हो और स्तुति करने वालों के स्तोत से प्रसन्न होकर तुम हव्य को ग्रहण करते हो । देवताओं के साथ गमन करने वाले अग्निदेव ! तुम इस हवन से हमारे यज्ञ को पूर्ण करो ।५। (६)

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति यर्हतोहृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपेते मती ।।६
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शण्वे ।

इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्यु॒मां अमवान्भूषति द्यू॒न् ॥७
यदग्न एदा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भाग नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥८
श्रु॒धी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥१०

हे अग्ने ! जैसे नक्षत्र आदि को फीका करने वाले सूर्य अपने प्रकाश को पृथिवी और आकाश की ओर भेजते हैं,वैसे ही तुम अपने माता-पिता रूप पृथिवी-आकाश की ओर अपनी ज्वाला को प्रेरित करो। यज्ञ-भाग को कामना करने वाले देवताओं की तृप्ति के लिए यजमान मन से यज्ञ-कर्म करने को उत्सुक हैं। अग्नि देवता स्तुतियों को सम्पन्न करना चाहते हैं और ऋत्विज् प्रधान ब्रह्मा कर्म को विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिए स्तोत्रवृद्धि करते हैं।६। हे अग्ने ! तुम स्वभाव से ही कृपा करने वाले हो। यजमान स्तुतियों और हवियों से तुम्हारी सेवा करता है। वह यजमान दानशील होता हुआ प्रसिद्धि प्राप्त करता है। वह बल और दीप्ति से सम्पन्न होता हुआ, अश्वादि धन पाकर सुखी रहता हैं।७। हे अग्ने ! जब हम यज्ञ-योग्य, देवताओं के लिए बहुत-सी स्तुतियाँ करें, तब तुम हमको उपभोग्य धन दो। तुम हमारी हवियों को ग्रहण करो, जिससे हम धन-प्राप्त कर सकें।८। हे अग्ने ! इस समस्त देवताओं वाले यज्ञ में निवास करते हुए तुम हमारे स्तोत्र को सुनो और अपने अमृत-वर्षक रथ को जोड़ो। तुम अपने माता-पिता रूप आकाश-पृथिवि को हमारे लिए आश्रय देने वाले बनाओ और हमारे यज्ञ-मण्डप में देवताओं के पास ही विराजमान होओ।९। (१०)

सूक्त १२

(ऋषि—हविर्धान आंगिः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।

देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥१
देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥२
स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३
अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुत रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४
किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रत चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति
॥५॥११

सर्वश्रेष्ठ द्यावापृथिवी यज्ञानुष्ठान में सर्वप्रथम अग्नि देवता को आहूत करें। वह अग्नि भी मनुष्यों को प्रेरित करते हुए अपनी ज्वालाओं के सहित यज्ञ में विराजमान होकर देवताओं का आह्वान करें ।१। दिव्य रूप वाले अग्नि इन्द्रादि देवताओं के पास जाकर अन्न लावें। यह अग्नि यजमानों के यज्ञ को पूर्ण करने वाले, सबके जानने वाले, समिधा द्वारा ऊपर को उठते हुए, धूम रूप ध्वज वाले और देवताओं के बुलाने वाले हैं ।२। अग्नि देवता जिस जल को उत्पन्न करते हैं उसी के द्वारा पृथिवी का पोषण करते हैं। हे अग्ने ! तुम्हारी उज्ज्वल ज्वालाऐं स्वर्ग से वर्षा रूप जल को दुहती हैं तब सभी देवता तुम्हारे जल-दान की स्तुति करते हैं ।२। हे अग्ने ! हमारे यज्ञ कर्म की वृद्धि करो। हे आकाश-पृथिवी ! तुम वृष्टि-जल को सींचने वाले हो। मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ, तुम उसे सुनो। यज्ञ के अवसर पर स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं तब तुम जल की वृष्टि करते हुए हमारी अपवित्रता को दूर भगाओ ।४। क्या हमने अग्नि का विधि-पूर्वक पूजन किया है और उन्होंने हमारी स्तुति और हवि को स्वीकार कर लिया है ? इसे कौन जानता है ? जैसे बुलाए जाने पर मित्र आता है, वैसे ही आह्वान करने पर अग्नि

भी आते हैं। हमारी यह स्तुति और हमारा यह हमारा हव्य देवताओं की ओर गमन करें ।५। (११)

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ।।६
यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तूंन्परि द्योतनि चरतो अजस्रा ।। ७
यस्मिन्देवा मन्मनि सञ्चरन्त्यपीच्ये न वयमस्त विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ।।८
श्रु धीनो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ।।९।१२

सूर्य द्वारा प्रेरित अमृत के समान गुण वाला जल पृथिवी पर विभिन्न रूप से रहता है। वह सूर्य यम को दोष-मुक्त करते हैं। हे अग्ने! क्षमा करने वाले सूर्य को तुम पुष्ट करो ।६। यजमान के यज्ञ की वेदी में अपने को प्रतिष्ठित करने वाले देवता अग्नि का सामीप्य प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं देवताओं ने सूर्य मे तेज और चन्द्रमा में शीतलता स्थापित की। अग्नि और देवताओं द्वारा वृद्धि को प्राप्त किए हुए हैं ।७। देवता जिन अग्नि की निकटता से अपने कार्य को सम्पन्न करते हैं, हम उनके यथार्थ रूप को नहीं जानते। मित्र, देवता, सूर्य और अदिति पावक नाम वाले अग्नि से हमको निष्पाप बनावें ।८। हे अग्ने! अमृत रूप जल की वृष्टि करने वाले अपने रथ को जोड़ो और सब देवताओं से सम्पन्न हमारे यज्ञ में निवास करते हुए हमारी स्तुतियों को सुनो। अपने माता-पिता रूप आकाश-पृथिवी को हमें प्राप्त कराओ और तुम देवताओं के पास ही इस यज्ञ में विराजमान होओ ।९। (१२)

सूक्त १३

(ऋषि—विवस्वानादित्यः। देवता—हविर्धान। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्र आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१
यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वसस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२
पञ्च पदानि रूपो अन्वरोहं चतुष्पदीमष्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥३
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥४
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वे पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५॥१४

हे शकटद्वय ! प्राचीन स्तुतियों के द्वारा सोमादि को तुम पर रखकर मैं तुम्हें ले चलता हूं । मेरी स्तुतियाँ हवियों के समान ही देवताओं के पास पहुंचे । जो देवता अपने आश्रय स्थान स्वर्ग में निवास करते हैं, वे मेरी स्तुति को सुनें । हे शकटद्वय ! जब तुम युग्म सजन्मा के समान गमन करते हो तब देवताओं का पूजन करने वाले पुरुष तुम्हारे ऊपर प्रचुर पूजन सामग्री लादते हैं । तुम हमारे सोम के लिए सुन्दर स्थान पाने के लिए अपने स्थान पर पहुंचो ।२। मैं यज्ञ के पाँचों उपकरणों को यथास्थान रखता हुआ चार छन्दों का विधिपूर्वक प्रयोग करता हूं । यज्ञ-वेदी पर सोम को शुद्ध करता हुआ मैं परमात्मा के ॐ नाम का उच्चारण करता हुआ अपने कर्म को सम्पन्न करता हूं ।३। कौन-सा देवता मृत्यु के आश्रय में जाय? कौन सा मनुष्य अमर हो? यज्ञ करने वाले पुरुष मन्त्र से संस्कृत यज्ञ को करते हैं इसलिए यम उनकी रक्षा करते हैं ।४। पुत्र के समान ऋत्विज् पिता के समान सोम के लिए सात छन्दों का उच्चारण करते ए स्तुति करते हैं । यह दोनों शकट, देवता और मनुष्य दोनों को ही तेज प्राप्त कराते तथा उन्हें पुष्ट कराते हैं ।५। (१३)

सूक्त 14

(ऋषि—यमः । देवता—यमः, लिङ्गोक्ताः, पितरो वा श्वानौ, । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् बृहती)

परेयिवांथ प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुःपस्पशानम् ।
वैवस्वत सङ्गमनं जनानां यम राजानं हविषा दुवस्य ॥१
यमो नो गातु प्रथमो विवेद नंषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरा परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥२
मालती कव्यर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये मदन्ति ॥३
इम यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरेभिः पितृभि संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम बैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञ बर्हिष्या निषद्य ॥५।१४

हे उपासक ! तुम पित्तरेश्वर यम की सेवा करो । उन्हें हव्यादि से तृप्त करो । श्रेष्ठ कर्म करने वालों को यम सुख-सम्पन्न लोक प्राप्त कराते हैं । वे उनके मार्ग को सरल करते हैं । क्योंकि सब प्राणी उन्हीं के पास पहुँचते हैं ।१। यम के मार्ग को कोई न ढक सका । जिस मार्ग से हमारे पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से ज ते हुए सब प्राणी अपने कर्मों के अनुसार ही लक्ष्य पर पहुंचगे । हे सर्वश्रेष्ठ यम ! हमारे अच्छे और बुरे सब कर्मों के आप जानने वाले हैं ।२। सारथि स्वामी इन्द्र कव्ययुक्त पितरों की सहायता से प्रवृद्ध होते हैं । बृहस्पति ऋक्व नामक पितरों की और यम अंगिरा नामक पितरों की सहायता से वृद्धि को प्राप्त होते हैं । जो देवताओं की वृद्धि करने वाले होते हैं, अथवा जिसे देवता बढ़ाते हैं, वे हर प्रकार बढ़ते हैं इनमें से कोई स्वाहा से और कोई स्वधा से हर्ष को प्राप्त होते हैं । हे यम ! तुम विस्तृत यज्ञ में अंगिरा नामक पितरों के साथ आओ । ऋत्विजों का

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्र आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१
यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वसस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२
पञ्च पदानि रूपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥३
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिंयज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥४
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वे पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५॥१४

हे शकटद्वय ! प्राचीन स्तुतियों के द्वारा सोमादि को तुम पर रखकर मैं तुम्हें ले चलता हूं । मेरी स्तुतियां हवियों के समान ही देवताओं के पास पहुंचे । जो देवता अपने आश्रय स्थान स्वर्ग में निवास करते हैं, वे मेरी स्तुति को सुनें । हे शकटद्वय ! जब तुम युग्म सजन्मा के समान गमन करते हो तब देवताओं का पूजन करने वाले पुरुष तुम्हारे ऊपर प्रचुर पूजन सामग्री लादते हैं । तुम हमारे सोम के लिए सुन्दर स्थान पाने के लिए अपने स्थान पर पहुंचो ।२। मैं यज्ञ के पाँचों उपकरणों को यथास्थान रखता हुआ चार छन्दों का विधिपूर्वक प्रयोग करता हूं । यज्ञ-वेदी पर सोम को शुद्ध करता हुआ मैं परमात्मा के ॐ नाम का उच्चारण करता हुआ अपने कर्म को सम्पन्न करता हूं ।३। कौन-सा देवता मृत्यु के आश्रय में जाय? कौन सा मनुष्य अमर हो? यज्ञ करने वाले पुरुष मन्त्र से संस्कृत यज्ञ को करते हैं इसलिए यम उनकी रक्षा करते हैं ।४। पुत्र के समान ऋत्विज् पिता के समान सोम के लिए सात छन्दों का उच्चारण करते हुए स्तुति करते हैं । यह दोनों शकट, देवता और मनुष्य दोनों को ही तेज प्राप्त कराते तथा उन्हें पुष्ट कराते हैं ।५।

सूक्त १४

(ऋषि—यमः । देवता—यमः, लिङ्गोक्ताः, पितरो वा श्वानौ, ।
छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् बृहती)

परेयिवांथ प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुःपस्पशानम् ।
वैवस्वत सङ्गमनं जनानां यम राजानं हविषा दुवस्य ॥१
यमो नो गातु प्रथमो विवेद नंषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरा परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥२
मालती कव्यर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिऋर्क्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये मदन्ति ॥३
इम यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरेभिः पितृभि संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञ बर्हिष्या निषद्य ॥५।१४

हे उपासक ! तुम पित्तरेश्वर यम की सेवा करो । उन्हें हव्यादि से तृप्त करो । श्रेष्ठ कर्म करने वालों को यम सुख-सम्पन्न लोक प्राप्त कराते हैं । वे उनके मार्ग को सरल करते हैं । क्योंकि सब प्राणी उन्हीं के पास पहुँचते हैं ।१। यम के मार्ग को कोई न ढक सका । जिस मार्ग से हमारे पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से ज ते हुए सब प्राणी अपने कर्मों के अनुसार ही लक्ष्य पर पहुंचगे । हे सर्वश्रेष्ठ यम ! हमारे अच्छे और बुरे सब कर्मों के आप जानने वाले हैं ।२। सारथि स्वामी इन्द्र कव्ययुक्त पितरों की सहायता से प्रवृद्ध होते हैं । बृहस्पति ऋक्व नामक पितरों की और यम अंगिरा नामक पितरों की सहायता से वृद्धि को प्राप्त होते हैं । जो देवताओं की वृद्धि करने वाले होते हैं, अथवा जिसे देवता बढ़ाते हैं, वे हर प्रकार बढ़ते हैं इनमें से कोई स्वाहा से और कोई स्वधा से हर्ष को प्राप्त होते हैं । हे यम ! तुम विस्तृत यज्ञ में अंगिरा नामक पितरों के साथ आओ । ऋत्विजों का

आह्वान तुम्हें आकर्षित करे । तुम इस हवि से तृप्त होकर यजमान को सुखी करो ।४। हे यम विभिन्न रूप वाले यज्ञ-कर्ता अंगिराओं के साथ आओ और हमारे यज्ञ में यजमान को सुख दो । मैं तुम्हारे पिता आदित्य का आह्वान करता हूं, वे हमारे कुशों पर बैठकर यजमान को सुखी करें ।५। (१४)

अङ्गिरसो न पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ।।६
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ।।७
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ।।८
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ।।९
अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्रां उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ।।१०।।१५

सोम के पात्र अंगिरा, अथवा और भृगु नामक पितरों ने यहाँ आगमन किया । हम उन पितरों की कृपा-पूर्ण दृष्टि में रहें और उनको प्रसन्न करते हुए मङ्गलमय मार्ग पर चलें ।६। हे पितः ! जिस प्राचीन मार्ग से हमारे पूर्व पुरुष आ गए हैं,तुम भी उसी मार्ग से गमन करो और वहाँ स्वधा से प्रसन्न हुए राजा यम और वरुण देवता के दर्शन करो ।७। हे पितः ! श्रेष्ठ लोक स्वर्ग में अपने उत्तम कर्मों के प्राप्त करते हुए अपने पितरों से संगति करो । पास को त्याग तेजस्वी शरीर अपण करते हुए अस्त नामक ग्रह में प्रतिष्ठित होओ ।८। हे श्मशान के पिशाचो ! यह स्थान पितरों ने इस मृत यजमान के लिए निश्चित किया है, अतः तुम यहाँ से दूर चले जाओ । राजा यम ने यह स्थान मृतक के लिए

निश्चित किया है । तथा यह जल, दिवस और रात्रि के द्वारा सुसज्जित है ।९। हे पितः । मनुष्य द्वारा प्रशंसा करने योग्य, दिव्य मार्ग में रक्षा करने वाले तथा चार नेत्र और अद्भुत वर्ण वाले जो कुत्ते हैं तुम उनके पास से शीघ्र निकल जाओ । यम के साथ रहने वाले पितरों के पास श्रेष्ठ मार्ग से पहुँचो ।१०।   (१५)

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सर्यायपुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः ॥१३
यमाय घृतवद्धविर्जु होत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यदद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४
यमायमधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५
त्रिकद्रुकेभिः पतति षलुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुप्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६।१६

हे राजा यम ! इस मृत व्यक्ति को कल्याण का भागी बनाते हुए अपने गृह-रक्षक तथा चार नेत्र वाले कुत्तों से इसकी रक्षा करो ।११। यम के यह दोनों दूत लम्बी नाक और महान् बल वाले हैं । यह दूसरों के प्राण लेकर ही संतुष्ट होते हैं । वे दोनों हमको सूर्य का दर्शन करते रहने के लिए प्राणवान् करें ।१२। हे ऋत्विजो ! यम के लिए हव्य कल्पित करो । इनके लिए सोम अर्पित करो । अग्नि देवता जिस यज्ञ के दूत हैं, वह विभिन्न पदार्थों वाला यज्ञ यम की ओर गमन करता है ।१३। हे ऋत्विजो ! यम के लिए घृत से पूरा हव्य अर्पित करते हुए

उनकी सेवा करो । वे यम हमारे लिए दीर्घकाल तक जीवित रखने वाली आयु प्रदान करें ।१४। हे ऋत्विजो ! पूर्वकाल में जिन ऋत्विजों ने सुन्दर मार्ग बनाया था, उनको हम नमस्कार करते हैं । तुम इन यजमान के निमित्त हव्य प्रदान करो ।१५। राजा यम त्रिकद्रुक यज्ञ के योग्य हैं । वे छः स्थानों में रहने वाले यम सम्पूर्ण जगत् में घूमते हैं । उन यमराज की त्रिष्टुप, गायत्री छन्दों से स्तुति करते हैं ।१६। (८)

सूक्त १५

(ऋषि–शङ्खो यामायनः । देवता–पितरः । छन्द–त्रिष्टुप् जगती)

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु त्रिक्षु ॥२
आहं पितृन्त्सुविदत्रां अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३
बर्हिषदः पितर ऊत्य र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥४
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५।७

हमारी रक्षा के निमित्त अहिंसक होकर यज्ञ में आने वाले पितर हमारे रक्षक हों । उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी वाले सब पितर हम पर कृपा करते हुए इस यज्ञ में हमारी हवियों को स्वीकार करें ।१। पूर्वकाल में एवं उसके पश्चात् मरने वाले पितर अथवा जो पृथिवी पर आ गये हैं, या जिन्होंने भाग्यवानों के मध्य जन्म ले लिया है, उन सब पितरों को नमस्कार हैं ।२। मैंने इस यज्ञ को सम्पन्न करने का उपाय

जान लिया है । कुशों पर विराजमान होकर हव्ययुक्त सोम को ग्रहण करने वाले पितर यहाँ आये हैं । अपने भले प्रकार परिचित पितरों को भी मेरे यहां पाया है ।२। हे पितरो ! तुम कुशों पर बैठने वाले हो । तुम्हारे उपभोग के लिए जो पदार्थ प्रस्तुत हैं उन्हें ग्रहण करते हुए हमको शरण प्राप्त कराओ । हमको कल्याण का भागी बनाते हुए हमारे सब पापों को दूर कर दो । इस समय यहां पधार कर सब अमगलों से हमारी रक्षा करो ।४। यह सभी श्रेष्ठ कुशों पर स्थित हैं । सोमरस के साथ इनका सेवन करने के लिए पितरों का आह्वान किया गया है । वे पितर यहाँ आकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए हमारी स्तुतियाँ स्वीकार करें और हमारे रक्षक हों ।५। (६)

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ।।६
असीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ।।७
येनः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सीमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभियमः संरराणो हवीं ष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ।।८
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्योमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुवि दत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यै पितृभिवर्मसद्भिः ।।९
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्र देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिघमसद्भिः ।।१०।१८

हे पितरो ! हम अल्पज्ञ हैं, अतः हमसे अपराध होना असम्भव नहीं है । हमारे किसी अपराध पर हमको हिंसित न करना, दक्षिण की ओर घुटने टेक कर बैठे हुए हमारे इस यज्ञ की प्रशंसा करो ।६। हे पितरो ! लाल शिखा के समीप स्थित इन दानशील यजमानों को धन प्रदान करो। इनके पितरों को यज्ञ के लिए प्रेरित करो ।७। सोम पीने योग्य जिन

पितरों ने विधि पूर्वक सोम पिया था, वे हव्य की कामना करते हैं। उन पितरों के साथ प्रसन्न होते हुए यमराज हव्य सेवन कर तृप्त होते हैं ।८। हे अग्ने ! अनेक ऋचाओं की रचना करने वाले और यज्ञ के विधान को जानने वाले जो पितर अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा देवत्व को प्राप्त होचुके हैं, वे यदि भूखे प्यासे हों तो हमारे पास आगमन करें। वे यज्ञ में बैठने वाले पितर हमारी श्रेष्ठ हवि से संतुष्ट हों ।९। हे अग्ने ! जो सज्जन स्वभाव वाले पितर देवताओं के साथ आकर हव्य सेवन करते हैं, उन देवताओं की उपासना करने वाले अनुष्ठानों के कर्त्ता, प्राचीन और नवीनतथा इन्द्र के साथ ही रथ पर आरूढ़ होने वाले पितरों के साथ तुम भी आगमन करो ।१२। (१८)

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११
त्वमग्न ईलितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२
ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यां उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वरालसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥१९

हे पितरो ! सब यहां आकर पृथक् पृथक् आसनों पर विराजमान होओ और कुशों पर रखे संस्कृत हव्य का सेवन करो। इसके पश्चात् हमें पुत्र-पौत्रादि तथा पशुओं से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ।११। हे अग्ने ! तुम सबके जानने वाले हो। तुमने हमारे हव्य को सुगन्धित करके पितरों को प्रदान किया है। हमारे वे पितर स्वधायुक्त हवि को ग्रहण करें और तुम भी हमारे इस श्रद्धा से समर्पित हव्य का सेवन करो, क्योंकि हमने तुम्हारी ही स्तुति की है ।१२। हे सर्वज्ञ अग्ने ! यहां उपस्थित या अनुपस्थित, हमारे परिचित या अपरचित जितने भी पितर हैं तुम उन सबको

जानते हो । हे पितरो ! इस स्वधायुक्त यज्ञ से तृप्ति को प्राप्त होओ ।१३। हे अग्ने ! जिन पितरों का अग्नि संस्कार हुआ अथवा जिनका दाहसंस्कार नहीं हुआ, स्वर्ग लोक में वे सब स्वधा से तृप्त रहते हैं। तुम उनसे सुगन्धित होकर उनके शरीर को देवत्व की प्राप्ति कराओ ।।१४।। (१९)

सूक्त १६

(ऋषि—दमनो यामायमः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्यत्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ।।१
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीभवाति ।।२
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ।।३
अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभि र्वहैनं सुकृतामु लोकम् ।।४
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः संगच्छतां तन्वा जातवेदः ।।५।२०

हे अग्ने ! इस मृत पुरुष को कष्ट मत देना इसके देह को छिन्न-भिन्न मत करना । जब तुम्हारी ज्वालाऐं इसके देह को भस्म करने लगें तभी पितरों के पास पहुंचा देना ।१। हे अग्ने ! इस मृतक को जब तुम दग्ध करने लगो तभी पितरों को सौंप देना । जब यह पुनः प्राणवान होगा तब यह देवाश्रय में रहेगा ।२। हे मृत पुरुष ! तेरा श्वास वायु में मिले, तेरा नेत्र सूर्य से संगति करे, अपने पुण्य कर्मों के फल को प्राप्त करने के लिए स्वर्ग पृथिवी अथवा जल में निवास कर तेरे शरीर के अंश वनस्पतियों में व्याप्त हों ।३। हे अग्ने ! इस देहधारी की देह में जो अजन्मा है, उसे अपने ताप से तपाओ । तुम अपनी कल्याणमयी विभूतियों के द्वारा इसे

पुण्यलोक की प्राप्ति कराओ ।४। हे अग्ने ! तुम यज्ञ में समर्पित हव्य का सेवन करने वाले अपने रूप को पितरों के पास प्रेरित करो । इसका अवशिष्ट आयु प्राणवान् हो । हे अग्ने ! यह मृत व्यक्ति पुनर्जीवन को प्राप्त हो ॥५॥ (२०)

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणां आविवेश ॥६

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥७

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते ॥८

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे ॥१०।२१

हे मृतक ! तुम्हारे देह के जिस अवयव को कौए ने पीड़ित किया है या चींटी अथवा साँप ने काट लिया है उस अवयव को अग्नि देवता पीड़ा रहित करें और जो सोम तुम्हारे देह में रम गया है वह भी उसे दोषरहित करें ।६। हे मृतक ! तुम अपने मेद और माँस से परिपूर्ण होओ और अग्नि-शिखा रूप कवच को धारण करो । तुम्हारे द्वारा इस प्रकार करने पर तुम्हें दग्ध करने को प्रस्तुत हुए अग्नि देवता तुम्हारे सम्पूर्ण अंश को नहीं जलावेंगे ।७। हे अग्ने ! यह चमस सोम पीने के अभ्यासी देवताओं को आनन्द देने वाला है, तुम इसे हिंसित मत करना । इस देवताओं को पान कराने वाले चमस को देखकर ही देवता हर्षित हो उठते हैं ।८। माँस भक्षक अग्नि, जिनके स्वामी यम हैं, उन्हीं का सामीप्य प्राप्त करें । जो

अग्नि यहाँ हैं, वे ही हमारी हवियों को देवताओं के पास पहुंचावें।९।
जो माँसभोजी चिता में वास करते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे पास से दूर करता हूँ। इससे भिन्न मेधावी अग्नि को मैं पितरों को यज्ञ प्राप्त कराने के निमित्त स्वीकार करता हूँ। वे हमारे यज्ञ को स्वर्ग में पहुंचावें ।।१०।।(२१)

यो अग्नि: क्रव्यवाहन: पितृन्वक्षदृतावृध: ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ।।११

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्त: समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितृन्हविषे अत्तवे ।।१२

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुन: ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ।।१३

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या सु संगम इमं स्वग्निं हर्षय ।।१४।२२

यज्ञ वर्द्धक और श्राद्ध द्रव्यों के वाहक जो अग्नि हैं, वही देवता और पितरों का आह्वान करते हैं तथा हव्यादि को उनके पास पहुंचाते हैं ।११। हे अग्ने तुम्हें विधिपूर्वक स्थापित करता हुआ मैं विधिपूर्वक ही प्रदीप्त करता हूँ। तुम यज्ञ यज्ञ की कामना वाले देवताओं और पितरों के पास हव्य पहुँचाते हो ।१२। हें अग्ने ! जिसे तुमने दग्ध किया है, उसे शान्त करो। यहाँ शाखाओं वाली घास और जल उत्पन्न हो ।१३। हे शीतल वनस्पतियों से युक्त पृथिवी, तुम शीतलता धारण करो। तुम आनन्दमयी औषधियों से सम्पन्न स्वयं भी मंगलमयी हो। अग्नि को तृप्त करती हुई, मेंढकी की इच्छानुकूल वृष्टि को प्राप्त कराओ ।।१४।। (२२)

सूक्त १७ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—देवश्रवा यामायनः। देवता—सरण्यू, पूषा, सरस्वती, आपः,सोमः छन्दः— बृहती अनुष्टुप्)

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतोदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महोजाया विवस्वतो ननाश ॥१
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदुर्विवस्वते।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥२
पूषा त्वेश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
सत्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥३
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्मां अभयतमेन नेषत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५।२३

त्वष्टा देवता अपनी पुत्री सरण्यू का विवाह कर रहे हैं। इसमें सम्मिलित होने को विश्व के सब प्राणी आये। अब यम की माता सरण्यू का पाणिग्रहण हुआ, तब सूर्य की पत्नी कहीं छिप गई।१। सरण्यू मनुष्यों के पास छिपाई गई और उनके समान रूप वाली स्त्री की रचना करके सूर्य को दी गई। तब अश्व के रूप वाली सरण्यू ने अश्विद्वय को धारण कर जुडवाँ सन्तान उत्पन्न की।२। हे मेधावी पुरुष संसार के पालनकर्त्ता पूषादेव तुम्हें श्रेष्ठलोक प्राप्त करावें और अग्नि देवता तुम्हें धनदाता देवताओं के पास पहुंचावें।३। तुम्हारे इच्छित स्थान के प्राप्त कराने वाले पूषा सम्पूर्ण विश्व के प्राण रूप हैं, वे तुम्हारे प्राण की रक्षा करें। सविता देवता तुम्हें पुण्यवानों के लोकों में पहुंचावें ।४। कल्याण के देने वाले पूषा सब दिशाओं के ज्ञाता हैं। वे हमें भय रहित मार्गो से ले जायें। उन तेजस्वी पूषादेव के साथ सब योद्धा हैं। अतः वे हमारे सुपरिचित देवता हमारे अभिमुख होने की कृपा

प्रपथे पथामनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा चचरित प्रजानन् ॥६
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वाय दात् ॥७
सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
रासद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमोवा इष आ धेह्यस्मे ॥८
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते वक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाजाः ।
सहस्राघंमिलो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥९
आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु कृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यःशुचिरा पूतएमि ॥१०।२४

पूषादेव ने आकाश पृथिवी के मध्य स्थित उत्कृष्ट मार्ग में दर्शन दिया है । अपने से सुसंगत होने वाली एवं परस्पर मिली हुई आकाश पृथिवी को विशेष रूप से पूर्ण करते हैं ।६। देवताओं के लिए यज्ञ करने वाले यजमान सरस्वती का आह्वान एवं पूजन करते हैं । जब देवताओं वाला विस्तृत यज्ञ आरम्भ हुआ, तभी श्रेष्ठ कर्म करने वालों नें सरस्वती को आहूत किया । वे सरस्वति देवी इस दानशील यजमान की कामना को पूर्ण करें ।७। हे सरस्वति ! तुम पितरों के साथ एक रथ पर चढ़ कर आगमन करो और प्रसन्नतापूर्वक हव्यादि का उपभोग करो । हमारे यज्ञ में आकर आरोग्य और अन्न प्रदान करो ।८। हे सरस्वति ! यज्ञ स्थान के दक्षिण ओर बैठे हुए पितर तुम्हारा आह्वान करते हैं । इस यज्ञ के करने वाले यजमान के लिए तुम दिव्य धन और श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न करो ।९। माता के समान पोषक जल हमें पवित्र करे । घृत रूपी जल हमारे मल का शोधन करे । जल देवता हमारे पापों को बहा लेवें । जल के द्वारा पवित्र हुए हम अस्वच्छ न रहें ॥१०॥ (२४)

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ ननुद्यू निमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते देंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्त ते जुहोमिमनसा वषटकृतम् ॥१२
लत्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुनवश्च लः पर स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पति सं तं सिञ्चतु राधसे ॥१३
पयस्वती रोषधयः पयस्वन्मामक वचः ।
अपां पयश्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत ॥१४।२५

इस यज्ञ स्थान पर श्रेष्ठ रस वाले उज्ज्वल सोम क्षरित होते हैं। सात यज्ञकर्त्ता उन्हीं रसरूप सोम की आहुति देते हैं ।११। हे सोम ! अभिषवण फलक के समीप गिरने वाले तुम्हारे अंश को, छन्ने पर आरूढ़ हुए तुम्हारे अवयवों को अथवा गिरते हुए तुम्हारे रस को नमस्कार करते हुए हम यज्ञ करते हैं ।१२। हे सोम ! स्रुक नामक पात्र के नीचे गिरते हुए तुम्हारे अंश को अथवा बाहर होने वाले तुम्हारे रस को बृहस्पति प्राप्त करें, जिससे हम धन पा सकेंगे ।१३। जैसे वनस्पति दूध के समान तरल रस में सम्पन्न हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ दूध के समान मधुर रस वाली वाणी से युक्त हैं। इन सब पदार्थों के द्वारा हमको संस्कृत बनाओ ॥१४॥ (२५)

सूक्त १८

(ऋषि—सङ्कुसुको यामायनः । देवता-मृत्युः, धाता, त्वष्टा पितृमेधः प्रजापतिर्वा । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप्)

परमृत्यो अनु परेहि पन्थाँ यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मने शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजांरीरिषो मोत वीरान् ॥१
मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राधीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धा पूता भवत यज्ञियासः ॥२
इमे जीवा विः मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो नतये हसाय द्राधीय आयु प्रतरं द्राघीय दधानाः ॥३

इमं जीवेभ्य परिधिः दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरं तर्मृत्युं दधातां पर्वतेन ।।४
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धापरायूंषि कल्पयैषाम् ।।५।२६

हे मृत्यु, तुम देवयान मार्ग से भिन्न मार्ग के द्वारा गमन करो। मैं तुमसे निवेदन करता हूं कि तुम हमारे पुत्र, पौत्रादि वीरों को हिंसित न करना। तुम चक्षु से युक्त हो और सबके जानने वाले हो ।१। हे मृतक के कुटुम्बियो ! तुम देव-यान मार्ग को त्यागो। इससे तुम दीर्घजीवी होगे हे यज्ञ करने वालो ! तुम पुत्र-पौत्रादि संतान और गवादि पशुओं वाले होकर सुख पाओ और पूर्व जन्म के अथवा इस जन्म के पापों से मुक्त होओ ।२। हमारा यह पितृमेध यज्ञ कल्याण करने वाला हो। मृतक के पास से जीवित मनुष्य लौट आवें। हम हर प्रकार की क्रीड़ाओं के लिये सामर्थ्य प्राप्त करें और दीर्घजीवो हों।३। पुत्र-पौत्रादि को मरण मार्ग से रक्षित करने के लिये मृत्यु को रोकने के लिये मैं प्रस्तर विधान करता हूं। यह सब इस पाषाण खण्ड के द्वारा शतायुष्य हों ।४। जैसे दिन जाते और आते हैं, वैसे ही ऋतु भी जाती और आती हैं। जैसे पूर्वजन्मा पुरुषों के रहते पुत्र-आदि नहीं मरते वैसे ही हे विधाता ! हमारी आयु को अकाल में ही क्षीण न होने दो ।५। (२६)

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ।।६
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ।।७
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ।।८
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ।।९

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदायुवतिर्दक्षिणावतएषा त्वापातुनिर्ऋतेरुपस्थात् ।।१०।२७

हे मृतक के पुत्रादि सम्बन्धियो ! तुम अपनी आयु में स्थित रहते हुए वृद्धि को प्राप्त होओ। बड़े के पश्चात् छोटे भ्राता के क्रम से कार्यों में लगो। हे त्वष्टादेव ! तुम श्रेष्ठ जन्म वाले हो तुम इन मनुष्यों की दीर्घायु करो।६। यह सुन्दर पति वाली सधवा नारियाँ घृतयुक्त काजल लगाती हुई अपने गृह को प्राप्त हों। यह नारियाँ आंसुओं को त्याग कर, मनोविकार को दूर करती हुई सुन्दर ऐश्वर्य वाली होकर सबसे आगे चलती हुई अपने घरों को प्राप्त हों।७। हे मृतक की पत्नी ! तुम्हारा यह पति मृत्यु को प्राप्त हो चुका है, अब तुम इसके पास व्यर्थ बैठी हो। अपने पुत्रादि और घर का विचार करती हुई उठो। तुम इस पति के साथ गर्भ धारण आदि स्त्री कर्तव्य को पूर्ण कर चुकी हो और तुम इसके प्राण के चले जाने की बात भी जानती हो, अत. घर को लौटो।८। मृतक के हाथ के धनुष को ग्रहण करता हुआ मैं सन्तान आदि की रक्षा, तेज और बल के लिये करता हूं। हम बीर सन्तानों से सम्पन्न हों और अपने अहङ्कारी बैरियों को पराजित करने वाले हों। हे मृतक ! तुम यहाँ ही रहो।९। हे मृतक ! यह पृथिवी तुम्हारे लिये माता के समान है, अतः तुम इसी सुख देने वाली, महिमावती पृथिवी के अङ्क में पहुँचो। यह तुम्हारे लिये कोमल स्पर्श वाली बने। तुमने जो यज्ञादि उत्तम कर्म किये हैं, उनके फलरूप यह पृथिवी तुम्हारी हर प्रकार से रक्षा करे।१०।(२७)

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूमऊर्णुहि ।।११
उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ।।१२
उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोग निदधन्मो अहरिषम् ।

एतां स्थूणां पितरो धारयन्तुतेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३
प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जप्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४।२८

हे पृथिवी ! मृतक को संताप से बचाने के लिये ऊँचा करो । तुम इसकी परिचर्या करने वाली बनो । जैसे माता अपने पुत्र को ढकती है, वैसे ही इन कङ्काल रूप मृतक को तुम अपने तेज से ढक दो ।११। पृथिवी स्तूप के आकार में होकर इस मृतक के ऊपर आच्छादन करे । वह अपने हजारों धूलिकणों को इस पर डाल दें । वह पृथिवी घृत से सम्पन्न के समान इसको आश्रय देने वाली होकर इसे सुख दे ।१२। हे कङ्काल ! पृथिवी को उत्तम्भित करके तुम्हारे ऊपर रखता हूँ और तुहमारे ऊपर लोष्ट्र रखता हूं जिससे मिट्टी आदि के कर्ण तुम्हें क्लेश न पहुँचावें । यह खूँटी पितरगण धारण करें और पितरों के स्वामी यम तुम्हें यहाँ निवास दें ।१३। हे प्रजापते ! वाण के मूल में जैसे पंख लगाये जाते हैं, वैसे ही मुझे संकुसुक ऋषि को सब देवताओं ने संवत्सर रूप दिवस में प्रतिष्ठित किया है । जैसे लगाम से घोड़े को नियन्त्रित रखते हैं, वैसे ही तुम मेरी स्तुति को नियन्त्रित रखो ।१४। (२८)

॥ षष्ट अध्याय समाप्त ॥

सूक्त १६

(ऋषि.—मथियो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः ।
देवता-आपो गावो वा, अग्नीषोमौ । छन्दः-अनुष्टुप् गायत्री)

नि वर्तध्वं मानु गातास्मास्न्त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥१
पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥२
पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।

इहैवाग्ने निधारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥३
यन्नियानं न्ययधं संज्ञानं यत्परायणम्।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥४
य उदाड् व्ययनं य उदानट् परायणम्।
आवर्तनं निवर्त्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ॥५
आ निर्वत नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि।
चीवाभिभुं नजामहै ॥६
परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजंतु नः ॥७
आ निवर्तन वर्तय नितत वर्तय।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ॥८।१

हे गौओ ! तुम हमको छोड़ कर अन्य किसी के पास मत जाओ। तुम अन्न-धन से सम्पन्न हों अतः दूध प्रदान द्वारा हमारी सेवा करो। हे अग्ने ! तुम बारम्बार धन प्रदान करने वाले हो, अतः तुम और सोम हमको धन प्रदान करो।१। हे यजमान ! इन गौओं को बारम्बार हमारे अभिमुख करो। फिर इन पर अधिकार करो। इन्द्र इन गौओं को तुम्हारे यहाँ करने वाली करें और अग्नि देवता इन्हें दूध देने वाली बनावें।२। मेरे वश में रहने वाली यह गौऐं बारम्बार मेरे अभिमुख हों। हे अग्ने ! तुम इन्हें मेरे पास रहने वाली करो। यह यहाँ रहती हुई पुष्टि को प्राप्त हों।३। मैं गौओं से सम्पन्न गोष्ठ की स्तुति करता हूं। गौओं के घर लौट कर आने और सबके एकत्रित होने की कामना करता हूं। वे गौऐं चरने जाँय और लौट कर घर आवें। गौओं के चराने वाले ग्वाले की भी स्तुति करता हूं।४। गौओं के चराने वाला जो ग्वाला गौओं को ढूँढ़ कर घर पर ले आता है, वह गौओं को चरा कर सकुशल घर को लौट आवे।५। हे इन्द्र तुम हमारा पक्ष लो। हमें गौऐं प्रदान करते हुए उन्हें हमारी

ओर प्रेरित करो । यह गौऐं दीर्घ आयु वाली हों और हम इनके दूध का उपयोग करें ।६। हे यज्ञ के पात्र देवताओ ! मैं घृत, अन्न और दुग्धादि से युक्त हव्य तुम्हें अर्पित करता हूं । तुम मुझे गवादि धन प्रदान करो ।७। हे गौओं के चराने वाले पुरुष ! इन गौओं को मेरे पास लाओ इन गौओं को यहाँ लौटा लाओ । हे गौओ ! तुम भी इधर लौट आओ मैं कहाँ से लौटा लाऊँ ? हम कहाँ से लौटें ? सब दिशाओं से गौओं को लौटा लाओ । हे गौओं ! तुम भी सब दिशाओं से लौट कर यहाँ आओ ।८। (१)

सूक्त २०

(ऋषि—विमन ऐन्द्रः प्रजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रा । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् गायत्री)

भद्रं नो अपि वातय मनः ।।१
अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धमन्त्स्व रेनीः सपयन्ति मातुरूधः ।।२
यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ।।३
अर्यो विशां गातुरेति प्रयदानड् दिवो अन्तान् ।
कविरभ्रं दीद्यानः ।।४
जुषद्धव्यामानुषस्योर्ध्वस्थावृभ्वायज्ञे । मिन्वन्त्सद्म पुर एति ।।५
सहि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।
अग्निं देवा वाशीमन्तम् ।।६।२

हे अग्ने ! हमारे मन को सुन्दर करो ।१। मैं अग्नि की स्तुति करता हूं । वह अग्नि हवि—वाहक देवताओं में कनिष्ठ, तरुणतम, दुर्धर्ष और सब सखा हैं । यह दुग्ध देने वाली गौ के थन आश्रित रह कर प्राणवान् होते हैं ।२। यह अग्नि कर्म के आश्रय रूप एवं ज्वालामय हैं । मेधावी जन इन्हें स्तुतियों से बढ़ाते हैं और अग्नि भी स्तुति करने वालों की कामना पूर्ण करते हैं ।३। यजमानों के आश्रय के योग्य अग्नि दीप्त

होकर जब अपनी ज्वालाओं की उन्नति करते हैं, तब वे आकाश और मेघ को भी व्याप्त करते हैं, ।४। अग्निदेव अनेक ज्वालाओं वाले होकर यजमान के यज्ञ में हवि सेवन करते हुए उन्नत होते हैं और उत्तरवेदी को पार करते हुए अभिमुख होते हैं ।५। अग्नि ही यज्ञ हैं, वही पुरोडाशादि है। यह देवताओं का आह्वान करने वाले और सबके पालक हैं ।६। (२)

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः ।।७
नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः ।
अग्निं हविषा वर्धन्तः ।।८
कृष्णा, श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ।।९
इवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ।।१०।।३

जो अग्नि-देवता पाषाणों के घर्षण से उत्पन्न होने के कारण पाषाण पुत्र कहाते हैं, जो यज्ञ को धारण करके देवताओं का आह्वान करते हैं, मैं उन अग्नि की श्रेष्ठ ऐश्वर्यमय सुख की प्राप्त के लिए पूजा करता हूँ ।७। हमारे जो पुत्र-पौत्रादि पुरोडाश आदि से अग्नि को प्रवृद्ध करते हैं, वे उपभोग्य पशु आदि वाले धन में प्रतिष्ठित होंगे ।८। कृष्ण वर्ण और शुभ्र वर्ण वाला जो रथ अग्नि के गमन के लिए है वह लोहित वर्ण मिश्रित, सरलता से गमनशील और श्रेष्ठ यश वाला है। विधाता ने उसे स्वर्ण समान देदीप्यमान वर्ण देते हुए रचा है ।९। हे अग्ने ! तुम वनस्पतियों के भी पुत्र कहाते हो, क्योंकि समिधाओं द्वारा तुम्हारी उत्पत्ति है। तुम अविनाशी ऐश्वर्य के स्वामी हो। यह स्तोत्र श्रेष्ठ ज्ञान की कामना वाले विमद ऋषि ने रचे हैं। अतः इन स्तुतियों को स्वीकार करते हुए तुम मुझ विमद को सुन्दर निवास, श्रेष्ठ बल और पालन के योग्य अन्न आदि प्रदान करो ।१०। [३]

सूक्त २१

(ऋषि—विमद ऐन्द्र । प्राजापत्यो वा वासुकः । देवता—
अग्निः । छन्दः–पंक्तिः)

आग्नि न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो ग्रदे शीरं पावशोचिषं विवक्षसे ॥१
त्वामु के स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी विवो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२
त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूहाण्यर्जुना विवोमदेविश्वाअधिश्रियोधिषेविवक्षसे ॥३
यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्यं ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४
अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतोविवस्वतोविवोमदे प्रियो यमस्स्य काम्तो विवक्षसे ॥५।६

हम अपने स्वरचित स्तोत्र से देवताओं का आह्वान करने वाले अग्नि को अपने यज्ञ में वरण करते हैं। हे अग्ने ! तुम अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं को विमद के यज्ञ में प्रदीप्त करो ।१। हे अग्ने ! तुम्हें धन से सम्पन्न यजमान प्रतिष्ठित करते हैं । सरल गति वाली क्षरणशील हवि तुम्हारी ओर गमन करती है, क्योंकि तुम अत्यन्त महिमा वाले हो ।२। हे अग्ने ! यज्ञ का सम्पादन करने वाला ऋत्विज् जैसे जल से पृथिवी को सींचता है, वैसे ही हवन पात्रों द्वारा तुम्हें सीचते हैं। तुम ज्वाला रूपी कृष्णादि वर्ण वाली भाषा वाले होकर देवताओं को हर्ष देने वाले होते हो, क्योंकि तुम महान् हो ।३। हे अग्ने ! तुम बलवान् और अविनाशी हो । तुम जिस ऐश्वर्य को श्रेष्ठ मानते हो, अन्नादि युक्त अद्भुत ऐश्वर्य हमारे लिए लाओ । हे महान् अग्ने ! तुम सब देवताओं को अपने उस धन से तृप्त कराने वाले होओ ।४। इन अग्नि को अथवा ऋषि ने प्रकट किया था । यह अग्नि सब प्रकार के

स्तोत्रों के ज्ञाता हैं। हे अग्ने ! देवताओं का आह्वान करने के लिए तुम यजमान के लिए दौत्य कर्म करते हो। हे महान् अग्ने ! यजमान तुम्हारी कामना करते हैं।५।

त्वाँ यज्ञेष्वीलतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे।
त्वं वसूनि काम्या विवोमदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥६
त्वा यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिर।
घृतप्रतीक भनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥७
अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत्।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥८॥६

हे अग्ने ! तुम महान् हो, क्योंकि हवि देने वाले विमद को सब प्रकार का धन प्रदान करते हो, यज्ञ का आरम्भ होने पर ऋत्विज और यजमान सब तुम्हारी स्तुति करते हैं।६। हे अग्ने ! तुम महान् हो। तुम्हारे व्यापक तेज से प्रवाहित हुए यजमान अपने यज्ञ में विधिपूर्वक तुम्हारी स्थारना करते हैं। तुम आहुतियों के योग्य मुख वाले और प्रकाश से पूर्ण हो।७। हे महान् अग्ने ! तुम अपने महिमायुक्त तेज के द्वारा ही विख्यात हो। युद्ध-काल में तुम अहंकारी बैल के समान शब्द करने वाले हो। तुम औषधियों में बीज डालते हो और सोम आदि का मद प्राप्त होने पर प्रवृद्ध हो जाते हो।८। (५)

सूक्त २२

(ऋषि—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

कुह श्रुत इन्द्र कस्मिन्नद्य जने मित्रो श्रूयते।
ऋषीणाँ वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥१
इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥२

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तू तुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ।।३
युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वन ।।४
त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
मर्त्योर्देवो न मर्त्यो यन्ता नक्रिर्विदाय्यः ।।५।६

आज इन्द्र कहाँ हैं ? वे किस व्यक्ति को मित्र मानकर रमे हैं ? किस ऋषि के आश्रम में अथवा कौन-सी गुफा में उनकी ही स्तुति कर रहे हैं क्योंकि वे वज्रधारी इन्द्र स्तुतियों के योग्य हैं । वे स्तोता के मित्र होने वाले इन्द्र स्तुति करने वाले की विशेष प्रकार से प्रशंसा करते हैं ।२। बल के स्वामी इन्द्र स्तुति करने वालों को महान् ऐश्वर्य देने वाले हैं । वे अनन्त बल वाले, शत्रुओं के धर्षक और वज्र के धारण-कर्त्ता हैं । वे इन्द्र पिता द्वारा पुत्र की रक्षा करने के समान ही हमारी रक्षा करने वाले हों ।३। हे वज्रिन् ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो और वायु की गति वाले अपने अश्वों को सरल मार्ग पर चलने वाले हों । तुम उन घोड़ों को रथ में योजित कर रण-क्षेत्र में सदा स्तुत होते हो ।४। हे इन्द्र ! तुम अपने सरलगामी, वायु के वेग के समान रथ में योजित अश्वों को चलाते हुए हमारे समान आते हो तुम्हारे इन अश्वों को अन्य कोई देवता नहीं चला सकता और इन अत्यन्त बलवान् अश्वों के बल को भी कोई नहीं जानते ।५। (६)

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ।।६
आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ।।७
अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।

त्वं तस्या मित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ।।८
त्वं न इन्द्र शूर शूरै रुत त्वीतासो वर्हणाः ।
पुरत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ।।९
त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नृन्कापाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्र शवसाम् ।।१०।७

इन्द्राग्ने ! तुम्हारे अपने धाम को लौटाने के समय उशना ने तुम से बातें कीं । तुम इतनी दूर से हमारे यहाँ क्यों आए हो ? तुम आकाश से पृथिवी लोक में स्थित मेरे घर केवल अपनी कृपा के लिए ही पधारे हो ।६। हे इन्द्र ! हमने यह यज्ञ सामग्री संजोई है । तुम अपने तृप्त होने तक इसका सेवन करो । हम भी तुमसे अन्न की याचना करते हैं । हमारा यह अन्न नष्ट न हो । जिस बल से राक्षस नष्ट हो सकें वह बल भी हमें प्रदान करो ।७। हमारे सब ओर यज्ञ-विमुख राक्षस रहते हैं । वे वेदोक्त कर्मों को नहीं मानते । अतः हे शत्रुओं का नाश करने वाले इन्द्र ! इन असुरों को नष्ट कर डालो ।८। हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा पाकर हम शत्रुओं को मारने में समर्थ हों । तुम मरुद्गण के सहित हमारी रक्षा करो । जैसे सेवक अपने स्वामी को लपेटते हैं, वैसे तुम्हारे प्रदत्त धन स्तुति करने वालों को लपेटते हैं ।९। हे वज्रिन् ! मरुद्गण प्रसिद्ध हैं तुम जब स्तोताओं के श्रेष्ठ स्तोत्रों को श्रवण करते हो, तब उन मरुद्गण को वृत्र का नाश करने की प्रेरणा देते हो ।१०।
७)

मक्षूता त इन्द दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जात बिश्वं सयावभिः ।।११
माकुध्र्यगिन्द्र शर वस्यीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयतयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ।।१२
अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ।।१३

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षा शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४
पिबपिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥८

हे वज्रिन् ! रणक्षेत्र में तुम विकराल कर्म करने वाले होते हो । मरुद्गण को साथ लेकर तुमने शुष्ण का समूल नाश किया । प्रसन्न होने पर तुम सदा दानशील होते हो ।११। हे इन्द्र ! हमारी आशाऐं नष्ट न हों । हे वज्रिन् ! हमारी कामनाऐं फलकर मंगलकारिणी हों ।१२। हे इन्द्र ! तुम हमारी हिंसा करने वाले न होओ । तुम्हारी कृपा हम पर बनी रहे । जैसे गौ का दूध भोगने योग्य होता है, वैसे ही तुम्हारे दिए फलों को हम भोगें ।१३। हाथ पाँवों से रहित यह पृथिवी देवताओं के कर्म से ही विस्तीर्ण हुई है । हे इन्द्र ! तुमने इस पृथिवी की परिक्रमा करके ही शुष्ण को मारा था ।१४। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! इस सोम-रस को शीघ्र पीओ । तुम इसके द्वारा बली होकर हमें हिंसित न करना हे इन्द्र ! स्तुति करने वाले यजमान की रक्षा करते हुए उसे अत्यन्त धनवान् बनाओ ।१५।   (८)

सूक्त २३

(ऋषि—विमद इन्द्रः प्राजापत्यो: वा वसुकृष्टा वासुक्रः । देवता—इन्द्र
छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणं रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्रश्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधपा ॥१
हरीन्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव ।
क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् ॥२
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथ हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥३

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥४
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिद य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५
स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पूरतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न करामहे ॥२
माकिन एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्माहि ते प्रमति देव जामिवदस्मे तेसन्तु सख्या शिवानि ॥७।६

अपने हर्यश्वों को रथ में योजित करने वाले इन्द्र दक्षिण हस्त में वज्र धारण करते हैं। ऐसे इन्द्र की हम पूजा करते हैं। वे सोम पान के पश्चात् अपनी मूछों को हिलाते हुए विस्तृत आयुधों के सहित शत्रु-नाश के लिए प्रकट होते हैं।१। श्रेष्ठ तृष्ण सेवन करने वाले अपने दोनों अश्वों को लेकर इन्द्र ने वृत्र का हनन कर डाला। यह इन्द्र अत्यन्त बली भयंकर तेजस्वी और धन के स्वामी हैं। उनकी सहायता से मैं राक्षसों का नाम मिटा देने तक का इच्छुक हूं।२। इन्द्र जब अपने तेजस्वी वज्र को उठाते हैं, तब वे अपने उसी रथ पर आरूढ़ होकर गमन करते हैं, जिसे हरे रङ्ग वाले दो द्रुतगामी अश्व वहन करते हैं। वह इन्द्र सबके द्वारा छाने हुए श्रेष्ठ अन्नों और धनों के स्वामी है।३। जैसे वर्षा के जल से पशु भीगते हैं, वैसे ही हरे सोम के रस से इन्द्र अपनी मूछों को भिगोते हैं। फिर वे श्रेष्ठ यज्ञ स्थान में पहुँच कर प्रस्तुत मधुर सोम का पान करते हैं और जैसे वायु जंगल के वृक्षों को हिलाते हैं, वैसे ही यह अपनी मूँछ-दाढ़ी को हिलाते हैं।४। विभिन्न प्रकार के उत्तेजनात्मक वाक्यों को बोलने वाले शत्रुओं को इन्द्र अपनी ललकार से चुप किया और उन हजारों शत्रुओं को मार डाला। पिता जैसे अन्न से पुत्र को पुष्ट करता है वैसे ही इन्द्र सब मनुष्यों का पोषण करते हैं। हम इन्द्र के इन सब कर्मों का कीर्तन करते हैं।५। हे इन्द्र! तुमको

अत्यन्त श्रेष्ठ मानकर ही यह विस्तृत स्तोत्र विमद ऋषियों द्वारा रचा गया है। हम तुम्हारी स्तुतियों के साधन को जानते हैं। जैसे भोजन का लोभ दिलाकर चरवाहा गौ को अपने पास बुलाता है, उसी प्रकार हम भी इन्द्र को आहूत करते हैं। ६। हे इन्द्र! विमद से तुमने जो सख्यभाव स्थापित किया है, उसे शिथिल मत होने देना। जैसे भाई बहिन समान मन वाले होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा मन हमारी ओर हो और हमारा बन्धुभाव सदैव बना रहे ॥७॥ (९)

सूक्त २४

(ऋषि— विमद इन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः। देवता—इन्द्रः, अश्विनौ। छन्द—पंक्तिः अनुष्टुप्)

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम्।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे
सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥१
त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं
नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥२
यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता।
इन्द्र स्तोतॄणामविता नि वो मदे
द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३
युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम्।
विमदेन यदीलिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४
विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः।
नासत्यावब्रुवन्देवाः पुनरा वहतादिति ॥५
मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम्।

ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ।।६।१०

यह मधुर सोम अभिषवण फलकों पर पीसा गया है । हे इन्द्र ! यह तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है । इसे ग्रहण करते हुए हमको सहस्रों धन प्रदान करो । तुम महान् हो । १ । हे इन्द्र ! हम तुम्हारा हव्यादि के द्वारा आह्वान करते हैं । तुम हमारे सब कर्मों के स्वामी हो । तुम हमको अत्यन्त श्रेष्ठ ऐश्वर्य दो क्योंकि मुझ विमद के लिए तुम महिमावान् हो । २ । हे इन्द्र ! तुम पूजक को सेवक की प्रेरणा करते हो । तुम विभिन्न काम्य पदार्थों के ईश्वर हो । हे स्तुति करने वालों के रक्षक इन्द्र ! हमें शत्रु से और पाप से मुक्त करो । ३ । हे अश्विद्वय ! तुम विचित्र कर्म वाले और यथार्थ रूपों वाले हो । जब विमद ने तुम्हारा स्तोत्र किया था, दोनों काष्ठों को एकत्र कर उनके घर्षण द्वारा तुम्हें प्रकट किया । ४ । हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम्हारे हाथों में स्थित दोनों अरणियां अग्नि की चिन्गारी छोड़ने लगीं, तब सभी देवताओं ने उन्हें बारम्बार ऐसा करने को कहा । ५ । हे अश्विनीकुमारो ! मैं शुभ समय में यात्रा करूँ । लौट कर आऊँ तब भी मधुर समय हो । तुम दिव्य शक्तियों से सम्पन्न हो अतः हमको हर प्रकार सुखी करो ।।६।।

सूक्त २५

(ऋषिः—विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वयुकृद्वा वासुक्रः । देवता—सोमः । छन्द—पंक्तिः)

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधाते सख्ये अन्धसो विवोमदेरन्णवोनयवसे विवक्षसे ।।१
हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ।।२
उत व्रतानि सोम प्राह मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सुनवे विवो मदे मृला नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ।।३

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासीऽवताँ इव ।
क्रतुं नःसोमजीवसेविवसे वि वो मदेधारयाचमसाइवविक्षसे ॥४
तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसोवि वोमदेव्रजंगोमन्तमश्विनंविवक्षसे ॥५।११

हे सोम ! हमारे मन को श्रेष्ठ कर्मों में निपुणता प्राप्त करने वाला बनाओ । गौऐं जैसे तृण की कामना करती हैं, वैसे ही स्तोता अन्न की कामना करते हैं । तुम विमद् ऋषि के निमित्त महान् गुण वाले होओ । १ । हे सोम ! अपने स्तोत्रों से तुम्हारे मन को आकर्षित करने वाले स्तोता चारों ओर बैठते हैं, तब धन प्राप्ति की अभिलाषा होती है । तुम विमद् के लिए महान् होओ । २ । हे सोम ! मैं अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से तुम्हारे कार्य के विस्तार को जानता हूँ । जैसे पिता पुत्र को चाहता है, वैसे ही तुम हमको चाहने वाले होओ । हे महान् सोम ! मुझ विमद् के लिये तुम सुख देने के लिये शत्रु संहारक बनो । ३ । जैसे घड़े के द्वारा कुएँ से जल निकाला जाता है, वैसे ही हमारे स्तोत्र तुम्हें पात्र से निकालते हैं । जैसे प्यासा मनुष्य नदी के किनारे से पात्र को जल पूर्ण करता है, वैसे ही तुम हमको पूर्ण करो । हे महान् सोम ! तुम हमारी जीवन-रक्षा के लिए इस यज्ञ को पूर्ण करो । ४ । विभिन्न फलों की कामना करने वाले मनुष्यों ने अनेक कर्म करके हे सोम ! तुम्हें सन्तुष्ट किया है अतः तुम गौ और घोड़ों से सम्पन्न पशुशाला प्रदान करो । तुम महान् कर्म वाले और मेधावी हो ॥५॥　　　　(११)

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वासम्पश्यन्भुवनाविवक्षसे ॥६
त्वं नः सोम विश्वतो अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्निधो वि वो मदे मानो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥७
त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदेद्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८

त्व नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्थेन्द्रो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो युध्यमानास्तोकसातौविवक्षसे ॥९

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विक्षसे ॥१०

अयं विप्राय दाशुषे वाजां इयर्ति गोमतः ।
अयंसप्तभ्यआवरंन्विवोमदेप्रान्धं श्रोणचतारिषद्विवक्षसे ॥११।१२

हे सोम ! हमारे शत्रुओं और सुसज्जित घरों की रक्षा करो । विभिन्न रूपों में स्थिति सब लोकों की रक्षा करो । तुम सब लोकों को देखते हुए हमारे लिये जीवन लेकर आते हो । तुम मुझ विमद् के लिए महान् हो । ६ । हे दुर्घर्ष सोम ! हमारी रक्षा करो । हमारे शत्रुओं को दूर भगा दो, हे विमद् के लिये महान् गुण वाले सोम ! हमारे निन्दक अपने दुष्कर्म में सफल न हो पावें । ७ । हे श्रेष्ठ कर्म वाले सोम ! तुम धन्य-दान के लिए सावधान रहने वाले हो । तुम्हारे समान हमको भूमि दान करने वाला कोई दाता नहीं है । हे महान् ! तुम हमारी पापों से रक्षा करो । और शत्रुओं के हाथ से भी हमें बचाओ । ८ । विकराल युद्ध उपस्थित होने पर अपनी प्रजाओं का भी बलिदान करना पड़ जाता है । हे सोम ! जब हमें सब ओर से युद्ध के लिये चुनौती दी जाती है, तब तुम इन्द्र की सहायता करते हुए उनकी रक्षा करते हो । तुम्हारी समता कोई नहीं कर सकता । ९ । हर्षप्रदायक सोम इन्द्र को तृप्त करते हैं । वे सब कार्यों को शीघ्रता से करने वाले हैं । उन्होंने कक्षीवान् की बुद्धि को तीव्र किया था । हे सोम ! मुझ विमद ऋषि के लिए तुम महान् हो । १० । हवि देने वाले यजमान को सोम पशुओं से युक्त धन प्रदान करते हैं और सप्त होताओं को भी उत्कृष्ट धन देते हैं । इन्होंने लुंज परावृज ऋषि को पाँव और नेत्र-हीन दर्घतमा ऋषि को चक्षु प्रदान किये थे । हे सोम ! तुम महान् हो ।११॥

सूक्त २६

(ऋषि—विमद इन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्धा वासुक्रः।
देवता—पूषा । छन्द—उष्णक् अनुष्टुप्)

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥१
यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः।
विप्र अ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥२
स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा।
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥३
मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन्।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥४
प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम्।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥५॥१३

इन अत्यन्त श्रेष्ठ स्तोत्रों को पूषा देवता के निमित्त किया जाता है। वे सदा रथ में अश्व योजित करते हुए आते हैं। वे यजमान और उसकी भार्या की रक्षा करें। १। उन मेधावी पूषा के स्थान में जो जल-राशि है, उसे वे यज्ञ के द्वारा पृथिवी पर बरसावें। वे पूषा देवता यजमान की स्तुतियों को ध्यान से सुनते हैं। २। यह श्रेष्ठ स्तोत्रों के श्रवण करने वाले पूषा सोम के रस को सींचते हैं। वे जल वृष्टि करने वाले सूर्य हमारे गोष्ठ में भी जल-वृष्टि करते हैं। ३। हे पूषा देवता, तुम हमारे स्तोत्र को तीक्ष्ण करो। हम तुम्हारा ध्यान करते हुए सेवा में लगे रहते हैं। ४। यज्ञ के आधे भाग को पूषा प्राप्त करते हैं। वे रथ में अश्व योजित कर चलते हैं। वे मनुष्यों के हितैषी और मेधावी मित्र तथा पशुओं के भगाने वाले हैं ॥५॥ (१०)

आधीषमाणायाः पति शुचायाश्च शुचस्य च।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनाँ सखा ।
प्रश्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥७
आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥८
अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां बृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥६।१४

यह सूर्य देवता सब पशुओं के स्वामी हैं। भेड़ की ऊन के वस्त्र को वही बुनते और वही धोते हैं। ६। सूर्य सबको पुष्टि देने वाले अन्न के स्वामी हैं। वे सुन्दर और तेजोमय रूप वाले पूषा अपने कर्म में मूँछ-दाढ़ी को हिलाते हुए चलते हैं। ७। हे पूषन्! तुम्हारे रथ के धुरे को छाग वहन करते हैं। तुम अत्यन्त प्राचीन काल में उत्पन्न हुए हो। सभी कामना वाले उपासकों को तुम सिद्ध करते हो। ८। हमारे रथ की पूषा अपने बल से रक्षा करें। वे हमारे आह्वान को सुनें और अन्न को बढ़ावें ॥६॥ १४)

सूक्त २७

(ऋषि—वसुक्र ऐन्द्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्)

असत्सु मे जरितः सभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥१
यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा शुशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२
नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३
यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह ॥४

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५॥१५

(इन्द्र) हे स्तोता ! मैं सोम योग करने वाले यजमान की कामना पूर्ण करने वाला हूं । जो सत्य का पालन नहीं करता और यज्ञ में हवि आदि नहीं देता, उसे मैं नष्ट कर देता हूं । मैं दुष्कर्मी पापी को भी मिटा देता हूँ । १ । (ऋषि) हे इन्द्र ! देवताओं का अनुष्ठान न कर अपने ही उदर को भरने वाले पापियों से मैं युद्ध करूँगा । उस समय हवि देकर मैं तुम्हें तृप्त करूँगा । मैं नित्य प्रति पक्ष के पन्द्रहों दिन तुम्हारे लिए सोम-रस अर्पित करता हूं । २ । (इन्द्र) ऐसा कहने वाला मैंने कोई नहीं देखा जिससे देवताओं के विरोधी और कर्मों से शून्य मनुष्यों को मारने की बात कही हो । दुष्ट मनुष्यों को जब मैं लड़कर मारता हूँ तब मेरे उस वीर-कर्म का सब कीर्तन करते हैं । ३ । जब मैं अकस्मात् रणक्षेत्र में जाता हूं तब सभी ऋषि मेरे चारों ओर रहते हैं । मैं मनुष्यों के कल्याण के निमित्त ऐ॰ शत्रुओं को हराता हूं और उसके पांव पकड़ कर शिला पर पछाड़ता हूँ । ४ । रणक्षेत्र में मुझे कोई रोक नहीं सकता । विशाल पर्वत भी मेरे कार्य में बाधक नहीं हो सकते । जब में शब्द करता हूं तब बहरे भी कांप जाते हैं । मेरे शब्द के भय से रश्मियों के स्वामी सूर्य भी कम्पित हो जाते हैं ।५।   (१५)

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६
अभूर्वौक्षीर्व्यु आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७
गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥८
सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥९

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य विभजानि वेदः ।।१०।।१०

जो मुझ इन्द्र के शासन को स्वीकार नहीं करते और देवताओं के पीने योग्य सोम-रस को स्वयं पी लेते हैं तथा जो भुजा चढ़ा कर मारने को आते हैं, मैं उन सब कर्मों का द्रष्टा हूं। मैं अपने निन्दकों पर वज्र-प्रहार करता हूँ और उपासक का मित्र हो जाता हूं। ३। (ऋषि) हे इन्द्र ! तुम सतजीवो हो। तुमने जल-वृष्टि को और दर्शन दिया। प्राचीन काल से तथा अब भी तुम शत्रु-हन्ता होते हो। सम्पूर्ण जगत् से भी तुम बढ़े हुए हो। आकाश-पृथिवी भी तुम्हारा परिमाण करने में समर्थ नहीं हैं। ७। (इन्द्र) मैं इन्द्र हूँ। स्वामी के समान इन गौओं का पालन करता हूँ। अनेक गौएँ जो भक्षण कर रही हैं। चराने वाले ग्वाले चराते हैं। उसके द्वारा बुलाये जाने पर वे सब एकत्र हो जाती हैं। जब वह अपने स्वामी के पास पहुंचती हैं तब उनके दुग्ध का दोहन किया जाता है। ८। (ऋषि) विश्व में अन्न, जो, तृणादि खाने वाले हम हैं। हृदयाकाश में विराजमान ब्रह्म मैं ही हूँ। यह इन्द्र अपने उपासक पर प्रीति करते हैं। जो योग से रहित और अत्यन्त भोगी हैं, उन्हें भी वे श्रेष्ठ मार्ग पर चलाने का यत्न करते हैं। ९। (इन्द्र) मैंने जो कुछ यहाँ कहा है, वह यथार्थ है। मैं सब मनुष्यों और पशुओं का जन्म दाता हूं। जो पुरुष अपने वीरों को स्त्रियों से युद्ध करने को प्रेरित करता है, बिना संग्राम किये ही उस पापी के ऐश्वर्य को छीन कर अपने उपासकों को प्रदान कर देता हूँ।१०। (१६)

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वां अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य इं वहाते य ईं वा वरेयात् ।।११
कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ।।१२
पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।

आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणान्ति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥१३
बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहितीं मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४
सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात्स्थिविमन्तआयन्दशप्राक्सानुवितिरन्त्तश्नः ॥१५।१७

किसी की भी नेत्रहीन कन्या का आश्रयदाता कौन होगा ? उसे वरण करने तथा वहन करने वाले को कौन मारेगा ? । ११ । कुछ स्त्रियां द्रव्य से ही पुरुष के वशीभूत हो जाती हैं। परन्तु जो स्त्रियाँ सुशील, स्वस्थ और श्रेष्ठ मन वाली हैं, वे इच्छानुकूल पुरुष को पति-रूप में वरण करती हैं। १२ । रश्मियों के द्वारा ही सूर्य अपने प्रकाश को फैलाते हैं और अपने मंडल में स्थित प्रकाश को स्वयं ही समेट लेते हैं । वे अपनी आच्छादन करने वाली रश्मियों को मनुष्यों के मस्तक पर डालते हैं। ऊपर स्थित रहते हुए ही वे अपने प्रकाश को पृथिवी पर विस्तृत करते हैं। १३ । जैसे बिना पत्र के शुष्क पेड़ छाया करने वाले नहीं होते, वैसे ही इन सूर्य की भी छाया नहीं पड़ती। आकाशरूप माता ने कहा कि सूर्य के रूप वाला यह बालक अलग होकर दूध पीता है । यह आकाश-रूपिणी गौ ने अदिति रूपिणी अन्य· माता के वत्स को प्रेम से चाट कर दृढ़ किया। इस गौ के थन कहाँ रहते हैं ? । १४ । इन्द्र रूप प्रजापति ने ही विश्वामित्र आदि सात ऋषियों को रचा । उनके ही शरीर से बालखिल्य आदि आठ उत्पन्न हुए, फिर भृगु आदि नौ हो गये । अङ्गिरा आदि को मिलाकर दस उत्पन्न हुए : यह यज्ञ भाग का सेवन करने वाले, आकाश के उन्नत प्रदेश को बढ़ाने लगे ।१५। (१७)

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्त तुषयन्तो बिभर्ति ॥१६
पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्वन्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥१७

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्रवन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥१८
अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगाजनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९
ऐतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नयशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥१८

दशों अङ्गिराओं में एक कपिल हैं, वे यज्ञ साधन की प्रेरणा पाकर कर्म में लगे । सन्तुष्ट माता ने तब जल में बीज बोया । १६ । प्रजापति के पुत्र अङ्गिराओं ने स्थूल मेष को प्राप्त किया । द्यूत के स्थान में पाश डाले गये । दो विकराल मनुषों को लेकर मन्त्रों के द्वारा अपने देह को पवित्र कर जल में घूमने लगे । १७ । यह अङ्गिरागण प्रजापति द्वारा उत्पन्न किये गए । इनमें से अर्द्ध संख्यक प्रजापति के निमित्त हव्य पकाते हैं और अर्द्ध संख्यक नहीं पकाते । काष्ठरूप अन्न और घृत रूप ओदन ग्रहण करने वाले अग्नि प्रजापति की कामना करते हैं, यह सूर्य का कथन है । १८ । अपने द्वारा बनाए गये आहार से प्राण धारण करने वाले अनेक व्यक्ति दूर से आते देखे जाते हैं । उनके स्वामी दो-दो को मिलाते हैं । वे नवीन अवस्था वाले व्यक्ति अपने शत्रुओं को शीघ्र नष्ट कर डालते है । १९ । मेरे द्वारा योजित इन दो बैलों को मत ललकारो । इन्हें बार-बार पुचकारते हुये गतिमान् करो । इनका घर जल में नाश को प्राप्त होता है । जो वीर गौओं को शिक्षित करता है वह उन्नति शील होता है ।२० ।
(१८)

अयं यो वज्र पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१
वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२
देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।

त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३
सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वःकृणुतेगूहतेबुसंस पादुरस्यनिर्णिजो न मुच्यते ॥२४॥१६

सूर्य मंडल के नीचे यह वज्र वेग से पतित होता है । फिर जो अन्य स्थान हैं, उन्हें स्तोतागण अकस्मात् खोज लेते हैं ।२१। प्रत्येक वृक्ष (वृक्ष की लकड़ी से ही धनुष बनता है) के ऊपर प्रत्यांचारुपिणी गौ शब्द करती हैं तब शत्रु के भक्षण कराने वाले बाण चलते हैं । जगत् उन बाणों से भयभीत होता है और सब मनुष्य और ऋषिगण इन्द्र को सोम-रस प्रदान करते हैं ।२२। जब देवताओं की उत्पत्ति हुई तब मेघ दिखाई पड़े । इन्द्र ने उन मेघों को चीर डाला तब जल निकला । पर्जन्य, सूर्य और वायु उद्भिजों को पकाते और सूर्य तथा वायु दोनों ही जल को धारण करते हैं ।२३। हे ऋषि ! सूर्य तुम्हारे जीवन के लिए आश्रय रूप हैं, अतः यज्ञकाल में तुम सूर्य के गुणों का कीर्तन करते हुए उन्हें नमस्कार करना । क्योंकि यह सूर्य सब प्राणियों और पदार्थों के पवित्र करने वाले हैं । यह अपनी गति को कभी नहीं छोड़ते और यही स्वर्ग लोक का प्रकाश करने वाले हैं ।२४। (२६)

सूक्त २८

(ऋषि—इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः । देवता—
इन्द्रः । छन्द —त्रिष्टुप्)

विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥१
स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वे ष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥२
अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥३

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लापाशः सिंह प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ।।४
कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विदाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ।।५
एवा हि माँ तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृसत उत्तरा धूः ।
पुरु सहस्रा निशिशामिसा क्रमशत्रुं हि माजनिता जजान ।।६।२०

(ऋषि पत्नी) सब देवता हमारे यज्ञ में आगये परन्तु मेरे श्वसुर इन्द्र ही नहीं आये । यदि वे आजाते तो भुने हुए जौ के साथ सोम पान करते और फिर अपने गृह को लौटते ।१। (इन्द्र) हे पुत्रवधू ! मैं तीक्ष्ण सींग वाले बैल के समान शव्द करने वाला हूं और पृथिवी के विस्तृत तथा ऊँचे प्रदेश में वास करता हूं । जो मेरे पान के निमित्त सोम प्रदान करता है, मैं उसकी सदा रक्षा करता हूं ।२। (ऋषि) हे इन्द्र ! जब यजमान अभिषवण फलकों पर शीघ्रता से हर्षकारी सोम को प्रस्तुत करता हैं, तब तुम उसे पीते हो । उस समय अन्न की कामना करते हुए तुम्हें हवि और स्तुति अर्पित की जाती है ।३। हे इन्द्र ! मेरी इच्छा मात्र से ही नदी का जल विपरीत दिशा में प्रवाहित हो, तृण-भक्षक हिरण बाघ को खदेड़ता हुआ उसका पीछा करे और बराह को शृगाल भगादे ।४। हे इन्द्र ! तुम मेधावी और प्राचीन कालीन हो । मैं अल्प बुद्धि वाला निर्बल पुरुष तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूं । परन्तु समय-समय पर तुम्हारे गुणों का कीर्तन सुनकर ही मैं कुछ स्तुति करने लगा हूं ।५। (इन्द्र) स्तोतागण मुझ पुरातन पुरुष इन्द्र की स्तुति करते हुए कहते हैं कि मेरे विस्तृत कार्य स्वर्ग से भी महान् हैं । जन्म से ही मैं इतना बलवान् हूं कि शत्रु मेरा सामना नहीं कर सकते । मैं एक साथ ही हजारों शत्रुओं के बल को क्षीण कर डालता हूं ।६। (२०)

एवा हि मां तवसं जज्ञु रुग्रं कर्मन्कर्भन्वृषणामिन्द्र देवाः ।
वधीं वत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ।।७

देवास आयन्पर शूरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु यवा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥८
शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहंतं चिद्दहते रंधयानि वयद्वत्सो वृषभं शुशुवानः ॥९
सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०
तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११
एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुपनो माहि वाजांदिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥२१

(ऋषि) हे इन्द्र ! मैंने प्रसन्न होकर वज्र से वृत्र विदीर्ण किया और अपने बल से दानशील व्यक्ति को गौओं से सम्पन्न धन प्रदान किया इसीलिये देवगण मुझे तुम्हारे समान ही पुरातन, वीर और काम्य-फल का देने वाला समझते हैं ।७। देवगण मेघ को विदीर्ण करने के लिए गमन करते हैं, तब वे जल को निकालते हुए वृष्टि करते हैं । वह जल श्रेष्ठ नदियों में रहता है । देवता जिस मेघ में जल देखते हैं। उसी को विद्युत् से भस्म करके जल वृद्धि करते हैं ।८। इन्द्र की इच्छा मात्र से आते हुए बाघ का सामना खरगोश कर सकता है । मैं भी उसी की कृपा से एक कङ्कड़ से पर्वत को तोड़ सकता हूं । इन्द्र चाहें तो बछड़ा भी सांड़ का सामना करने लगे और बड़े भी छोटे के अधीन हो जाँय ।९। पिंजड़े में बन्द बाघ जैसे अपने पाँव को रगड़ता है वैसे ही बाजपक्षी ने भी अपने नाखूनों को रगड़ा । जब महिष प्यास से व्याकुल होता है तब इन्द्र की इच्छा हो तो गोह भी उसके लिए पानी लाता है ।१०। यज्ञ के अन्न से जो अपना निर्वाह करते हैं, गोह उनके लिए अकस्मात् जल लाता है । वह इन्द्र सर्वगुण से युक्त सोम का पान करते और शत्रुओं के शारीरिक बल को नष्ट कर डालते है ।१२। जो सोमयोग करके अपने देह का पोषण कर सके हैं वे सुन्दर कर्म वाले पुरुष श्रेष्ठकर्मा कहे जाते

हैं। इन्द्र ! तुम हमारे लिए अन्न लाते हुए श्रेष्ठ वचन कहते हो। इस प्रकार तुम दानवीर भी कहे जाते हो ।२१। (२१)

सूक्त २९

(ऋषि—वसुक्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ।।१
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नृन्कुत्सेन रथो यो असत्सवान् ।।२
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्यु ग्रो वि धाव ।
कद्वाहोअर्वागुप मानमीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ।।३
कदुद्युम्नमिन्द्र त्वावतो नृन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषा ।।४
प्रेरयसूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
निरश्व ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इंद्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ।।५।२२

हे देव ! पक्षी जब डर जाता है तब सब ओर देखता हुआ अपने शिशु को नीड़ में रखता है, उसी प्रकार मैंने अपने हार्दिक भावों को स्तोत्र में रखा है। इस श्रेष्ठ स्तोत्र को मैं तुम्हारे प्रति प्रेरित करता हूं। वे नेताओं में श्रेष्ठ और मनुष्यों का हित करने वाले हैं। मैं उन्हें स्तुतियों द्वारा आहूत करता हूं ।२। हे नेताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ! सभी दिन प्रातःकालों में तुम्हारा स्तोत्र करने वाले हम श्रेष्ठ हों। त्रिशोक ऋषि ने तुम्हारी स्तुति करके ही सहायता प्राप्त की थी और कुत्स तुम्हारे साथ ही रथारूढ़ हुए थे ।३। हे इन्द्र ! हमारी स्तुति सुनकर तुम इस यज्ञ-द्वार की ओर आगमन करो। किस प्रकार का सोम तुम्हें प्रसन्न करने वाला है ? तुम्हारी स्तुति करने वाला मैं अन्न धन कब पा

सकूँगा ? मुझे वाहनादि कब प्राप्त होंगे ? ।३। हे इन्द्र ! तुम कब आगमन करोगे और कब धन दोगे ? किस स्तुति से प्रसन्न होकर तुम मनुष्यों को अपने समान ऐश्वर्यवान् बनाओगे ? स्तुति करते ही तुम सच्चे मित्र के समान स्तोता का पालन करने वाले होते हो ।४। पति द्वारा पत्नी को सन्तुष्ट करने के समान ही जो तुम्हें सन्तुष्ट करता है, उसे अभीष्ट धन प्रदान करो । जो स्तोता प्राचीन सोम से तुम्हें हविरत्न देते हैं, उन्हें ऐश्वर्य दो क्योंकि तुम सूर्य के समान दानी हो ।५।

(२२)

मात्रे नु ते सुमिते इन्द पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवतः सुतासः स्वाद्मन्भवंतु पीतये मधूनि ॥६

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौस्यैश्च ॥७

व्यनलिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतंते सख्याय पूर्वीः ।
आस्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८।२२

हे इन्द्र ! प्राचीन-काल में रची हुई द्यावा पृथिवी तुम्हारी माता के समान हैं । तुम इस घृत से युक्त सोम-रस का पान करो । यह मधुर रस वाला अन्न सुस्वादु है, तुम इससे प्रसन्नता और हर्ष को प्राप्त होओ । ।६। इन्द्र पृथिवी से भी महान् हैं । वे मनुष्यों का हित करने वाले और धन प्रदान करने वाले हैं । उनके सभी कार्य आश्चर्यजनक हैं । अतः उनके निमित्त मधुर सोम-रस को पात्र में रख कर उन्हें अर्पित करो । ।७। यह इन्द्र महाबली हैं । विकराल शत्रु भी इनसे मित्रता करने को उत्सुक होते हैं । इन्होंने शत्रु-सेनाओं को अनेक बार घेरा है । हे इन्द्र ! विश्व का कल्याण करने के लिये तुम जिस रथ पर आरूढ़ होकर रण-क्षेत्र में जाते हो, उसी रथ पर इस समय भी आरूढ़ होओ ।८। (२३)

सूक्त ३० [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि—कवष ऐलूषः । देवता—आप अपान्नपाद्वाः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मन्सो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥१

अध्वर्यवो हविष्मंतो हि भूताच्छाप इतोषतीरुशन्तः ।
अब याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥२

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो दददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्त सुनोत ॥३

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व न्तर्यं विप्रास ईलते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिंद्रो वावृधे वीर्याय ॥४

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभियुवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्योअपोअच्छापरेहि यदासिंचा औषधीभिः पुनीतात् ॥५।४

यज्ञ के समय यह सोम-रस शीघ्रतापूर्वक देवताओं के निमित्त जल की ओर गमन करें। हे ऋत्विज ! मित्रावरुण के लिये उस महान् अन्न का संस्कार करो और इन्द्र के लिये श्रेष्ठ स्तुति उच्चारण करो ।१। हे ऋत्विजो ! तुम हविरन्न निर्मित करो। यह जल तुमसे प्रीति करने वाला हो। तुम उस जल की ओर गमन करो। लाल पक्षी के समान यह सोम क्षरित होता है, तुम उसे अपने कर्मवान् हाथों द्वारा तरङ्गित करो ।२। हे ऋत्विजो ! जल वाले समुद्र में गमन करो और अपान्नपात् देव को हव्य दो। वे तुम्हें श्रेष्ठ जल की लहर दें, इसलिये उनको मधुर सोम-रस अर्पित करो ।३। स्तोता जिस काष्ठ की यज्ञ के अवसर पर स्तुति करत हैं तथा जो काष्ठ जल के कारण ही जल जाते हैं, वे अपान्नपात् देव इन्द्र को जल देने वाला श्रेष्ठ जल प्रदान करें ।४। इन जलों में मिश्रित सोम अत्यन्त अद्भुत होते हैं और जलों से मिलने

पर ही सोम पुष्ट होते हैं। हे ऋत्विजो ! तुम ऐसे जल लाओ जिससे सोम को शुद्ध किया जा सके ।५। (२४)

एवेद्यू ने युवतयो नमन्त यदोमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥६
यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या
अभिशस्तेरमुंचत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥७
प्रास्मै हिनोतमधुमन्तमूर्मिंगर्भोयो वः सिन्धवो मध्व उ सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥८
तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥९
आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०।२५

स्त्री पुरुषों के परस्पर आकर्षण के समान ही जल सोम के प्रति आकर्षित होते हैं। ऋत्विजों और उनके स्तोत्रों से जलरूप वाले देवताओं की जानकारी है। अपने-अपने कार्यों को वे दोनों देखते हैं।६। हे जलो ! रोक लेने पर जो इन्द्र तुम्हें खोलकर मार्ग प्राप्त कराते हैं, तुम उन इन्द्र के लिए ही हर्षप्रदायक और मधुर सोम-रस प्रस्तुत करो ।७। हे जल ! तुम्हारे बीज रूप जो मधुर रस वाला सोम है, उसकी तरंगें इन्द्र की ओर भेजो। हे जल ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। मैं तुम्हारा आह्वान करता हूं, उसे सुनो। मैं घृताहुति के साथ ही स्तुति करता हूँ, ।८। हे जल ! तुम अपनी दिव्य और पार्थिव तरङ्गों को इन्द्र के पीने के लिये प्रस्तुत करो। तुम हर्ष को बढ़ाने वाली अभिलाषाओं की वृद्धि करने वाली, आकाश में उत्पन्न होकर तीनों लोकों में विचरण करने वाली तरङ्ग को लाओ ।९। जल के लिए संगाम करने वाले इन्द्र के निमित्त अनेक धाराओं में विभिक्त हुआ जल बारम्बार क्षरित होता है। वह जल विश्व की रक्षिका माता के समान है और सोम में मिलता है। ऋषिगण इस जल को नमस्कार करते हैं ।१०। (२५)

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे विष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११
रापो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२
प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३
एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४
आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५।२६

हे जल ! हमारे इस देव-यज्ञ में तुम सहायक होओ । हमको पवित्र करो और धन प्राप्त कराओ । हमारे अनुष्ठान के समय गोष्ठ का द्वार खोलते हुए हमें सुखी करो ।११। हे जल ! यज्ञ कल्याणकारी है और तुम धर्म के साक्षात् रूप और उसके स्वामी हो । हमारे यज्ञ को सम्पन्न करते हुए अमृत लाओ और हमारे धन तथा सन्तानों की रक्षा करने वाले बनो । सरस्वती स्तुति करने वाले को धन प्रदान करें ।१२। हे जल ! तुम जब आते थे तब घृत दुग्ध और मधु से सम्पन्न हुए आते थे । स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हुए बोलते थे । तुम श्रेष्ठ और सुसंस्कृत सोम रस को इन्द्र के लिए अर्पित करते थे ।१३। यह जल धन का आश्रय रूप है, यह प्राणी का हित करने वाला है । हे ऋत्विजो ! इस आते हुए जल को स्थापित करो । वृष्टि के अधिष्ठाता देवता से इन जलों का परिचय है । इन्हें कुशों पर प्रतिष्ठित करो । यह जल सोम-रस के अनुकूल है ।१४। देवताओं की ओर गमन करने के लिए कुशों की ओर जाता हुआ जल यज्ञभूमि को प्राप्त हुआ है । हे ऋत्विजो ! जल आ गया है अब तुम पूजन-कर्म सरलता से कर सकोगे । मधुर सोम-रस को इन्द्र के लिये अर्पित करो ।१५। (२६)

सूक्त ३१

(ऋषि—कवष ऐलूषः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्)

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥१

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥२

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥३

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४

इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा रसायन् ।
अस्यास्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणाआ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ५।२७

हमारी स्तुति विश्वेदेवाओं को प्राप्त हों । यज्ञ के देवता सब शत्रुओं से हमारी रक्षा करें । वे देवता हमारे साथ मित्र भाव रखें और हम सभी पापों से मुक्त हो जाँय ॥१॥ सब प्रकार के धनों की अभिलाषा करने वाला पुरुष अनुष्ठानादि सत्य कर्मों में लगकर कल्याण प्राप्त करें और तब उन्हें हार्दिक सुख मिले ।२। यज्ञ के सब उपकरण आवश्यकतानुसार रखे जाँय । यह पदार्थ देखने में सुन्दर और रक्षा के उपयुक्त साधन हैं । यज्ञ-कार्य का आरम्भ हो चुका है और हमने सोम का रसास्वादन भी किया है । देवगण स्वरूप से ही सब कुछ जानते हैं ।३। प्रजापति विनाश-रहित हैं । वे दानशील हृदय से हम पर अनुग्रह करें । यज्ञकर्त्ता यजमान को, सूर्य सुफल प्रदान करें । भग और अर्यमा प्रसन्न हों और सब देवता भी यजमान पर हर प्रकार से अनुग्रह करें ।४। स्तुतियों की इच्छा करते हुए देवता जब कोलाहल करते हुए द्रुतगति

से आते हैं, तब हमारे लिए प्रात:काल में पृथिवी आलोकमयी होती है। विभिन्न प्रकार के सुख देने वाले अन्न हमको प्राप्त हों ।५। (२७)

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीला असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ।६
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ।।७
नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ।।८
स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ।।९
स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ।।१०
उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधऋर्तमत्र न किरस्मा अपीपेत् ।।११।२८

महान् देवताओं के पास गमन करने की इच्छा से हमारी स्तुतियाँ महिमामयी होकर विस्तार को प्राप्त होती हैं। सभी देवता हमारे इस यज्ञ में अपने-अपने स्थानों पर विराजमान होते हुए श्रेष्ठ फल देने के लिए आगमन करें तब मैं बल से सम्पन्न होऊँगा ।६। जिस वृक्ष या जिस जंगल के उपादान से इस आकाश पृथिवी को रचा गया है, वह वृक्ष कौन सा है ! आकाश और पृथिवी परस्पर मिले हुए हुए हैं और समान मन वाले हैं। वे जीर्ण या पुराने नहीं हैं। प्राचीन दिवस और उषा जीर्ण हो गए ।७। पृथिवी या आकाश ही अन्तिम नहीं हैं और कुछ भी इनके ऊपर है। वह जो है, सृष्टि के रचने वाला और आकाश-पृथिवी का धारणकर्त्ता है। वह अन्न का स्वामी हैं। सूर्य के अश्वों ने जब तक सूर्य का वहन करना आरम्भ नहीं किया था, तभी तक उसने अपने देह की स्वयं रचना कर डाली ।८। रश्मिवंत

सूर्य पृथिवी को नहीं लाँघते और वायु देवता वर्षा को अत्यन्त छिन्न-भिन्न नहीं करते । वन में उत्पन्न अग्नि के समान प्रकट होकर मित्रावरुण अपने प्रकाश को सब ओर फैलाते हैं ।९। वृद्धा गौ के प्रसव करने के समान ही अरणि अग्नि को प्रकट करती है । संसार के सब प्राणियों की रक्षा करती है । जो अरणियों की रक्षा करते हैं उनके क्लेश मिट जाते हैं । अग्नि अरणियों के पुत्र हैं । यह अरणी रूपी गौ शमी वृक्ष पर उत्पन्न होती है ।१०। काले रङ्ग के कण्व ऋषि अन्नवान् हैं । वे नृसद के पुत्र कहाते हैं । उन्होंने ऐश्वर्य प्राप्त किया । अग्नि ने उन कण्व के निमित्त अपना श्रेष्ठरूप दिखाया । जैसा यज्ञ कण्व ने किया, अग्नि देवता के लिये वैसा यज्ञ और किसी ने भी नहीं किया ।११।

(२८)

सूक्त ३२

(ऋषि—कवष ऐलूषः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥१
वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥२
तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयती ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥३
तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥४
प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥५।२९

जो यज्ञ करने वाला यजमान इन्द्र का आह्वान करता है, इन्द्र उसके यज्ञ में पहुंच कर उसकी पूजा स्वीकार करने के लिये अपने अश्वों को योजित करते हैं । उनके हर्यश्व अद्‌भुत चाल वाले हैं । यह इन्द्र उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट वर लेकर आये हैं । यजमान भी इन्हें श्रेष्ठ से श्रेष्ठ

पदार्थ अर्पित करता है। जब हमारी स्तुतियों और हव्यादि को वह स्वीकार करना चाहते हैं तब मधुर सोमरस का पान करते हैं, ।१। हे इन्द्र ! तुम बहुतों के द्वारा स्तुत हो। तुम अपने प्रकाश को बढ़ाते हुए दिव्य धामों में घूमते हो। तुम जब अपनी ज्योति के सहित पृथिवी पर आते हो तब यज्ञ में तुम्हें पहुंचाने वाले तुम्हारे दोनों अश्व हमको धन-वान् बनावें। हे इन्द्र ! हम धन हीन, धन पाने के लिये ही श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा तुम से धन की याजना करते हैं ।२। जिस अत्यन्त विचित्र धन को पुत्र अपने पिता से पाता है, वैसा ही अद्भुत धन इन्द्र मुझे देने की इच्छा करें। मधुभाषिणी नारी जैसे पति को प्रिय होती है वैसे ही भले प्रकार संस्कृत सोम पौरुषवान् इन्द्र को प्रिय होता है ।३। हे इन्द्र ! जिस स्थान पर स्तुति रूप गौऐं प्राप्त हों, तुम उस यज्ञ स्थान को अपने तेज से अलोकमय बनाओ। प्राचीन और पूजन के योग्य जो स्तोत्रों की माता है, उसके सातों छन्द यज्ञ स्थान पर ही स्थित हैं ।४। रुद्रों के साथ अकेले ही अपने स्थान को प्राप्त होने वाले अग्नि तुम्हारे हित के लिए ही देवताओं की ओर गमन करते हैं। अब अविनाशी देवताओं का बल कम हो रहा है अतः शीघ्र ही सोम रूप मधु को इन्द्र के लिए अर्पित करो। तब यह देवगण वरदाता होंगे ।५। (२६)

निधीयमानमपगूलहमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम ॥६
अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्तुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥७
अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेलन्वसुः सुमना बभूव ॥८
एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वव च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥९॥३०

पुण्य यज्ञ कर्म देवताओं के निमित्त किया जाता है, इन्द्र उसके रक्षक

होते हैं। हे अग्ने! इन्द्र ने तुम्हारे जल में स्थित रूप को निगूढ़ बताया है। मैं तुम्हारे पास उसी कथन के अनुसार आया हूं। ६। मार्ग से अभिज्ञ व्यक्ति मार्ग के जानने वाले से पूछ कर अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त होता है। उसी प्रकार यदि तुम जल की खोज करना चाहो तो जानकार व्यक्ति से पता लगाकर जल के पास पहुंच सकते हो। ७। यह गोवत्स रूप अग्नि उत्पन्न होकर कुछ दिनों से उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं। इन्होंने अपनी माता का दूध पान किया है। ये सब कार्यों के सरल करने वाले, अत्यन्त धन वाले और मन की स्वस्थता से पूर्णतः सम्पन्न हैं। इनको तरुणावस्था के साथ ही वृद्धावस्था आ गई। ८। हे इन्द्र! तुम स्तुतियों को सुनकर धन प्रदान करते हो। यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही बनाये गये हैं। हे स्तोत्र के रूप वाले धन से सम्पन्न स्तोताओ! इन्द्र तुम्हारे निमित्त दाता बनें और मेरे हृदय में विराजमान सोम भी मुझे ऐश्वर्य देने वाले हों ॥९॥ (३०)

सूक्त ३३

(ऋषि—कवष ऐलूषः। देवता—विश्वेदेवाः, इन्द्रः, कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः। छन्द–त्रिष्टुप्, बृहतीः गायत्री)

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरा गादिति घोष आसीत् ॥१
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥२
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृलयाधा पितेव नो भव ॥३
कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्। मंहिष्ठंवाघतामृषिः ॥४
यस्यमाहरितोरथेतिस्रोवहन्तिसाधुया। स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥५॥१

सब को कर्मों की प्रेरणा देने वाले देवताओं ने मुझे भी कर्म की ही प्रेरणा दी। मैंने मार्ग में पूषा को ढोया। मुझे कवष की रक्षा विश्वे-

देवाओं ने की। फिर दुर्धर्ष ऋषि के आगमन का समाचार सुनाई पड़ा ।१। मेरी पसलियाँ सौत के समान क्लेश देने वाली हैं। मेरा मन पक्षी के समान चलायमान हो गया। इसीलिए मैं दीन हीन तथा क्षीण होता हुआ अपनी ही कुबुद्धि से क्लेश पा रहा हूं।२। चूहों द्वारा स्नायु का भक्षण करने के समान तुम्हारे मुझ उपासक का भक्षण मेरे मन का क्लेश ही कर रहा है। हे इन्द्र! ऐश्वर्यवान् हो। हमारी ओर कृपा पूर्वक देखते हुए हमारे पिता के समान होकर हमारी रक्षा करो।३। त्रदस्यु के पुत्र राजा कुरुश्रवण अत्यन्त श्रेष्ठ दाता है, मुझ कवष ऋषि ने उनसे ही ऐश्वर्य की याचना की थी।४। मैं जब रथारूढ़ होता हूं तब हरित वर्ण वाले तीन घोड़े उसे भले प्रकार चलाते हैं। जब मेरे सहस्र क्षमा या दक्षिणा दी जाती है, तब उसे सभी चाहते हैं।५। (१)

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवस:पितु। क्षेत्रं न रण्वमूचूषे ॥६
अधि पुत्रोपमश्रवोनपान्मित्रातिथेरिहि। पितुष्टे अस्मिवन्दिता ॥७
यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम्। जीवेदिन्मघवा मम ॥८
न देवानामतिव्रतशतात्माचनजीवति। तथा युजा विवावृते ॥९॥२

मेरे पिता आदर्श के स्थान थे। उनका वजन युद्ध भूमि में भी प्रसन्नता करने वाला हो।६। हे मित्रातिथि के पुत्र उपश्रवस! मैं मित्रातिथि के लिए स्तोत्र करता हूँ। तुम शोक न करते हुए मेरे समीप आगमन करो और धन प्रदान कराओ।७। देवता अविनाशी हैं। उनका और मनुष्यों का यदि स्वामी यहाँ होता तो ऐश्वर्यों से सम्पन्न मित्रातिथि अवश्य प्राणवान् होंगे।८। सो प्राण भी देह से युक्त होना चाहें तो भी देवताओं की इच्छा के बिना कोई भी जीवित नहीं रहता। हमारे साथियों से हमारा जो वियोग होता है, उसका यही कारण है।९। (३)

सूक्त ३४

(ऋषि—एलूष अक्षो वा मौजवान्। देवता—अक्षकृषिप्रशंसा अक्षकितवनिन्दा। छन्द: त्रिष्टुप्, जगती)

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृताना: ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीद को जागृविर्मह्यमच्छान् ।।१
न मा मिमेथ न जिहील एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ।।२
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दने मडितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ।।३
अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्ष: ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जनीमो नयता बद्धमेतम् ।।४
यदादीध्ये न दविषाण्येभि: परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्य: ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतं एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ।।५।३

जब चौसर के ऊपर श्रेष्ठ पाशे इधर से उधर जाते हैं तब उन्हें देख कर अत्यन्त विनोद होता है । पर्वत पर उत्पन्न होने वाली श्रेष्ठ सोमलता का सर पान करने पर जो हर्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार काष्ठ से बने पाशे मुझे उत्साह प्रदान करते हैं ।१। मेरी यह सुन्दर सुशीला भार्या मुझसे कभी भी असन्तुष्ट नहीं हुई । वह सदा मेरी और मेरे कुटुम्बियों की सेवा सुश्रूषा करती रही है । परन्तु इस पाशे ने ही मुझसे अत्यन्त प्रेम करने वाली भार्या को पृथक् कर दिया ।२। जुआ खेलने वाले पुरुष की सास उसे कोसती है और उसकी सुन्दरी भार्या भी उसे त्याग देती है । जुआरी को कोई एक फूटी कौड़ी भी उधार नही देता । जैसे वृद्ध अश्व को कोई नहीं लेना चाहता, वैसे ही जुआरी को कोई पास में भी नहीं बैठने देता ।३। पाशे के घोर आकर्षण में जुआरी खिचा रहता है । उसके पाशे की चाल खराब होने पर उसकी भार्या भी उत्तम कर्म वाली नहीं रहती, जुआरी के माता पिता और भाई भी उसे न पहचानने का ढङ्ग अपनाते हुए उसे पकड़वा देते हैं ।४। मैं अनेक बार यह चाहता हूँ कि अब द्यूत नहीं खेलूँगा । यह विचार करके जुआरियों का साथ छोड़ देता हूं परन्तु चौसर पर पीले पाशों को देखते ही मन ललचा

उठता है और मैं विवश होकर जुआरियों के स्थान की ओर गमन करता हूं ।५। (३)

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुधजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६
अक्षास इदङ्कुशिनोनितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणोमध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥७
त्रिपञ्चाशः क्रीलति व्रात एषाँ देवइव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८
नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९
जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०।४

जब जुआरी उत्साहपूर्वक जीतने की आशा से जुए के स्थान पर पहुंचता है तब कभी तो उसकी इच्छा पूर्ण हो जाती है और कभी उसके विपक्षी की बलवती कामना पूर्ण होती है ।६। परन्तु जब हाथ की चाल बिगड़ जाती है तब पाशा भी विद्रोही हो जाता है, वह जुआरी के अनुकूल नहीं चलता तब वही पाशा जुआरी के हृदय में बाण के समान प्रविष्ट होता है, छुरे के समान त्वचा को काटता है, अंकुश के समान चुभता है और तपे हुए लोहे के समान दग्ध करने वाला होता है । जो जुआरी जीतता है, उसके लिए पाशा पुत्र-जन्म का सा हर्ष देता है संसार भर का माधुर्य उसी में भर जाता है । परन्तु पराजित जुआरी का तो मरण ही हो जाता है ।७। चौसर पर तिरेपन पाशे क्रीड़ा करते हैं, जैसे सूर्य अपनी रश्मियों सहित क्रीड़ा कर रहे हों । पाशा महान् वीर के वश में भी नहीं रहता । राजा भी उसी पाशे के आगे झुक जाते हैं ।८। इन पाशों के हाथ न होते हुए भी कभी ऊपर उठते और कभी नीचे जाते हैं । हाथ वाले पुरुष इनसे हारते हैं । यह श्री से सम्पन्न होते हुए भी प्रज्वलित अंगार के समान चौसर पर प्रतिष्ठित होते हैं । स्पर्श में

शीतल होते हुए भी यह हृदय को दग्ध कर डालते हैं ।६। जुआरी की पत्नी सदा संतप्त रहती है, उसका पुत्र भी मारा फिरता है । अपने पुत्र की चिन्ता में वह और भी चिन्तातुर रहती है । जुआरी सदा दूसरों के आश्रय में ही रात काटता है । उसे जो कोई कुछ उधार देता है उसे अपने धन के लौटने में सन्देह रहता है ॥१०॥ (४)

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषाँ जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११
यो वः सेनानीर्महतो गणस्य गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२
अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जायातन्मे वि चिष्टे सवितायमर्यः ॥१३
मित्रं कृणुध्वं खलु मृलता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
निवो नु मन्यूर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४।१५

यद्यपि जुआरी अपनी स्त्री के सन्ताप से सन्तप्त रहता है, वह दूसरे की स्त्रियों के सौभाग्य और ऐश्वर्य को देख-देख कर अपने मन को मसोसता है । जो जुआरी धन जीतने पर प्रातःकाल अश्वारूढ़ होकर आता है, सायंकाल उसी के पास शरीर पर वस्त्र भी नहीं रहता । इसलिए जुआरी का कोई ठिकाना नहीं ।११। हे अक्ष ! तुममें जो प्रमुख हैं, उसे मैं अपने हाथों की दसों अंगुलियों को मिलाकर नमस्कार करता हूँ । मैं तुमसे धन की कामना नहीं करता ।१२। हे जुआरी ! जूआ खेलना छोड़कर खेती करो । उसमें जो लाभ हो उसी में सन्तुष्ट रहो । इसी कृषि के प्रवाह से गौऐं और भार्या आदि प्राप्त करोगे । यही सूर्य का कथन है ।१३। हे अक्षो ! हमको मित्र मानकर हमारा कल्याण करो । हम पर अपना विपरीत प्रभाव मत डालो तुम्हारा क्रोध हमारे शत्रुओं पर हो, वही तुम्हारे चंगुल में फँसे रहें ॥१४॥ (५)

सूक्त ३५

(ऋषि—लुशो धानाकः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१
दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून्पर्वतांछर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२
द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥३
इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥४
प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥५।६

अग्नि चैतन्य हो गये। इन्द्र भी उनके साथ साथ आ गये। जब प्रातःकाल अन्धकार को अन्यत्र प्रेरित करता है, सब अग्नि अपने प्रकाश के सहित प्रदीप्त होते हैं। विस्तीर्ण आकाश पृथिवी जागरणशील हों। देवगण हमारी स्तुतियाँ सुन कर हमारे रक्षक हों।१। माता के समान नदियाँ और पर्वत हमारे रक्षक हों। आकाश-पृथिवी भी हमारी रक्षा करें। सूर्य और उषा हमको पापों से बचाते रहें। यह अर्पित किये जाने वाले मधुर सोम भी हमारी स्तुतियाँ सुनकर कल्याणकारी हों।२। हम अपनी माता के समान आकाश पृथिवी के प्रति अपराध करने वाले न हों। वे हमको सुख प्रदान करने के लिए रक्षिका बनें। अन्धकार को दूर करने वाली उषा हमारे पापों को नष्ट कर डालें। हम उन तेजस्वी अग्नि से मङ्गल याचना करते हैं।३। उषा पापों को, अन्धकारों को दूर करने वाली है। वह धन वाली और श्रेष्ठ उषा हमको धन प्रदान करे। दुष्टजनों का क्रोध हमारे ऊपर न पड़े। हम प्रदीप्त और तेजस्वी अग्नि

देवता से कल्याण की याचना करते हैं ।४। सूर्य की रश्मियों से संयुक्त होने वाली जो उषा आलोकमयी होकर अन्धेरे को दूर भगाती है, वह हमें श्रेष्ठ एवं उपभोग्य अन्न प्रदान करने वाली हो । हम उन प्रदीप्त और तेज से प्रकाशमान अग्नि से कल्याण की याचना करते हैं ।५। (६)

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥६
श्रेष्ठं अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥७
पिपर्तु मा तदृतस्य प्रावचनं देवानां यन्मनुष्या अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पलुदेति सूर्यः स्वस्त्यग्निं समीधानमीमहे ॥८
अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥९
आ नो बर्हिः सध्वांदे बृहद्दिवि देवाँ ईले सादया सप्त होतॄन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१०॥७

आरोग्य-दायिनी उषा जब हमारी ओर आगमन करे तब अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवता भी ऊँचे उठें । हम उन अग्नि देवता से ही मङ्गल याचना करते हैं । शीघ्रगामी रथ में अपने अश्वों को दोनों अश्विनी-कुमार भी हमारे यहाँ आने के लिये योजित करें ।६। हे आदित्य ! तुम अभीष्टों का फल-पूर्ण करते हो । तुम हमारे लिए श्रेष्ठ धन भाग दो । धन को उत्पन्न करने वाली स्तुतियों को हम उच्चारित करते हैं । प्रकाश-मान अग्निदेवता से हम मङ्गल की याचना करते हैं ७। कर्मवान् मनुष्य जिस देव-योग के करने की इच्छा करते हैं, वही यज्ञ मुझे भी सम्पन्न बनावे । आदित्य नित्य प्रातःकाल सब पदार्थों को प्रकाशित करते हुए उदित होते हैं । प्रकाशमान अग्नि से हम कल्याण-कामना करते हैं ।८। इस यज्ञ स्थान में आज कुश विस्तृत किया गया है । सोम का संस्कार करने के लिये दो पाषाण ग्रहण किये गये हैं । हे यजमान ! अब तुम अपनी अभीष्ट पूर्त्ति के लिए द्वेष रहित देवताओं का आश्रय

ग्रहण करो । तुम्हारे श्रेष्ठ अनुष्ठान से प्रसन्न हुए आदित्यगण तुम्हें सुख देने वाले हों । प्रज्वलित अग्नि से हम मङ्गल प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं ।६। अग्ने ! हमने जिस यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है, उसमें एकत्र हुए देवगण विहार करते हैं । तुम इस यज्ञ में विराजमान होने के लिये स्वर्गलोक से देवताओं का आह्वान करो । सप्त होताओं को बुला कर मित्र, वरुण भग और इन्द्र को भी यहाँ लाओ । मैं श्रेष्ठ ऐश्वर्य के निमित्त सब देवताओं की स्तुति करता हूँ और इन प्रज्वलित अग्नि से कल्याण मागता हूं ॥१०॥ (७)

त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्यतग्निं समिधानमोमहे ॥११
तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्यग्निं समिधानभीमहे ॥१२
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तुद्रविणं वाजो अस्मे ॥१३
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४।८

हे आदित्यो ! तुम विश्व-विख्यात हो । तुम हमारे पास आओ । तुम्हारे आने से सब ऐश्वर्य वृद्धि को प्राप्त होंगे । हमारे सुख के लिये सब देवता इस यज्ञ का पालन करें । अश्विनीकुमार, भग, वृहस्पति, सूर्य और अग्नि से हम मंगल की याचना करतें हैं ।११। हे देवगण ! हमारे यज्ञ को सर्व-सम्पन्न बनाओ । हे आदित्यगण ! हमको ऐश्वर्य से सम्पन्न राजभवन प्रदान करो । हम अग्नि देवता से पुत्र, पौत्र, स्त्री, पशु, दीर्घ आयु आदि समस्त कल्याणों की याचना करते हैं ।१२। मरुद्गण सब प्रकार से हमारी रक्षा करें ।अग्नि देवता प्रदीप्त हों सभी देवता हमारे यज्ञ में रक्षा-साधनों के सहित आगमन करें जिससे हम सब प्रकार के अन्न, धन, पुत्रादि तथा पशु आदि को प्राप्त करने वाले हों ।१३। हे देवगण ! तुम जिसे उबारना

चाहते हो, अन्न देकर जिसकी रक्षा करते हो, जिसके पापों को दूर करते और श्रीसम्पन्न करते हो, वह तुम्हारी शरण में रहता हुआ निर्भीक रहता है। हम देवताओं की सेवा करने वाले पुरुष उसी प्रकार के हों ॥१४॥ (८)

सूक्त ३६

(ऋषि—लुशो धानाकः। देवता–विश्वेदेवाः। छन्द-जगती, त्रिष्टुप्,)

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वतां अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१
द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२
विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवत ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥३
ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४
एन्द्रो बर्हिःसीदतुपिन्वतामिला बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मम धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥५।६

मैं अपने यज्ञ में उषा, रात्रि, विस्तीर्ण और पूर्ण आकाश-पृथिवी, मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्गण, आदित्यगण, समस्त पर्वत और समस्त जलों को आहूत करता हूं। अन्तरिक्ष स्वर्गलोक और द्यावापृथिवी का भी आह्वान करता हूं।१। यज्ञ की अधिष्ठात्री रूपिणी तथा विशाल हृदया द्यावापृथिवी पाप से हमारी रक्षा करें। पाप वृत्ति वाली निर्ऋति हमको अपने वश में न कर सकें। विश्वेदेवाओं से हम श्रेष्ठ रक्षा-साधकों की याचना करते हैं।२। धनवान मित्रावरुण की माता अदिति पापों से हमारी रक्षा करें जिससे हम सब प्रकार की अविनाशी ज्योति को पा सकें। हम उन विश्वेदेवों से विशिष्ट रक्षाऐं माँगने हैं।३। सोम को संस्कृत करने वाला पाषाण अपने शब्द से राक्षसों को, बुरे

स्वप्नों को, मृत्यु रूप पाप को और समस्त विघ्नरूप शत्रुओं को हमसे दूर भगावें। आदित्यगण और मरुद्गण हमको सुख देने वाले हों। विश्वेदेवों से हम याचना करते हैं।४। इन्द्र के लिये जब विशिष्ट स्तोत्र उच्चारित हों तब वे हमारे विस्तृत कुश पर विराजमान हों। बृहस्पति देवता ऋक् और सोम के द्वारा उनकी पूजा करें हम दीर्घ आयु और इच्छित श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त करें। विश्वेदेवाओं से हम विशिष्ट रक्षाओं की याचना करते हैं ॥५॥

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये।
प्राचीनरश्मिमहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥६
उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम्।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥७
अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम्।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८
सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानमवो अद्या वृणीमहे ॥९
ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥१०

हे अश्विनीकुमारो! हमारा यज्ञ देवताओं को स्पर्श करने वाला हो। यज्ञ में उपस्थित समस्त बाधाओं को दूर भगाओ। हमारे अभीष्टों को पूर्ण करके सुख दो। जिस अग्नि में घृताहुति प्रदान की जाती है, उनकी ज्वालाओं को देवताओं के पास भेजो। हम इन देवताओं से रक्षा मांगते हैं।६। श्रेष्ठ, दर्शनीय, कल्याणोत्पादक, धन को प्रवृद्ध करने वाले मरुद्गण सबका शोधन करते हैं। उनका ध्यान करते ही हृदय हर्षित हो जाता है। मैं उन्हीं मरुतों को आहुत करता हूं। मैं अन्न की प्राप्ति के लिये उनका ध्यान करता हुआ विश्वेदेवों से विशिष्ट रक्षा की याचना करता हूं।७। स्वच्छन्दता के देने वाले सोम अपने नाम से

प्रसन्नता देते और देवताओं को तृप्त करते हैं। वे श्रेष्ठ दीप्ति वाले और यज्ञ को सुशोभित करने वाले हैं। उनसे बल की याचना करते हुए हम उन्हे धारण करते हैं और देवों से रक्षा-याचना करते हैं ।८। हम और हमारी सन्तान दीर्घायु हों। हम अपने मनुष्यों में सोमरस को विभाजित करके पीवें। हम देवताओं के प्रति अपराधी न हों। हम देवों से श्रेष्ठ रक्षा चाहते हैं ।६। हे देवगण! तुम यज्ञ भाग प्राप्त करने के अधिकारी हो। हमारे द्वारा याचित पदार्थों को हमें प्रदान करो। हमको यह उपदेश करो जिससे हम बलवान् हो जांय। हमको ऐश्वर्य और यश भी दो। हम उन देवताओं से रक्षा चाहते हैं ।१०।

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथावसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ।११

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागानामित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ।।१२

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो तधातन द्रविणं चित्रमस्मे ।।१३

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्स-
वितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो
रासतां दीर्घमायुः ।।१४।११

जिस प्रकार देवगण प्रचण्ड अविचल और महान् हैं, उसी प्रकार के गुण हम भी मानते हैं। हे देवगण! हम धन और बल प्राप्त करें। हम तुमसे रक्षा की याचना करते हैं ।११। मित्रावरुण के प्रति निरपराध सिद्ध होते हुए हम सुख पावें। प्रदीप्त अग्नि हमे कल्याण प्रदान करें। सूर्य हमारे लिए शान्तिप्रद हों। देवगण से हम श्रेष्ठ रक्षा की याचना

करते हैं।१२। सत्य रूप वाले सूर्य, मित्र और वरुण के यज्ञ में उपस्थित रहने वाले सभी देवता हमें बल, धन, गौ आदि से युक्त सौभाग्य धन आदि प्रदान करें। उनकी कृपा से हम पुण्यकर्मा बने ।१३। चारों दिशाओं में सूर्य हमारी श्री-सम्पन्नता को बढ़ावें और हमको दीर्घ-आयु दें ॥११॥ (११)

सूक्त ३७

(ऋषि—अमितपाः सौर्यः। देवता—सूर्यः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥१
सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥२
न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥३
येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥४
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेलयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५
तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥६।१२

ऋत्विजो ! मित्रावरुण के देखने वाले सूर्य को प्रणाम करो। यह सूर्य सब वस्तुओं को देखने वाले, तेजस्वी, दिव्यजन्मा, प्रकाशयुक्त, पवित्र करने वाले और आकाश के पुत्र रूप हैं। उनका पूजन और स्तवन करो।०। सत्यवाणी के अवलम्ब से आकाश टिका है। सब संसार और प्राणीगण जिसके आश्रित हैं और दिन प्रकाशित होते हैं,सूर्योदय होता

और जल भी निरन्तर गति से प्रवाहित करता है, वही सत्यवाणी मेरी रक्षा करे ।२। हे सूर्य ! जब तुम अपने अश्वों को रथ में योजित कर आकाश में गमन करते हो, तब कोई भी देव-विमुख प्राणी तुम्हारे पास नहीं जा सकता । तुम जिस ज्योति को धारण करके उदित होते हो, वही ज्योति सदा तुम्हारे साथ गमन करती हैं ।३। हे सूर्य ! तुम अपनी जिस ज्योति से अन्धेरे को दूर करते और विश्व को प्रकाशित करते हो, उसी ज्योति से हमारे पापों को हटाओ, रोगों को और क्लेशों को नष्ट करो तथा दारिद्रय को भी मिटा डालो ।४। प्रातः कालीन यज्ञ के समान उदित होने वाले सूर्य ! तुम सरलता से संसार के सब कार्यों का पालन करते हो । हम जिस समय तुम्हारा नामोच्चारण करते हुए स्तुति करें. उसी समय हमारे यज्ञ को देवगण फल से सम्पन्न कर दें ।५। इन्द्र, मरुद्गण द्यावा—पृथिवी और जल हमारे आह्वान को सुनें आदित्य की कृपा पाकर हम दुःख को प्राप्त न हों । दीर्घ जीवन के निमित्त अपनी वृद्धावस्था तक सौभाग्य से सम्पन्न रहें ६। (१२)

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
ऊदमन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ।।७
महि ज्योतिर्बिभ्रत त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहत पाजसस्परि स्यं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ।।८
यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्रचेरते नि च विशन्तेअक्तुभिः ।
अनागास्त्वेनहरिकेशसूर्याह्नाह्नानोवष्यसाव स्वसायस्यसोदिहि ।।६
शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे यत्सूय द्रविणं हि धेचित्रम् ।।१०
अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत्पिवदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ।।११
यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेलनम् ।

आरावा यो नो अभि दुच्छुनायते नस्मिन्तदेनो ।
वसवो नि धेतन ॥१२॥३

हे सूर्य ! तुम नित्य प्रति उदित होते हो, वैसे ही हम अपने ज्योति सम्पन्न नेत्रों के द्वारा नित्य प्रति तुम्हारा दर्शन करते रहें । हम सदा नीरोग रहें और सन्तान वाले होकर निरपराध रहें । तुम्हारा तेज अत्यन्त उज्ज्वल है । तुम्हारे दर्शन सुख देने वाले हैं । जब तुम्हारा तेज आकाश को व्याप्त करता है तब हम तुम्हारे तेजोमय रूप के नित्य प्रति दर्शन करें ।८। तुम्हारी जिस ध्वजा रूप रश्मियों से विश्व प्रकाशित होता है और रात्रि का अन्धकार नित्यप्रति दूर होता है, तुम अपनी उस श्रेष्ठ ध्वजा के सहित प्रतिदिन उदित होओ । हम भी पाप रहित रहते हुए उसका दर्शन करते रहें ।९। तुम्हारे देखने मात्र से हमारा मंगल हो । तुम्हारी रश्मियाँ, तेज उत्ताप और शीतलता सभी हमारे लिए मंगल करने वाले हों । हमारा घर पर रहना अथवा यात्रा करना दोनों ही कार्य कल्याणकारी हों । सूर्य ! हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करो ।१०। हे देवो ! हमारे आश्रित मनुष्य और पशु सबको तुम सुख दो । सब प्राणी श्रेष्ठ भोजन पाकर पुष्टि और बल को प्राप्त करते हुए स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करें ।११। हे देवगण ! कर्म और वचन द्वारा जो कुछ भी अपराध देवताओं के प्रति हमसे बन जाता हो उसका पाप-दोष उस व्यक्ति पर डालो जो पापी तथा अदानशील है और हमारा अनिष्ट चिन्तन करता है ।१२। (१३)

सूक्त ३८

(ऋषि—इन्द्री मुष्कवान् । देवता इन्द्रः । छन्द—जगती)

अस्मिन्न इंद्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्रावसातये ।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥१

स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णु हि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥२
यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्गमे ॥३
यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४
स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु
त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥५।१४

हे इन्द्र ! इस सन्मुख प्रहार वाले युद्ध में विजयी होने पर सदा यश लाभ होता है । तुम उस यज्ञ में वीर रस में भरकर ललकारते और शत्रुओं से ली हुई गौओं की रक्षा करते हो । युद्ध से विरत मनुष्य तीक्ष्ण वाणों को शत्रुओं पर गिरते हुए देखकर भयभीत हो जाते हैं ।१। हे इन्द्र ! तुम हमारे गृह को उत्तम अन्न, धन और गौओं से पूर्ण करो । हम जिस धन की तुम से याचना करते हैं वह श्रेष्ठ धन हमको प्रदान करो । जब तुम शत्रुओं को पराभूत करो तब हमारे ऊपर कृपा करने वाले होओ ।२ हे इन्द्र ! अनेकों द्वारा आहूत तुम बहुत बार पूजित हुए हो । जो मनुष्य हम से युद्ध करना चाहें, अवश्य वही रण भूमि में पराजित हो । हम उसे तुम्हारे रक्षा-साधनों के द्वारा जीत लें ।३। जो इन्द्र श्रेष्ठ वस्तु को भी युद्ध में जीत लेते हैं, जो अत्यन्त दुःसाध्य युद्धों में भी विजय पाते हैं, जो युद्ध में रम जाते और अपने यश को प्रसिद्ध करते हैं और जिनका पूजन सब मनुष्य करते हैं हम उन्हीं इन्द्र की शरण प्राप्त करने के लिये उन्हें अपने अनुकूल बनाते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम अपने उपासकों में उत्साह भरते हो । हमें कौन व्यक्ति उत्साहित करता है, यह हम भले प्रकार जानते हैं । तुम अपने बन्धन को स्वयं ही काटने में समर्थ हो । अतः हे

इन्द्र ! तुम क्यों मुष्क-द्वय के बंधन में पडे हो। हे शक्र ! तुम यहाँ आगमन करो और कुत्स के हाथ हमारी रक्षा करो ।५। (१४)

सूक्त ३९

(ऋषि—घेषा काक्षीवती । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१
चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशस भाग कृणुतं नो आश्विना सोम नचारुं मघवत्सुनस्कृतम् ॥२
अमाजुरश्चिद्भवथो युव भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्याकृशस्यचिद्यु वामिदाहुर्भिषजारुतस्य चित् ॥३
युवा च्यायानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्रचमूहथुरद्भयस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रावाच्या ॥४
पुराणा वां वीर्या प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नुनव्यावव से करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथादधत् ॥५।१५

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा जो रथ सर्वत्र गमनशील है और तुम्हारे लिए सुदृढ़ रथ का रात-दिन आह्वान करना यजमान का कर्त्तव्य माना गया है इस समय हम उसी रथ का नामोच्चार करते हैं। जिस प्रकार पिता का नाम स्मरण करता हुआ मनुष्य सुखी होता है, वैसे ही हम इस रथ का नाम लेते हुए सुखी होते हैं।१। हे अश्विनकुमारो ! हम मधुरभाषी हों हमारे सभी कर्म पूर्ण हों। हमारी प्रार्थना है हममें अनेक सुमिति उदित करो। हमें श्रेष्ठ और कीतिशाली ऐश्वर्य का भाग प्रदान करो। सोम का मधुर रस जैसे स्नेह उत्पन्न करने वाला होता है वैसे ही हम भी यजमानों के प्रति स्नेह करने वाले हों—ऐसा करो।२। एक स्त्री अपने पिता के घर में बढ़ रही थी, तुम उसके सौभाग्य रूप वर को ले आये। हे अश्विद्वय ! जो पंगु है, पतित है उसे भी तुम शरण

प्रदान करते हो । तुम नेत्रहीन, बलहीन, रोगियों की चिकित्सा करने वाले कहे जाते हो ।३। पुराने रथ की मरम्मत करके जसे कोई व्यक्ति उसे नया सा कर लेता है, वैसे ही तुमने वृद्धावस्था से जीर्ण हुए च्यवन ऋषि को तरुण बना दिया । हे अश्विद्वय ! तुमने ही तुग्र के पुत्र को जल पर वहन किया और किनारे लगाया । तुम दोनों के यह पराक्रम यज्ञ में कीर्तन योग्य हैं ।४। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों के पराक्रमों का मैं बखान करती फिरती हूँ । तुम अत्यन्त कुशल चिकित्सक हो । अतः मैं तुम्हारी शरण प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करती हूँ । हे अश्विद्वय ! तुम सत्य के साक्षात् रूप हो, मेरी स्तुति पर यजमान अवश्य ही विश्वास कर लेगा ।५।

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्मृतम् ।।६
युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युव म्यूहथुः पुरुमित्रस्य वोषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छत युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरन्ध्रये ।।७
युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यवादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ।।८
युवं ह रेभ वृषणा गुहो हितमुदरयत ममृवांसमश्विना ।
युवंमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ।।९
युवं श्वेतं तेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्य ददथुर्द्रावयत्सखं भग न नृभ्यो हव्य मयाभुवम् ।।१०।१६

हे अश्विद्वय ! मेरा आह्वान सुनो । जैसे पिता पुत्र को सीख देता है वैसे ही तुम मुझे दो । मुझ ज्ञान-रहित का न कोई भाई है, न कुटुम्बी हैं । श्रेष्ठ बुद्धि भी मेरे पास नहीं है । यदि मुझे कोई क्लेश प्राप्त हो तो उसे पहले ही दूर कर दो ।६। हे अश्विनीकुमारो ! तुम राजा पुरुमित्र की कन्या शुन्धयुव को रथ पर बैठा कर ले गये और विमद के साथ उसका विवाह कर दिया । तुम्हें वध्रिमती ने आहूत किया था, तब तुमने उसके दुःख को सुना और सुख से प्रसव कराया ।७।

कलि नामक वृद्ध स्तोता को तुमने पुनर्यौवन प्रदान किया । तुमने ही वन्दन को कूप से निकाला था और तुमने ही लंगड़ी विश्पला को लोहे के पाँव देकर उसे गमन योग्य बना दिया था ।८। हे अश्विनीकुमारो ! तुम कामनाओं के देने वाले हो । जब शत्रुओं ने रेभ को मरणासन्न करके गुफा में डाल दिया था तब तुम्हीं ने उसकी रक्षा की थी । जब अत्रि ऋषि को सात बन्धनों में बाँध कर तृप्त अग्नि कुण्ड में डाल दिया गया था, तब तुमने उस अग्निकुण्ड को ही शीतल कर दिया था ।९। हे अश्विनीकुमारो ! तुमने ही निन्यानवे अश्वों के साथ एक श्रेष्ठ श्वेत वर्ण वाला अश्व राजा पेदु को प्रदान किया था । उस अद्भुत तेज वाले अश्व को देखते ही शत्रु सेना दूर भागती थी । मनुष्यों की दृष्टि में वह अश्व अत्यन्त मूल्यवान् था । उसके दर्शन से मन में हर्ष होता था और नाम लेने मात्र से सुख मिलता था ।१०। (१६)

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ।।११
आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिन विवस्वतः ।।१२
ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामुञ्चमम् ।।१३
एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ।।१४।१७

हे अश्विद्वय ! जब तुम गमन करते हो तब मार्ग में ही सब ओर के मनुष्य तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम्हारा नाम लेने से ही आनन्द की उत्पत्ति होती है । तुम यजमान दम्पत्ति को यदि रथ पर चढ़ा कर शरण प्रदान करो तो फिर उन्हें कोई भी पाप-दोष, विपत्ति, विघ्नादि का स्पर्श नहीं हो सकता ।११। हे अश्विनीकुमारो ! ऋभुओं ने तुम्हारे

लिये रथ प्रेरित किया था। उस रथ के प्रकट होते ही आकाश की पुत्री उषा भी उदित होती है। उसी से सूर्य की आश्रिता दिवस रात्रि जन्म लेती हैं। अपने उसी अत्यन्त वेग वाले रथ पर आरूढ़ होकर तुम कल्याणकारी मन से यहाँ आओ।१२। हे अश्विनीकुमारो! उसी रथ पर आरूढ़ होकर तुम पर्वत वाले पथ पर चलो और शयु नाम वाली वृद्धा गौ को पुनः पयस्विनी बनाओ। तुमने ही तेंदुए के मुख से वर्त्तिका नाम पक्षी को निकाल कर उसकी रक्षा की।१३। हे अश्विनीकुमारो! भृगुओं द्वारा जैसे रथ बनाये जाते हैं, वैसे ही तुम्हारे लिये मैं यह रथ बनाती हूं। जैसे कन्या के पाणि ग्रहण के अवसर पर उसे वस्त्रालङ्कारों से सजाते हैं वैसे ही हमने यह स्तोत्र सजाया है। हम पुत्र पौत्रादि के सहित सदा सुखी रहें।१४। (१६)

सूक्त ४०

(ऋषि—घोषा काक्षावती। देवता—अश्विनौ। छन्द—जगती)

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे यस्योर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१
कुहु स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥२
प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम्।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३
युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४
युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥१८

हे अश्विनीकुमारो! तुम मनुष्य के लिये कर्म का उपदेश करते हो। तुम्हारा जो रथ प्रातःकाल गमन करता हुआ प्रत्येक उपासक के पास धन पहुँचाता है, उस समय अपने यज्ञ को सम्पन्न करने के लिये कौन-सा

यजमान उस रथ की स्तुति करता है ? ।१। हे अश्विनीकुमारो ! तुम अपने इस समय में कहाँ गमन करते हो ? दिन में और रात्रि में कहाँ गमन करते हो ? तुम्हें अपने श्रेष्ठ यज्ञ में आदर सहित कौन आहूत करता है ।२। हे अश्विनीकुमारो ! दो श्रद्धास्पद राजाओं को जैसे यशोगान करते हुए जगाया जाता है, वैसे ही तुम्हारे लिये प्रातःकाल स्तुतियाँ की जाती हैं। यज्ञ प्राप्ति के लिये तुम नित्य प्रति किसके गृह में जाते हो ? हे कर्मों के उपासक ! तुम किसके पापों को दूर करते हो ।३। हे अश्विनीकुमारो ! मैं हव्यादि से सम्पन्न व्यक्ति दिन रात तुम्हारा आह्वान करती हूँ। तुम्हारे लिये यथा समय यज्ञ किये जाते हैं। तुम समस्त कल्याणों के स्वामी हो और अपने उपासकों के लिये अन्न लेकर आते हो ।४। हे अश्विनीकुमारो ! मैं राजकुमारी घोषा सब ओर घूमती तुम्हारा गुणानुवाद करती हूँ और तुम्हारा ही चिन्तन करती रहती हूं। तुम दिन रात मेरे यहाँ निवास करते हुए रथ और अश्वों से सम्पन्न मेरे भ्राता के पुत्र को वश में रखते हो ।५।

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृत न योषणा ॥६
युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो रराव्वा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७
युवं ह कृतं युवमश्विना शयुं युव विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥८
जनिष्ट यौषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दसना अनु ।
आस्मै रीपन्ते निवनेवसिन्धवाऽस्मा अह्ने भवात तत्पतित्वनम् ॥९
जीवं रुदन्ति वि मन्यन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्या य इद समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०।१९

हे अश्विनीकुमारो ! तुम पथ पर आरूढ हो। कुत्स के समान स्तोता के घर अपने रथ पर हो जाते हो। तुम्हारे मधु को मक्खियाँ ग्रहण करती हैं।६। हे अश्विनीकुमारो ! तुमने भुज्यु को समुद्र से उबारा,

तुम्हीं ने राजा वश, महर्षि अत्रि और उशना की रक्षा की। दानशील व्यक्ति से ही तुम्हारी मित्रता होती है। तुम्हारी शरण पाकर जो सुख मिलता है, मैं उसी सुख को चाहती हूँ।७। हे अश्विनीकुमारो! तुमने ही शयु, कृश और पति विहीना स्त्री तथा अपने सेवक की रक्षा की थी। यज्ञ करने वाले के निमित्त मेघ को तुम्हीं विदीर्ण करते हो। तब गतिमान् मेघ शब्द करता हुआ जल वृष्टि करता है।८। हे अश्विनीकुमारो! मैं घोषा हर प्रकार से सौभाग्यवती हो गई। मेरे विवाह के लिये वर भी प्राप्त हो गया। तुम्हारी वृष्टि से अनाज भी उत्पन्न हुआ है। नीचे की ओर बहने वाली नदियाँ अपने जल को इनकी ओर प्रेरित कर रही हे। यह सब प्रकार की शक्ति से सम्पन्न और रोग-रहित हो गये हैं।९। हे अश्विनीकुमारो! जो पुरुष अपनी स्त्री की प्राण-रक्षा के लिये रोते हैं, जो उन्हें यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में लगाते हैं, जो सन्तानोत्पत्ति करते हुये पितृ-मार्ग आदि से युक्त होते हैं, उनकी स्त्रियाँ सुख से रहती हैं।१०।

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो ग्रहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ।।११
आ वातगन्त्सुमतिर्जिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत।
अभूतं गोपा मिथुनाशुभस्पतीप्रिया अयम्णो दुर्या अशीमहि ।।१२
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आधत्त रयिं सहवीरं वचस्यवे।
कृत तीर्थ सुप्रपाण सुभस्पती स्थाणु पथेष्ठामप दुर्मति हतम् ।।१३
क्व स्विदद्य कतमाश्वश्विनांविक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती।
क ईंनि येमेकतमस्यजग्मतुर्विप्रस्यवायजमानस्यगृहम् ।।१४।२०

हे अश्विनीकुमारो! मैं उन्हें प्राप्त होने वाले सुख नहीं जानती उस सुख को मेरे प्रति उपदेश करो। अश्विनीकुमारो! जो पति मुझे चाहने वाला हो उसी बलवान् को मैं प्राप्त होऊँ, यही मेरी

कामना है ।११। हे अश्विनीकुमार ! तुम अन्न और धन के स्वामी हो तुम मुझ पर दया करो। हे कल्याण करने वालो। मेरी कामना पूरी करो और मेरे रक्षक बनो। मैं अपने पति के घर को प्राप्त होती हुई पति की प्रियतमा होऊँ ।१२। हे अश्विनीकुमारो ! तुम मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे पति को धन-सन्तान से पूर्ण करो। तुम दोनों कल्याण करने वाले हो। मेरे पति के गृह मार्ग में पड़ने वाले विघ्नों को नष्ट करो और मैं जिस नदी तट पर जल पीउँ उसे मेरे लिए सुखमय करो ।१३। हे अश्विनीकुमारो ! तुम सदा मंगल करने वाले हो। तुम्हारे दर्शन अत्यन्त रम्य हैं। तुम आज कहाँ हो ? किस यजमान के घर में बिहार करते हो ? ।१४। (२०)

सूक्त ४१

(ऋषि—सुहस्त्यो घोषेय: । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती)

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥१
प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥२
अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥३।२१

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे एक ही रथ को अनेक उपासक आहूत करते हैं। तीन चक्रों वाला वह रथ यज्ञों में आगमन कर चारों ओर विचरण करता है। हम स्तोता तुम्हारे उसी रथ को अपने प्रातः स्तवन में स्तुति करते हुए बुलाते हैं।१। हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा जो रथ प्रातःकाल अश्वों से युक्त होता है, और गमन करता हुआ मधु वहन करता है, उसी रथ के द्वारा तुम यज्ञ करने वालों की ओर गमन करो। हे अश्विद्वय ! अपने स्तोता के यज्ञ में अवश्य पहुंचो ।२। हे अश्विनीकुमारो ! मेरे पास आगमन करो। मैं मधु हस्त होता हुआ अध्वर्युक्त का कार्य कर रहा हूँ। अथवा तुम अग्निध्र नामक ऋत्विज के रूप में गमन करो। हे अश्विद्वय ! तुम सदा मेधावी जनों

के यज्ञ में गमन करते हो, परन्तु आज मेरे इस यज्ञ में मधुपानार्थ आगमन करो ।३। (२१)

सूक्त ४२

(ऋषि—कृष्ण: देवता—इन्द्र: । छन्द—त्रिष्टुप्)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२
किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमां आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५।२२

जैसे चतुर धनुर्द्धर लक्ष्य पर अपने वाण को चलाता है वैसे ही इन्द्र के लिए स्तुति करो। हे स्तोताओ ! अपने स्तोत्र को अलंकृत और प्रवृद्ध करके प्रस्तुत करो। तुमसे स्पर्धा करने वाला पुरुष तुम्हारे स्तोत्र के प्रभाव से पराभूत हो। इस समय इन्द्र को सोम रस की ओर प्रेरित करो ।१। हे स्तोताओ ! गौओं का दोहन करके जैसे मनुष्य अपना कार्य साधन करते हैं, वैसे ही तुम इन्द्र से अपने कार्य को निकालो। यह इन्द्र स्तुतियों के पात्र हैं, इन्हें चैतन्य करो जैसे अन्न से पूर्ण पात्र को टेढ़ा कर अन्न निकालने के लिए अनुकूल करते हैं, वैसे ही इन्द्र को अपने अनुकूल करो ।२। हे इन्द्र ! तुम काम्यदाता क्यों कहाते हो ? दाता होने के कारण ही तो लोग ऐसा कहते हैं। तुम तीक्ष्ण करने वाले हो, अतः मुझे भी तीक्ष्ण करो। तुम बुद्धि को कर्म में प्रेरित करने वाले हो अतः मेरी बुद्धि को भी धनोपार्जन के योग्य बनाओ ।३। हे इन्द्र ! योद्धा

जब रण भूमि में गमन करते हैं तब तुम्हारा नाम उच्चारित करते हैं। यह इन्द्र यजमान की सहायता करने वाले हैं। जो व्यक्ति इन्द्र के लिए सोम को अभिषुत नहीं करता, वह इन्द्र की मित्रता को भी प्राप्त नहीं करता।४। जो अन्नवान् व्यक्ति इन्द्र के लिये सोमाभिषव करता है, और गवादि दान करने वाले धनवान् के समान इन्द्र को मधुर सोम रस अर्पित करता है, इन्द्र उस व्यक्ति की सहायता करते हैं। वृत्रहन्ता इन्द्र अपने उस उपासक के असंख्य सेना वाले बलवान् शत्रु को भी शीघ्रता पूर्वक दूर भागते है।५। (२२)

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्र यः शिश्राय मघवा काममस्मै।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम्॥६
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्॥७
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम्॥८
उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान्॥९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम॥१०
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु॥११।२३

इन्द्र धनवान हैं। हमने उनकी स्तुति की है और उन्होंने हमारे अभीष्ट पूर्ण किये हैं। इन्द्र के सामने से शत्रुगण शीघ्र भाग जाँय और उनकी सब सम्पत्ति इन्द्र को प्राप्त हो।६। हे इन्द्र! तुम्हें अनेक उपासक आहूत करते हैं। तुम मुझे गवादि अन्न और गौओं से युक्त ऐश्वर्य दो। मुक्त स्तोता के स्तोत्र को अन्न और धन उत्पन्न करने वाला

बनाओ । तुम अपने विकराल वज्र से निकटस्थ शत्रु को दूर भगाओ ।६। अनेक धारों वाले मधुर रस की वृष्टि करने वाले सोम जब इन्द्र के शरीर में रमते है तब ये इन्द्र सोम प्रदान करने वाले को रोकते नहीं । अपितु सोम रस को निकालकर अधिक से अधिक भेट करने वाले को इच्छित वस्तुऐं देते हैं ।८। जुआरी जिससे हार जाता है, उसे ढूँढ़ कर हारा हुआ जुआरी हराने का यत्न करता है, वैसे दुष्कर्म करने वाले को इन्द्र हरा देता है । जो उपासक-कर्म में कृपणता नहीं करता, उसे इन्द्र अत्यन्त धनवान् बना देते हैं ।९। इन्द्र अनेकों द्वारा आहूत होते हैं, वे हमारे जौ से अपनी भूख को मिटादें । हम गौओं के द्वारा अपनी दरिद्रता को दूर करें । हम राजाओं के हाथ आगे बढ़ते हुए अपने बल से विशाल धनों को जीतने वाले हों ।१०। बृहस्पति हमें पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाओं के शत्रुओं से रक्षित करें । इन्द्र हमें पूर्व और मध्य दिशा में रक्षित करें । वे इन्द्र हमारे सखा हैं और हम भी इन्द्र के सखा हैं वह इन्द्र हमारी कामनाओं को पूर्ण करे ।११।(२)

सूक्त ४३ [चौथा अनुवाक]

(ऋषिः—कृष्णः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१
न घा त्वद्रिगपवेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म निषदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इन्द्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्तिवृषभस्य शुष्मिणः ॥३
वयो न वृक्षं सुशलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व र्मनवे ज्योतिरार्यम ॥४
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नो नूतनः ॥५।२४

इन्द्र के उद्देश्य से मेरे स्तोत्रों ने इन्द्र का यश कीर्तन किया है। स्तुतियाँ हर प्रकार की कामना पूर्ण कराती हैं हमारी स्तुतियाँ इन्द्र के आश्रय में जाती हैं ।१। हे इन्द्र मेरा मन अन्यत्र गमन नहीं करता। वह तुम्हारी ही इच्छा करता है। राजा जैसे अपने सिंहासन पर विराजमान होता हैं, वैसे ही उन कुशों पर विराजमान होओ। इस सोम के द्वारा पान-कार्य पूर्ण हो ।२। अन्न के अभाव और बुरी दशा से हमारी रक्षा करने वाले इन्द्र हमारे सब ओर रहें क्योंकि वे सब धनों और ऐश्वर्य के स्वामी हैं । वे हमारी कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं । उन्हीं की इच्छा से सातों नदियाँ निम्न मुख गामिनी होती हुई कृषि को बढ़ाती हैं ।३। चिड़ियाये जैसे सुन्दर पत्तों वाले वृक्ष का आश्रय लेती हैं वैसे ही आनन्द की वर्षा करने वाले सोम इन्द्र का आश्रय प्राप्त करते हैं। सोम-रस पान से इन्द्र तेजस्वी होते हैं, वह इन्द्र हमें श्रेष्ठ ज्योति-प्रदान करें ।४। जैसे जुआरी अपने हराने वाले को ढूँढ़कर हराता है, वैसे ही इन्द्र वर्षा के रोकने वाले वृत्र को हराते हैं । हे धन के स्वामी इन्द्र ! तुम्हारे समान पराक्रम कोई भी प्राचीन या नवीन पुरुष नहीं कर सकता ।५। (२४)

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानांधेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६
आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्र कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७
वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०

बृहस्पतिर्नः परि पातु प्रेश्चादुतोत्तरस्माद धरादघायोः ।
इन्द्रः पुरुस्तादुतमध्यतो नःसखासखिभ्यो वरिव कृणोतु ।।११।२३

कामनाओं के सिद्ध करने वाले इन्द्र सबकी स्तुतियाँ सुनते हैं । धन देने वाले इन्द्र मनुष्यों में ही वास करते हैं। इन्द्र जिस यजमान के यश में प्रीति पाते हैं । वह यजमान अपने वैरियों के हराने में समर्थ होता है ।६। जैसे जल सोते छोटे जलाशय में तथा नदियों में जाते हैं वैसे ही सोमरस इन्द्र में जाता है । जैसे दिव्य जल वाली वर्षा जो की कृषि की वृद्धि करती है, वैसे मेधावी जन इस सोम के तेज की यज्ञ स्थान में वृद्धि करते हैं ।७। जैसे परस्पर क्रोधित बैल एक दूसरे की ओर दोड़ते हैं, वैसे ही इन्द्र मेघ की ओर दोड़कर जल को निकालते हैं । जो व्यक्ति दान देने में उदार है, जो सोमयाग का कर्त्ता है और जो हव्य प्रदान करता है, उसे धनवान् इन्द्र तेज प्रदान करते हैं ।८। तेजस्वी श्रेष्ठ आलोक को धारण कर सुशोभित हों । वे सज्जनों के रक्षक इन्द्र सूर्य के समान तेज से प्रकाशमान हों, उस इन्द्र का तेज वज्र सहित प्रकट हो । प्राचीनकाल के समान ही अब भी यज्ञ में स्तोत्रादि कहे जाँय ।६। इन्द्र अनेकों द्वारा आहूत हैं । वे हमारे जौ से भूख मिटावें । हम राजाओं के साथ आगे बढ़ते हुए अपनी ही शक्ति से शत्रु के महान् धनों को विजय करें और गौओं के द्वारा हम अपनी दरिद्रता को दूर भगादें ।१०। बृहस्पति हमें पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं के शत्रुओं से रक्षित करें । इन्द्र पूर्व और मध्य दिशाओं में हमारी रक्षा करने वाले हों । वे इन्द्र हमारे मित्र हैं, हम भी उनके मित्र हैं, वह इन्द्र हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ।११। (२५)

सूक्त ४४

(ऋषि- —कृष्णः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ।।१।

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नपते गभस्तौ ।
शोभ राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वधाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२
एन्द्रवाहो नपति वज्रबाहु सग्रासस्तविशास एनम् ।
प्रत्वक्षस वृषभं सत्यशुष्ममस्त्रता सधनादो वहन्तु ॥३
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भ धरण आ धृषायसे ।
ओजः कृव संगृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४
गमन्नस्मे वसून्या हि शसिषं स्वाशिष भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव
पात्राणि धर्मणा ॥५।२६

शरीर में स्थूल, बल में महान् और बल-सम्पन्न पदार्थों के बल को हीन कर देने वाले इन्द्र अपने रथ पर आरूढ़ होते हुए यहाँ वज्र आवें और प्रसन्नता प्राप्त करें ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारा रथ सुन्दर प्रकाश से निर्मित हुआ है । तुम्हारे रथ के दोनों अश्व चतुर हैं तुम वज्र को धारण किये हुए हो । हे स्वामिन् ! तुम ऐसे रूप से ही यहाँ आओ । यह सोम तुम्हारे पीने के लिये रखा है उसके द्वारा हम तुम्हें अधिक बलवान् कर देंगे ।२। नेता श्रेष्ठ इन्द्र के हाथ में वज्र रहता है । उनका क्रोध निरर्थक नहीं वे शत्रुओं को अपने बल से निर्बल बना देते हैं । उन इन्द्र को उनके हर्यश्व हमारे यज्ञ में लेकर आवें ।३। यह सोम कलश में संयुक्त होता है । यह बल का संचार करने वाला और शरीर का पोषक हैं । अतः हे इन्द्र ! इस सोमरस को अपने उदर में सींचो । फिर मुझे अपना मित्र बनाते हुए मेरे देह में बल की वृद्धि करो । तुम मेधावी जनों के स्वामी और इन्हें सब प्रकार समृद्ध करने वाले हो ।४। हे इन्द्र ! मैं स्तुति करने वाला हूं । विश्व का धन मेरे समीप आवे । मैंने अपनी श्रेष्ठ कामनाओं की सिद्धि के लिए सोम-याग की योजना की है । हे सब के भूतों स्वामिन् ! तुम यहां आकर कुश पर विराजमान होओ । तुम्हारे पीने के लिए सोम से पूर्ण जो पात्र

सजाए गये हैं उन्हें अन्य व्यक्ति बलपूर्वक पीने में समर्थ नहीं हैं ।५।

(२६)

पृथक्प्रायन्प्रथमा ते वहूतयोऽकृण्वत श्रयस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुयज्ञियाँ नावममारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६
एवंवापागपरे सन्तु दूढयोऽश्वा येषां दुर्युज आयुतुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७
गिरींरज्रान्नेजमानां अधारयद्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे विष्कभायतिवृष्णःपीत्वामद उक्थानिशंसति ॥८
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवस्बोध्याभगः ॥९
घोभिष्टरे मामतिं दुरेवां ययेन क्षुध पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०
बृहस्पतिनः परि पातु श्वादुतोत्तरस्मादधरादपायोः ।
इन्द्रःपुरस्तादुतमध्यतोनः सखासखिभ्योवरिवः कृणोतु ॥११।२७

जो प्राचीन कालीन मेधावी पुरुष अपने यज्ञों में देवताओं का आह्वान् करते थे, उन्होंने समस्त वनों को प्राप्त करके श्रेष्ठ गति पाई है । परन्तु जो दुष्कर्म करने वाले रहे हैं अथवा जो यज्ञ रूप नाव पर नहीं चढ़े, वे पतित हो गये और उनके सिर ऋण का बोझ भी बढ़ गया ।६। वर्तमान काल में जो कुबुद्धि वाले व्यक्ति देव विमुख है, वे भी पतित ही हैं । भविष्य में वे किसी गति को प्राप्त होंगे यह कोई नहीं जानता । जो व्यक्ति यज्ञादि कर्मों में दान करते हैं वे अत्यन्त भोग पदार्थों से सम्पन्न लोक को प्राप्त होते हैं ।७। जब इन्द्र सोम पीकर हर्षयुक्त होते हैं तब वे सब ओर घूमते ओर काँपते हुए मेघों को स्थित करते हैं । उस समय विचलित हुआ आकाश भी कम्पित सा हो जाता है । परस्पर मिले हुए द्यावा-पृथिवी को इन्द्र पूर्ववत् अवस्था में रखते हुए श्रेष्ठ शब्द करते हैं ।८। हे इन्द्र ! यह उत्तम

रीति से निमित्त अंकुश तुम्हारे निमित्त ही मैंने हाथ में लिया है। इस स्तोत्र रूप अंकुश से ही तुम बड़े बड़े हाथियों को अपने वश में रखते हो। हे ऐश्वर्य सम्पन्न! इस सोम-याग में अपने स्थान पर विराजमान होते हुए हमें श्रेष्ठ सौभाग्य प्रदान करो।९। इन्द्र अनेकों द्वारा बुलाये गये हैं, यह जो से अपनी भूख मिटावें, हम राजा के साथ आगे बढ़ते हुए रणक्षेत्र में अपने बल से महान् धनों के विजेता हों और इन्द्र से प्राप्त गौओं के द्वारा दुःख और दरिद्रता से छूट जाँय।१०। वृहस्पति पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। इन्द्र पूर्व और मध्य दिशाओं में हमारी रक्षा करने वाले हों। इन्द्र के सखा हैं, अतः वे इन्द्र हमारी कामनाओं को पूर्ण करें।११। (२७)

सूक्त ६८

(ऋषिः—वत्सप्रिः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं जातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्त्रमिन्धाच्च एनं जरते स्वाधीः ॥१

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाँसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीलुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पंच ॥६।२६

अग्ने का प्रथम जन्म स्वर्गलोक में विद्युत् के रूप में हुआ । उनका द्वितीय जन्म हम मनुष्यों के मध्य हुआ, तब वे सबके जानने वाले कहलाये । उनका तृतीय जन्म जल में हुआ । मनुष्यों का हित करने वाले अग्नि सदा प्रज्वलित होते हैं । उनकी स्तुति करने वाले जन उनकी ही सेवा करते हैं ।१। हे अग्ने ! हम तुम्हारे तीनों रूपों के ज्ञाता हैं । जहाँ जहाँ तुम्हारा निवास है, उन स्थानों को भी हम जानते हैं । हम तुम्हारे निगूढ़ नाम और तुम्हारे उत्पन्न होने के स्थान के भी जानने वाले हैं । तुम जहाँ से आते हो यह भी हम जानते हैं ।२। हे अग्ने ! वरुण ने तुम्हें समुद्र के जल में प्रज्वलित कर रखा है । तुम आकाश के स्तन रूप सूर्य में भी अपने तेज से प्रज्वलित हो । तुम ही मेघस्थ जल में विद्युत रूप से स्थित हो । मुख्य देवगण तुम्हें तेज प्रदान करते हैं ।३। आकाश में जब अग्नि कड़कते हैं तब वज्र के गिरने का-सा शब्द होता हैं । तब वे अग्नि पृथिवी की लता आदि को स्पर्श करते हैं । जन्म लेते ही अग्नि विस्तृत और प्रवृद्ध रूप से प्रज्वलित होते हैं । आकाश-पृथिवी के मध्य अपनी रश्मियों का विस्तार करने के कारण अग्नि की विशेष महिमा हुई है ।४। प्रातःकाल के प्रथम चरण के जब अग्नि प्रज्वलित होते हैं, उस समय वे अत्यन्त शोभायमान लगते हैं । यह सभी धनों के आश्रय रूप अग्नि स्तुतियों को तीक्ष्ण करते हुए मधुर सोमरस को पुष्ट करते हैं, जल में निवास करने वाले अग्नि धनों के साक्षात् रूप हैं, वे बल के द्वारा उत्पन्न होते हैं ।५। अग्नि जल में जन्म लेते हैं, उन्होंने उत्पन्न होते ही आकाश-पृथिवी को पूर्ण किया और सब पदार्थों को प्रकाशित किया । जब पाँचों वर्णों ने मनुष्यों के

मध्य रहने वाले अग्नि को यज्ञ में प्रकट किया, तब उन अग्नि ने श्रेष्ठ प्रकार से छाये हुए मेघ को चीरकर जल निकाल कर वृष्टि की ।६। (२८)

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इर्यति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७
दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्योद्दुर्मर्षमायु श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥८
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९
आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ उक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०
त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥११
अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२।२९

सबको पवित्र करने वाले अग्नि हवियों की कामना करते हैं। वे सब ओर गमन करने वाले हैं। वे अविनाशी अग्नि मरणशील के मध्य निवास करते हैं। मनोहर रूप धारण करते हुए वे सर्वत्र जाते रहते हैं और अपने उज्ज्वल तेज से आकाश को भी सम्पन्न करते हैं।६। ज्योतिर्मान् अग्नि अत्यन्त तेजस्वी हैं। वे अपने प्रकाश पूर्ण करते हुए महान् शोभा को प्राप्त होते हैं। आकाश ने अग्नि को उत्पन्न किया और वे वनस्पति रूप अन्न सेवन करते हुए ही अमरत्व को प्राप्त हुए।८। हे अग्ने! तुम्हारी ज्वालाएं कल्याण करने वाली हैं। जिस यजमान ने आज तुम्हारे लिये घृतयुक्त पुरोडाश अर्पित किया है, उस श्रेष्ठ यजमान को तुम महान् ऐश्वर्य की ओर करो। उस देवोपासक को सुख स्वच्छन्दता प्राप्त हो।९। हे अग्ने! जब श्रेष्ठ अन्न के साथ

यज्ञ किया जाय, तभी तुम यजमान पर कृपा करो। वह यजमान सूर्य और अग्नि का प्रिय भक्त हो। उसका पुत्र या होने वाला पुत्र उसके साथ ही शत्रु का वध करने वाला हो।१०। हे अग्ने ! यजमान तुम्हें नित्यप्रति श्रेष्ठ हव्य अर्पित करते हैं, देवताओं ने तुम्हारे साथ मिलकर यजमान की धनेच्छा को सिद्ध करने के निमित्त उसके लिये श्रेष्ठ गोओं से पूर्ण गोष्ठ का द्वार खोल डाला था।११। जिस अग्नि की सुशोभित आभा मनुष्यों में निवास करती है और जो अग्नि सोम का पालन करते हैं, उन अग्नि का ऋषियों ने स्तव किया है। हे देवताओ ! हमको धन और बल प्रदान करो। हम द्वेष-रहित द्यावा-पृथिवी का आह्वान करते हैं ॥१२॥

(२६)

॥ इति सप्तमोष्टकः ॥

———

अष्टम अष्टक

सूक्त ४६

(ऋषि— वत्सप्रि: । देवता—अग्नि: । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषदा सीददपामुपस्थे ।
दधिर्यो धाधि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनू पाः ॥१
दम विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चलन्तमुशिजो नभोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥२
इमंत्रितो भूयविन्दच्छन्वै भूवसो मूर्धन्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभियुंवा भवति रोचनस्य ॥३
मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्रांच नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावक हव्यवाह दधतो मानुषेषु ॥४
प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥५॥१

मनुष्यों के मध्य निवास करने वाले अग्नि, जल में रहने वाले अग्नि और आकाश में उत्पन्न अग्नि अपने गुणों से ही महिमावान् होकर यजमानों के होता बने हैं। यज्ञ को धारण करने वाले यह अग्नि वेदी पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। हे वत्सप्रि ! तुम अग्नि के पूजक हो। वे अग्नि तुम्हें अन्नादि ऐश्वर्य प्रदान करें और तुम्हारे देह की भी रक्षा करें ।१। ऋषियों ने जल में रहने वाले अग्नि को, चुराये हुए पशु को ढूँढ़ने के समान, ढूँढ़ा तब उसमें अत्यन्त मेधावी भृगुओं ने एक त स्थान में विराज-

मान अग्नि की स्तुतियों के द्वारा प्राप्त किया ।२। अग्नि की कामना करते हुए विभुवस-पुत्र त्रित ने श्रेष्ठ अग्नि को पृथिवी पर प्राप्त किया । यह अग्नि स्वर्ग लोक के नाभि रूप हैं । वह यजमानों के घरों में उत्पन्न होने वाले तरुज अग्नि सुख की वृद्धि करने वाले हैं ।३। अग्नि आह्वान के योग्य, यज्ञ योग्य, पवित्र करने वाले, गतिमान् हवियों के वहन करने वाले हैं । ऋषियों ने इन्हें अपने श्रेष्ठ स्तोत्रों से बढ़ाया है ।४। हे स्तोताओं ! यह अग्नि, मेधावियों के धारण करने वाले और विजयशील हैं । यह सब मनुष्य के जानने वाले पुरिओं को तोड़ने वाले, स्तुत्य, अरुणि-गर्भ और ज्वालामय हैं । तुम इन्हीं की स्तुति करो । क्यों सब विद्वान् इन्हें हवि देकर इच्छित फल प्राप्त करते हैं ।५। (१)

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः सङ्गृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्ररीयते नॄन् ॥६
अस्याजरासो दमामरित्रा अचद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवोचनषदा वायवो न सोमाः ॥७
प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ॥८
द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टामापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईलेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ॥९
यं त्वा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन्यशसः स हि पूर्वीः ॥१०।२

गार्हपत्यादि तीन रूप वाले अग्नि यजमानों के घरों को स्थिर करते हैं । यह ज्वालाओं से सम्पन्न होकर यज्ञ वेदों में विराजमान होते हैं । मनुष्यों द्वारा दी गई हवि आदि से पुष्ट होते हुए अग्नि यजमानों के लिए दान की कामना करते हैं और शत्रुओं का संहार करने वाले वे अग्नि देवताओं के पास गमन करते हैं ।६। यह यजमान अनेक अग्नियों से सम्पन्न हैं । वे सब अग्नि जरा-रहित शत्रुओं को वश में करने वाले

पवित्रकर्त्ता, उज्ज्वल, वनवासी और श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त हैं। जैसे सोम शीघ्रगामी हैं, उसी प्रकार अग्नि भी शीघ्रता से गमन करते हैं।७। जो अग्नि पृथिवी की रक्षा के लिए अनुकूल स्तोत्रों से धारणकर्त्ता और और अपनी ज्वालाओं के कर्मों के धारण करने वाले हैं मेधावी मनुष्य उन्हीं पवित्र करने वाले, स्तुत्य, तेजस्वी, यज्ञ के योग्य और आह्वान करने वाले अग्नि को स्थापित करते हैं।८। आकाश पृथिवी में उत्पन्न होने वाले अग्नि को जल, त्वष्टा और भृगु-वंशियों ने अपने स्तोत्रों द्वारा पाया था और मातरिश्वा, तथा अन्य देवताओं ने जिन्हें मनुष्यों के यज्ञादि कर्म के लिये प्रकट किया था, वे अग्नि स्तुतियों के पात्र हैं।९। हे अग्ने ! देवताओं ने तुम्हें धारण किया था। तुम हवियों के वहन करने वाले हो। तुम्हारी कामना वाले मनुष्यों ने तुम्हें स्थापित किया है। देवोपासक यजमान तुम्हारे द्वारा यश पाता है। हे पावक ! मुझ स्तोता को अन्न प्रदान करो।१०। (२)

सूक्त ४७

(ऋषि—सप्तगुः । देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः । छन्द—त्रिष्टुप्)

जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा: ॥१
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतु:समुद्रं वरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा: ॥२
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा: ॥३
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा: ॥४
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दा: ॥५।३

हे इन्द्र ! तुम विविध धनों के स्वामी हो। हम धन की अभिलाषा

से तुम्हारे दक्षिण हस्त को ग्रहण करते हैं। तुम अनेक गौओं के अधिपति हो, अतः हमको पूर्ण करने वाला अद्भुत और श्रेष्ठ धन प्रदान करो ।१। हे इन्द्र ! तुम हमको श्रेष्ठ और वर्षक धन प्रदान करो। क्योंकि हम तुम्हें सुन्दर रक्षा, तीक्ष्ण आयुध, चारु नेत्र, समुद्र को जल से पूर्ण करने वाले धनों के धारणकर्त्ता, अनेकों द्वारा स्तुत और दुःखों का शासन करने वाला जानते हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम हमें देवताओं का उपासक, श्रेष्ठ रूप वाला, प्रतिष्ठावान, गम्भीर, मेधावी, स्तुतिशील, ज्ञानी, शत्रुहन्ता सम्मान के योग्य और वर्षक पुत्र प्रदान करो ।३। हे इन्द्र ! तारने वाला, सुन्दर बल वाला, मेधावी, वर्षक,सत्य कर्म वाला, प्रवृद्ध, अन्नवान् शत्रु नाशक, शत्रु पुरियों का ध्वंसक और अद्भुत कर्मा पुत्र हमें दो ।४। हे इन्द्र ! वीर, रथी, गवादि धन से सम्पन्न, सेवकों का प्रिय स्वामी, ब्राह्मणों का कृपा पात्र, अन्नवान्, प्रतिष्ठित, अश्वों से युक्त श्रेष्ठ पुत्र हमें प्रदान करो ।५।।

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधाँ बृहस्पतिं मतिअच्छा जिगाति ।
व आङ्गिरसो नमसोपद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ।।६
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्य चित्रं वृषणं रयिं दाः ।।७
यस्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयममम जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवो गृणीतामस्मभ्यचित्रवृषणं रयिं दाः ।।८।४

मैं अंगिरा गोत्री सप्तगु हूं। मैं सत्य कर्मों का करने वाला, सुन्दर बुद्धि से युक्त और मन्त्र का स्वामी हूँ। स्तुति मेरे पास गमन करती हैं, और मैं देवताओं के पास नमस्कारों से युक्त हुआ जाता हूँ । हे इन्द्र ! तुम मुझे प्रतिष्ठित और वर्षक पुत्र प्रदान करो ।६। मैं श्रेष्ठ हार्दिक भावों वाले स्तोत्रों को रचकर उनका नित्यप्रति पाठ करता हूं । यह स्तुतियाँ सुनने वालों का हृदय स्पर्श करने वाली हैं। दूत के समान श्रोतागण इन्द्र की सेवा में इन स्तुतियों को कहते हैं। हे इन्द्र ! मुझे पूजनीय और

वर्षक पुत्र-रत्न प्रदान करो ।७। हे इन्द्र ! मैं तुमसे जो याचना करता हूं, मुझे वह प्रदान करो। मुझे अद्वितीय निवास गृह भी प्रदान करो। मुझे पूजनीय और वर्षक पुत्र-धन भी दो। आकाश पृथिवी मेरी इस याचना का भले प्रकार अनुमोदन करें ॥८॥ (४)

सूक्त ४८

(ऋषि—इन्द्रो वैकुण्ठः। देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः। छन्द—जगती)

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयनहेरधि।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णामाददे गोत्रा शिक्षन्दधीचे मातरिश्वने ॥२
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम्।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥३
अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम्।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥४
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥५।५

मैं शत्रुओं के धन का विजेता और श्रेष्ठ धनों का स्वामी हूं। मनुष्य मुझे आहूत करते हैं। पिता जैसे पुत्र को धन प्रदान करता है, वैसे ही मैं, हवि देने वाले यजमानों को श्रेष्ठ अन्न प्रदान करता हूं।१। मैंने ही दध्यङ् ऋषि का शिर काट लिया। मैंने ही कूप में गिरे त्रित की रक्षा के लिए मेघ में जल को प्रेरित किया। मैंने ही शत्रुओं से धन छीना और मैंने ही मातरिश्वा के पुत्र दधीचि के लिए जल को रोकने वाले मेघों को मार कर जल वृष्टि की ।२। देवता मेरे निमित्त यज्ञानुष्ठान से प्रवृत्त होते हैं। त्वष्टा ने मेरे लिए ही लौह वज्र का निर्माण किया था। सूर्य के समान ही मेरी सेना दुर्भेद्य है। मैंने वृत्र-हनन जैसे भीषण कर्म किये हैं इसलिए सब मेरी आराधना करते हैं ।३। जब यजमान मुझे मधुर सोम

अर्पित करते हुए स्तुतियों से सन्तुष्ट करते हैं, तब मैं अपने आयुध द्वारा शत्रु के अश्व, गौ, सुवर्ण ओर दुग्धादि से युक्त सब पशुओं पर विजय पाता हूँ। मैं दानशील यजमान के शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अपने अनेक आयुधों को तीक्ष्ण करता हूं ।४। मैं सभी धनों का अधिपति हूं। मेरे धनों को जीतने का सामर्थ्य किसी में नहीं है । मेरे उपासक को मृत्यु नहीं सताती। हे पुरुषो ! मनुष्य मेरी मित्रता को न तोड़े। हे यजमानो ! तुम अपने अभीष्ट धन की याचना मुझसे ही करो ।५। (५)

असमेताञ्छ्वसतो द्वाद्वेन्द्र ये वज्रं युधयेऽकृष्वत ।
आह्वायमानां अव हन्मनाहन दृलहा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥६
अभी दसेकमेको अस्मि निष्पालभो द्वा किमुसु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मिभूरि किमानिन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥७
अह गुङ्गुभ्यो अतिथिग्व न मिष्करभिष वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्राव ॥८
प्र मे नमी साप्य ईषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु नहयमाददेन शंस्यमुक्थ्य करम् ॥९
प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभ युयुत्संम् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१०
आदित्यानां वसूनाँ रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षु रपराजितमस्तृतमषालहम् ॥११।६

जो घोर निःश्वास छोड़ने वाले शत्रु दो-दो करके, मुझ-आयुधधारी इन्द्र से युद्ध करने लगे और जिन्होंने प्रतिपक्षी के रूप में युद्ध के लिए मेरा आह्वान किया, मैंने उन्हें ललकारा और अपने आयुधों से आघात किया जिससे वे गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गए । मैं इन्द्र किसी के सामने नहीं झुका ।६। मैं आक्रमण करने वाले एक या दो शत्रुओं को शीघ्र ही पराभूत करता हूं, तीन शत्रु मिलकर भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते । धान को मसलने के समय कृषक जैसे अकस्मात् पुराने धान्य स्तम्भों को मसलता है, वैसे ही मैं दुष्ट शत्रुओं का संहार करता हूँ ।७। अतिथिग्व के पुत्र दिवोदास को मैंने ही गुंगुओं के देश में बसाया था,

अब यह गु ंगुओं के बैरियों को मारते, उनके दुःखों को दूर करते और उनका हर प्रकार पोषण करते हैं । मैं पर्णय और करंज नामक शत्रुओं के युद्ध में मारे जाने पर अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था ।८। मेरी स्तुति करने वाले पुरुष सबको आश्रय देने वाले, भोग्य सामग्री प्रदान करने वाले और अन्न से सम्पन्न हैं । मैं उसे जिताने के लिए संग्राम में शस्त्रास्त्र उठाता हुआ स्तोता के यश का विस्तार करता हूँ ।९। दो व्यक्तियों में जो एक व्यक्ति सोम याग करता है, उसके लिए इन्द्र ने वज्र ग्रहण किया और ऐश्वर्य से सम्मन्न बना दिया । हे तीक्ष्ण तेज वाले सोम ! जब यज्ञकर्त्ता से शत्रु ने युद्ध करना चाहा, तभी वह घोर अन्धकार में पड़ गया ।१०। जिन आदित्यों, वसुओं और रुद्रों ने मेरे कल्याण के लिए तथा मुझे अजेय और अहिंसित रखने के लिए किसी अन्न को कल्पित किया है, इन्द्र उन देवताओं के स्थान को नहीं तोड़ते ।११। (६)

सूक्त ३५

(ऋषि-इन्द्रो बैकुण्ठः । देवता-इन्द्रो बैकुण्ठः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥१

मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणाविव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥२

अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभि ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यंम न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥३

अहं पितेव वेतसूंरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्रयद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥४
अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।

अहं वेशं नम्रायवेऽकारमहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ॥५॥७

यज्ञ रूप श्रेष्ठ कर्म मेरी वृद्धि करने वाला है। मैं अपनी प्रसन्नता के लिए यजमान के धन को प्रेरित करता हूं। स्तुति करने वाले पुरुष को मैंने श्रेष्ठ धन प्रदान किया है। जो व्यक्ति यज्ञ नहीं करते, मैं उन्हें युद्धों में पराजित करता हूं।१। जल के जीव, पृथिवी के जीव और स्वर्गस्थ देवता सभी मुझे इन्द्र कहते हैं। मैं संग्राम क्षेत्र में जाने के लिये अपने विभिन्न कर्म वाले बलवान् हर्यश्वों को रथ में योजित करता हूं और विकराल वज्र को शक्ति के लिए ग्रहण करता हूं।२। ऋषि उशना के कल्याण के लिए मैंने अत्क पर प्रहार किया था। विभिन्न साधनों से मैंने ही कुत्स की रक्षा की थी। मैंने वज्र उठाकर शुष्ण का संहार कर डाला। असुरों और दुष्कर्म करने वालों को मैंने कभी भी श्रेष्ठ नहीं कहा।३। मैंने तुग्र और स्मदिभ को कुत्स के अधीन किया। वेतसु नामक देश भी कुत्स को दे दिया। मैं अपने उपासक यजमान को पुत्र ही मानता हूं। मैं उसे ऐश्वर्य से सम्पन्न करता हुआ उसका हित करने वाले सब धन देता हूं।४। श्रुतर्वा ने जब मेरी स्तुति की, तब मैंने मृगय नामक राक्षस को उसके वशीभूत किया। षड्गृभि को सत्य के वश में किया, वेश को आयु के शासन में रखा ॥५॥ (७)

अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं हारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रचनाकरम् ॥६
अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ॥७
अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम् ।
अहं न्यन्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ॥८
अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुर्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥९
अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥१०

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नृ न् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११८

नपवास्त्व और वृहद्रथ को मैंने उसी प्रकार मारा जिस प्रकार वृत्र को मारा था । यह दोनों ही उस समय प्रसिद्ध बलवान् थे । मैंने इनके उज्वल भविष्य को समाप्त कर दिया ।६। द्रुतगामी अश्व मुझे वहन करते हैं, तब मैं सूर्य की परिक्रमा करता हूं । जब सोमाभिषत होने पर यजमान द्वारा मेरा आह्वान किया जाता है, तब मैं हिंसनीय शत्रुओं को अपने तीक्ष्ण आयुधों द्वारा नष्ट कर देता हूँ ।७। मैंने तुर्वंश और यदु को बली बनाकर प्रसिद्ध किया और अन्य स्तोताओं को भी शक्ति प्रदान की । मैंने सात शत्रुओं के नगरों को नष्ट किया । मेरे द्वारा निन्यानवे नगरियाँ ध्वस्त की गईं । जिसे बाँधता हूँ, वह छूट नहीं सकता ।८। सिन्धु आदि सात नदियों को यथा स्थान प्रवाहित रहने के लिये मैंने ही प्रेरित किया है । मैं सुन्दर कर्म वाला और जल की वृष्टि करने वाला हूँ । यज्ञ करने वाले के लिए संग्राम करके मैं ही उसके मार्ग को विस्तृत करता हूँ ।९। गौओं के स्तोतों को मैंने, श्रेष्ठ मधुर और सबके द्वारा काम्य दुग्ध से पूर्ण किया । नदी के समान ही गौ का स्तन भी दूध को धारण करता है । वह दुग्ध जब सोम में मिश्रित होता है, तब अत्यन्त सुस्वादु और सुखकारी होता है ॥१०॥ इन्द्र के पास सर्व धन हैं, इसलिये वे धनी हैं । वे अपनी महिमा से देवताओं और मनुष्यों को भाग्यवान् बनाते हैं । हे इन्द्र ! तुम अश्वों से सम्पन्न तथा अनेकों कर्म वाले हो । तुम्हारे सब कर्म तुम्हारे ही आश्रित रहते हैं । मेधावी ऋत्विज् तुम्हारे उन सभी कर्मों का गुणानुवाद करते हैं ॥११॥ (८)

सूक्त ५०

(ऋषि—इन्द्रो बैकुण्ठः । देवता इन्द्रो बैकुण्ठः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

प्र वो महे मन्दमामायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य तस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसीसपर्यतः ॥१
सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतिश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।

विश्वासु धूर्षु वाज कृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्वभि शूर मन्दसे ॥२
के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्न सधन्य मियक्षान् ।
के से वाजायासुर्याय हिन्वरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ॥३
भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नृँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥४
अवः नूंक ज्यायन् यज्ञवनसो मही त अमात्रा कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेवा सवनाततुमा कृषे ॥५
एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वय सूनो सहसा यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्माणोद्यतं वचः ॥६
ये ते विप्र बह्मकृतः सुते सचा वसूनाँ च वसुनश्च दानवे ।
प्र ते सुम्नस्न मनसा पथा भुवन्मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ॥७॥६

हे स्तोताओ ! इन्द्र सब के रचियता और अधिपति हैं। वे तुम्हारे द्वारा दिये जाने वाले सोम से हर्षित होते हैं उनकी शक्ति अद्भुत है, कीर्ति महान् है। समस्त संसार उनके कर्मों का प्रशंसा करता है। अतः तुम उन्हीं का पूजन करो ।१। सबके स्वामी इन्द्र सभी की स्तुतियों के पात्र हैं। वे भाई के समान ही मनुष्यों का हित करने वाले हैं। हे इन्द्र! तुम सज्जनों का पालन करने वाले हो। जब किसी प्रकार के अत्यन्त शक्ति की आवश्यकता वाले कार्य समुपस्थित हों तब, अथवा जल वृष्टि के लिए भी हमें तुम्हारा पूजन करना चाहिए ।२। हे इन्द्र ! जो भाग्यवान् व्यक्ति राक्षसों के संहार के निमित्त बली बनाने के लिए तुम्हें सोम देते हैं और अन्न, धन आदि वैभव तुमसे पाते हैं, वे कौन हैं ? जो अपने खेत में वर्षा का जल प्राप्त करने के लिऐ और उसके द्वारा अन्न पीने के लिऐ तुम्हें सोम रस अर्पित करते हैं, वे कौन हैं ? ।३। हे इन्द्र इन अनुष्ठानों ने ही तुम्हें महान् बनाया है। तुम सभी यज्ञों में उसका अंश पाने के अधिकारी हो। श्रेष्ठ मन्त्र के समान हो और सभी संग्रामों में तुम प्रमुख बलवान् शत्रुओं का वध करने वाले होते हो ।४। हे इन्द्र ! सब जानते हैं कि सभी श्रेष्ठ रक्षाऐं तुम में संयुक्त है। अतः

तुम जरा रहित रहते हुए वृद्धि को प्राप्त होओ। हे सर्वोत्कृष्ट इन्द्र ! इन यजमानों की रक्षा करो और इस सोम योग को शीघ्र ही सम्पूर्ण करो ।५। हे इन्द्र ! तुम बलवान् हो। तुम जिन यज्ञों को धारण करते हो उन्हें शीघ्र सम्पूर्ण करते हो। तुम्हारी शरण में जाने के लिये हमारे पास यह धन, यह यज्ञ, यह सोम और यह पवित्र स्तुति मन्त्र उपस्थित हैं ।६। हे इन्द्र ! स्तुतियों में रमे हुए विद्वान् तुमसे विविध प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए सोम योग करते हैं। जब सोम रूप अन्न का अभिषव होता है, उस समय तुम स्तुतियों के द्वारा उस सुमधुर सुख को प्राप्त हो ओ ।।७।। (९)

सूक्त ५१

(ऋषि—देवा:, अग्नि: सौचीक: । देवता—अग्नि: सौचीक:, देवा । छन्द—त्रिष्टुप्)

महत्तदुल्वं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः पविशिथापः ।
विश्वा अपश्यद् बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः ।।१
को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो पर्यपश्यत् ।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्यग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः ।।२
ऐच्छाम त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचनम् ।।३
होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ।।४
एहि मनुर्देवयुर्यज्ञ कामोऽरङ्कृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानन्विह हव्यानि सुमनस्यमानः ।।५।१०

हे अग्ने ! जब तुम जल में प्रतिष्ठित हुए थे, तब तुम अत्यन्त मेधावी हुए थे और स्थूलता से ढक गये थे। हे उत्पन्न हुओं के जानने वाले अग्नि देव ! एक देवता ने तुम्हारे विभिन्न रूपों के दर्शन किए ।१।

वे देवता कौन से थे जिन्होंने मेरे विभिन्न रूपों को देखा था ? मित्र वरुण और अग्नि का वह तेज और देवयान को सिद्ध करने वाला वह शरीर कहां है, यह बताओ ? ।२। हे अग्ने ! तुम उत्पन्न जीवों के ज्ञाता हो। जल और औषधियों में तुम्हारा निवास है। हम तुम्हीं को ढूंढ रहे हैं। तुम्हें यम ने देखते ही पहिचान लिया था। उस समय तुम अपने दशों स्थानों से भी अधिक तेजस्वी दिखाई पड़ रहे थे ।३। हे वरुण ! होता का कार्य बड़ा दुष्कर है। मैं उससे डर कर ही यहाँ आगया हूं। मेरी इच्छा है कि देवगण मुझे अब यज्ञ-कर्म में न रखें। इसीलिए मुझ अग्नि का शरीर दश स्थानों म चला गया है। हे अग्ने ! इस समय तुम अन्धकार में हो। इस पुरुष ने यज्ञ करने की इच्छा की है। वह अनुष्ठान का आयोजन भी कर चुका है। अतः तुम यहाँ आकर हवियाँ प्राप्त करने की कामना से मार्ग को सुलभ करो और प्रसन्न मन से हव्यवाहक होओ ।५। [१०]

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजेज्यायाः ॥६
कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥७
प्रजाजान्मे अनुयाजांश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥८
तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो यमस्तु सर्वतुभ्य नमन्तां प्रदशश्चतस्रः ॥६।११

देवताओ ! रथ पर गमन करने वाला पुरुष जैसे दूर देश में पहुंचता है, वैसे ही मुझ अग्नि के तीन ज्येष्ठ बन्धु इस कार्य को करते हुए ही मिट गये। जैसे धनुष वाले की प्रत्यंचा से श्वेत मृग भय मानता है, वैसे ही मैं भी इस कर्म से भयभीत हुआ हूं। इसलिए मैं वहाँ से चला आया हूं ।६। हे अग्ने ! तुम उत्पन्न हुओं के ज्ञाता हो। तुम अजर होओ।

हमारे द्वारा दी गई आयु से तुम मृत्यु को प्राप्त नहीं होगे । अतः अब तुम प्रसन्न मन से हवियों को वहन करते हुए हम देवताओं के पास ले आओ ।७। हे देवगण ! यज्ञ का प्रथम, शेष और अत्यन्त विपुल अंश मुझे प्रदान करो । औषधियों का सारा अंश, दीर्घायु और जलों का सार रूप अंश घृत भी मुझे प्रदान करो ।८। हे अग्ने ! जितने यज्ञ हों, वे सब तुम्हारे ही हों । प्रथम, शेष और विपुल यज्ञ-भाग तुम प्राप्त करोगे । विश्व की चारों दिशाऐं भी तुम्हारे समक्ष झुकने वाली हों ।६। [११]

सूक्त ५२

(ऋषि—अग्निः सौचीकः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥१
अहं होता न्यसीदं यजीयान् विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् ॥२
अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥३
मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥४
आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥५
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥६।१२

हे विश्वेदेवाओं ! तुमने मुझे होता नियुक्त किया है । मुझे जिस मन्त्र का यहाँ उच्चरण करना है, वह मुझे बताओ । इस यज्ञ में तुम्हारा भाग कौन-सा है और मेरा भाग कौन-सा है यह मुझे बताओ । मैं अग्नि इस यज्ञ में दिए गए हव्य को तुम्हारे पास किस मार्ग से पहुंचाऊँ, यह भी बताओ ।१। हे अश्विनीकुमारो ! तुम नित्य प्रति अध्वर्यु का कार्य

करते हो । तेजस्वी सोम मन्त्र के समान हो रहे हैं, उनका पान करते हो। समस्त देवताओं ने और मरुद्गण ने मुझे होता नियुक्त किया है। इसीलिए मैं यज्ञ करने को यहाँ बैठा हूं ।२। होता का कार्य क्या है ? यजमान के जिस द्रव्य का होता हवन करते हैं, वह द्रव्य देवताओं को प्राप्त होता है। प्रत्येक मास अथवा प्रत्येक दिन यज्ञ होते हैं, उन सब अग्नि को हव्यवहन करने के लिए देवताओं ने नियुक्त किया है ।३। मैं चला गला था। मैंने अनेक कष्ट उठाये थे। मुझे अब देवताओं ने हव्य वहनकर्त्ता के रूप में वरण किया है। यज्ञ के पांच मार्ग हैं। तीन सवनों में सोम का अभिषव होता है और सात छन्दों में स्तुति की जाती है। हमारे इन यज्ञों को मेधावी अग्नि सम्पन्न करते हैं । हे देवगण ! मैं तुम्हारा उपासक हूँ । तुम मुझे मृत्यु से रक्षित करो, मुझे सन्तान प्रदान करो । जब मैं इन्द्र के हाथों में वज्र ग्रहण कराता हूं तब वे शत्रुओं की सब सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं ।५। तेतीस सौ उन्तालीस देवों ने भी अग्नि की परिचर्या की थी। उन्होंने अग्नि को घृत से सींचा और यज्ञ में कुश विस्तृत कर उन्हें होता के रूप में प्रतिष्ठित किया [११]

सूक्त ५३

(ऋषि—देवाः, अग्निः सौचीकः। देवता—अग्निः सौचीकः, देवाः।
छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

यमैच्छाम मनसा सो यमागाद्यज्ञस्य विद्वान्पुरुषश्चिकित्वान् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् ॥१
अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहै यज्ञियान्हन्त देवां ईलामहा ईड्यां आज्येन ॥२
साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥३
तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुरां अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥४

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥५॥१३

यज्ञ के जानने वाले अग्नि की हम कामना करते हैं । उनका आगमन हुआ है । वे सम्पूर्ण अङ्ग वाले हैं । उनके समान कोई भी यज्ञ नहीं कर सकता । वे यज्ञ योग्य देवताओं के मध्य वेदी पर प्रतिष्ठित हैं । वे हमारे लिए यज्ञ करें ।१ यज्ञ को भले प्रकार सम्पन्न करने वाले और श्रेष्ठ होता अग्नि यज्ञ-वेदी में प्रतिष्ठित होकर हवि-ग्राहक हुए हैं । वे यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्री का इसलिए निरीक्षण कर रहे हैं, जिससे यजनीय देवताओं के लिए शीघ्र ही यज्ञ किया जाय ।२। हमारे यज्ञ में देवताओं को लाने वाला जो मुख्य कार्य है उसे अग्नि पूर्ण करें । हम अग्नि रूप यज्ञ की जिह्वा को प्राप्त कर चुके हैं । यह अविनाशी अग्नि गौ रूप से यहाँ आये हैं । इन्होंने देवताओं के आह्वान को सम्पन्न किया है ।३। जिस श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा हम राक्षसों को हरा सकें, उसी श्रेष्ठ स्तोत्र को उच्चारित करें । हे पंचजन ! हे मनुष्यादिको ! तुम अन्न के खाने वाले और यज्ञ के करने वाले हो अतः हमारे इस यज्ञ में आकर कार्य करो ।४। पंचजन मेरे यज्ञ का सम्पादन करें । हव्यों के लिए प्रकट हुआ यज्ञार्थ देवता मेरे यज्ञ की परिचर्या करें । पृथिवी और अन्तरिक्ष पाप से हमारी रक्षा करें ।५। (१३)

तन्तु तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥६
अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥७
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः ये शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८
त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा ।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं न येवृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥९

सत्तो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥१०
गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमनायोग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् ॥११

हे अग्ने ! हमारे यज्ञ को बढ़ाते हुए सूर्य मण्डल में पहुंचो । जिन ज्योतिर्मय मार्गों को श्रेष्ठ कर्मों द्वारा पाया जाता है उनके रक्षक होओ । तुम पूजनीय होकर देवताओं को यज्ञ में बुलाओ और स्तोताओं के कार्य में उपस्थित विघ्नों को दूर करो ।६। हे सोम के पात्र देवगण ! तुम अपने अश्व की लगाम को स्वच्छ करो और अपने रथ में अश्वों को योजित करो । अपने उन श्रेष्ठ अश्वों को सुसज्जित करो । तुम्हारा रथ आठ सारथियों के स्थान वाला है, उन्हें सूर्य के रथ सहित इस यज्ञ में ले आओ । देवगण इसी रथ के द्वारा गमन करते हैं ।७। हे देवताओ ! अश्मन्वती नाम वाली नदी प्रवाहित है । तुम इसे लांधकर पहुंचो । हम तुम्हारी उपस्थित से दुःखों से छुटकारा पा सकेंगे । तुम्हारे द्वारा ही हम नदी से पार होंगे और अन्न रूप श्रेष्ठ धन प्रदान करेंगे ।८। त्वष्टा देव श्रेष्ठ पात्र बनाते हैं, उन्होंने देवताओं के लिए शोभन पात्रों का निर्माण किया है । वे श्रेष्ठ लौह से निर्मित कुठार को तीक्ष्ण करते हैं । ब्राह्मणस्पति उसी कुठार से पात्र योग्य काष्ठ को काटते हैं ।९। हे विद्वानो ! तुम अपने जिस कुल्हाड़े से अमृत पीने के योग्य पात्रों का निर्माण करते हो, उस कुल्हाड़े को भले प्रकार तीक्ष्ण करो । तुम हमारे लिए वह निवास-गृह निर्मित करो, जिसमें रह कर देवताओं ने अमरत्व प्राप्त किया था ।१०। ऋभुओं ने मरी हुई गौओं में से एक गौ को रखा और उसके मुख में एक बछड़ा भी रखा । वे देवता बनना चाहते थे । उनका कुठार इस कार्य को सम्पूर्ण करने में साधन रूप है । शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले ऋभुगण अपने योग्य श्रेष्ठ स्तोत्रों को व्यवहृत करते हैं ।११। (१४)

सूक्त ५४

(ऋषि—बृहदुक्थो वामदेव्य । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तां सु ते कीर्ति मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ अतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१
यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
माचेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२
क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥३
चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥४
त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥५
यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥६।१५

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा को कहता हूँ । भयभीत द्यावा-पृथिवी ने जब तुम्हारा आह्वान किया तब तुमने देवताओं का पालन किया था । यजमान को शक्ति प्रदान करते हुए तुमने दुष्ट राक्षसों को मार डाला था ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारा शत्रु कोई नहीं हैं । पहिले भी कभी कोई शत्रु नहीं था । तुमने अपने देह को अधिक पुष्ट करके बल से सिद्ध होने वाले जिन कार्यों को पूर्ण किया था, वे सब माया द्वारा ही पूर्ण हो जाते हैं । तुम्हारे सभी कार्य मायामात्र हैं ।२। हे इन्द्र ! हमारे पूर्व ऋषियों ने भी तुम्हारी माया का आदि अन्त नहीं पाया । तुमने अपने माता-पिता रूप आकाश पृथिवी को अपने ही देह से प्रकट किया है ।३। हे इन्द्र तुम्हारी महिमा बलवती है । तुम्हारी अहिंसनीय देह राक्षसों का नाश करने में समर्थ है । तुम अपनी उसी विस्तृत देह से सभी महान् कार्यों को

सम्पन्न करते हो ।४। हे इन्द्र ! तुम प्रकट होकर दोनों प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी हो । सभी पर तुम्हारा अधिकार है । हे इन्द्र ! तुम दान करने का स्वयं ही आदेश करते हो और स्वयं ही दान करते हो । अतः मेरी कामनाओं को सिद्ध करने वाले होओ ।५। जिन इन्द्र ने तेजोमय पदार्थों में ज्योति स्थापित की है, जिन्होंने मधु प्रदान द्वारा सोम-रस जैसे मधुर पदार्थों को उत्पन्न किया है बृहद् उक्त मन्त्रों के रचयिता ऋषि ने उन्हीं इन्द्र के लिए श्रेष्ठ और बल करने वाली स्तुति की थी ।६।   (१५)

सूक्त ५५

(ऋषि—बृहदुक्थो वामदेव्यः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥१
महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्न जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः सतविशन्त पंच ॥२
आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३
यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असूरत्वमेकम् ॥४
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पय काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥५।१६

हे इन्द्र जब आकाश-पृथिवी तुम्हारे देह को अन्न के लिए आहूत करते हैं, तब तुम अपने वश में पड़े मेघों को तीक्ष्ण करते हो और आकाश को पृथिवी के आकर्षण में रखते हो ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारा अप्रकट देह अत्यन्त बल-सम्पन्न है । भूत और भविष्यत काल तुम्हारे उसी शरीर से प्रकट हुए हैं । जिन प्रकाशमान वस्तुओं को तुमने प्रकट करने की इच्छा की, उन्हीं से सब प्राचीन पदार्थों की उत्पत्ति हुई, जिससे पाँचों वर्ण पुष्ट

हुए ।२। आकाश-पृथिवी और अन्तरिक्ष को इन्द्र ने ही अपने शरीर से सम्पन्न किया। वे ही पञ्चजनों को अपने तेज द्वारा धारण करते हैं। उन्हीं ने सात तत्वों को अपने विभिन्न कार्यों में नियुक्त किया। सब कार्य समान भाव से होते हैं। इन सब कार्यों में इन्द्र के सहायक तीस देवता लगे रहते हैं ।३। हे इन्द्र ! सब ज्योतिर्मय पदार्थों को तुमने ही ज्योति दी है। उषा और नक्षत्र आदि सब तुम्हारे ही प्रकाश से प्रकाशित हैं। जो पुष्ट है वह तुम्हारी ही पुष्टि के द्वारा पुष्ट हुआ है। तुम दिव्यलोक में रहते हुए भी पार्थिव मनुष्यों के बन्धु बनते हो। यह तुम्हारे श्रेष्ठ बल और महिमा का प्रत्यक्ष उदाहरण है ।४। इन्द्र अपनी तरुणावस्था में ही सब कार्यों के करने वाले होते हैं। रणक्षेत्र में उनके भय से भीत अनेक शत्रु पलायन कर जाते हैं। परन्तु कालों में अत्यन्त प्रवृद्ध काल उन सबका भक्षण कर लेता है। यह भी उनकी ही महिमा है कि जो कल जीवित थे, वे आज मृत्यु को प्राप्त होते हुए मिट गये ।५। (१६)

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीलः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥६
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥७
युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून ॥८।१७

इस आने वाले पक्षी का बल विस्तृत है। उस पक्षी का कोई नीड़ नहीं है। यह विकराल, महान् तथा सनातन है। उसकी जो इच्छा होती है संसार में वही होता है। वह शत्रुओं के जिस धन को जीतता है, उसे अपने उपासकों में वितरित कर देता है ।६। मरुद्गण के साथ ही इन्द्र ने वर्षा करने वाले सामर्थ्य को पाया। मरुद्गण के साथ ही उन्होंने वृत्र को विदीर्ण कर जल-वृष्टि द्वारा पृथिवी को सींचा ! जब महान् इन्द्र कोई कार्य करना चाहते हैं तब मरुद्गण वर्षा को उत्पन्न करने में यत्नशील होते हैं ।७। इन्द्र यह सभी कार्य मरुद्गण की सहायता से पूर्ण

कहते हैं। वे सभी राक्षसों को हनन करने वाले हैं। उनका तेज सब ओर जाने वाला है। उनका मन विश्व में रमा हुआ है। वे शीघ्रतापूर्वक विजय करने वाले हैं। इन्द्र ने सोम पीकर शरीर की वृद्धि की और राक्षसों को मार डाला। ८। (१७)

सूक्त ५६

(ऋषि–वृहदुक्था वामदेव्यः। देवता–विश्वेदेवाः । छन्दः–त्रिष्टुप् जगती)

इदं त एकं पर ऊत एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥१
तनूष्टे वाजिन्तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम्।
अहृ्तो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मीमीया ॥२
वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिव गाः।
सुवितो धर्मं प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ॥३
महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनुषु नि विवशुः पुनः ॥४
सहोभिर्विश्वं परि चक्रमु रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः।
तनूषु विश्वा भुवना येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥५
द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमा स्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वादधुस्तन्तुमाततम् ॥६
नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
स्वां प्रजां वृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥७।१८

हे वाजी! यह अग्नि तुम्हारा एक अंश मात्र ही है। यह आयु भी तुम्हारा ही अंश है। ज्योतिर्मय आत्मा तुम्हारा तृतीय अंश है। तुम अपने तीनों अंशों के द्वारा अग्नि, सूर्य और वायु में प्रतिष्ठित होओ। तुम अपने शरीर में प्रविष्ट होते समय कल्याणरूप बनो और सूर्य के लोक में सबसे स्नेह प्राप्त करो। १। हे पुत्र! पृथिवी ने तुम्हारे देह को

धारण किया था । वह हमारा और तुम्हारा दोनों का मङ्गल करे । तुम अपने स्थान से मत गिरो । अपने तेज को प्रदीप्त करने के लिए,सूर्य मण्डल में स्थित सूर्य अपनी आत्मा को युक्त करो।२। हे पुत्र! तुम सुन्दर रूप बल वाले हो। तुमने जिस प्रकार श्रेष्ठ स्तुति की थी उसी प्रकार लोकों में श्रेष्ठ स्वर्ग को प्राप्त होओ । श्रेष्ठ कर्म करने के कारण तुम्हें श्रेष्ठ फल मिले। श्रेष्ठ देवताओं और सूर्य से तुम संयुक्त होओ । ३ । देवताओं के समान महिमा हमारे पितरों को भी मिली है । वे देवत्व को प्राप्त होकर उनके साथ समान व्यवहार करने वाले हुए हैं । उन्होंने देवताओं के शरीर में निवास किया है । जितने भी ज्योतिर्मय पदार्थ हैं वे सब उनके साथ संयुक्त हुए हैं । ४ । वे पितर अपनी शक्ति से समस्त लोकों में घूम चुके हैं । जिन प्राचीन लोकों में जाने की शक्ति किसी में नहीं है, उन सब लोकों में विचरण किया है । सब लोकों में उन्होंने अपने शरीर से व्याप्त किया है और अपने तेज को समस्त प्रजाओं में बढ़ाया है । ५ । सूर्य के पुत्र के समान देवताओं ने स्वर्ग के जानने वाला सर्वज्ञाता और बलवान् सूर्य की दो प्रकार से प्रतिष्ठा की है । सन्तानोत्पत्ति–द्वारा मेरे पितरों ने पैतृक बल को स्थिर किया और तब उनका वंश चिरस्थायित्व को प्राप्त हुआ । ६ । मनुष्य जैसे नाव द्वारा जल से पार होते हैं, पृथिवी की भिन्न दशा को जिस प्रकार लांघते हैं, जिस प्रकार कल्याण साधनों द्वारा विपत्तियों से छुटकारा मिलता है, उसी प्रकार बृहदुक्थ ऋषि ने अपने मृत पुत्र को अपने बल से अग्नि आदि पृथिवी के तत्वों में नया सूर्यादि दिव्य तत्वों में युक्त कर दिया । ७ । (१८)

सूक्त ५७

(ऋषि- बन्धुःसुबन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायनाः । देवता–विश्वेदेवाः । छन्द गायत्री)

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥१

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः तमाहुतं नशीमहि ॥२
मनोन्वा हुवामहे नाराशमेन सोमेन । पितृणां च मन्मभिः॥३
आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥५
वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥६

हे इन्द्र ! हम सुमार्गगामी हों । कुपथगामी न बनें । हम सोमवान् यजमान के घर से दूर न रहें । शत्रु हम पर बलवान् न हो सकें । १ । जो अग्नि पुत्ररूप होते हुए देवताओं के समान ही विशाल हैं, जिन अग्नि के द्वारा यज्ञ-कार्य सम्पन्न होते हैं । हम उन अग्नि को पाकर यज्ञ करें । २ । हम पितरों के सोम से मन को आहूत करते हैं । पितरों के स्तोत्र से भी मन का आह्वान करते हैं । ३ । हे भ्राता ! तुम्हारा मन पुनः आगमन करे । तुम कार्य द्वारा बल प्रकट करो । जब तक जीवित रहो, सूर्य के दर्शन करते रहो । ४ । हमारे पूर्वज मन को पुनः प्राप्त करावें । प्राण और उसकी सब विभूतियों को हम प्राप्त करें । ५ । हे सोम ! अपने शरीर में हम मन को प्रतिष्ठित करते हैं । हम सन्तानों से सम्पन्न होकर तुम्हारे कार्य में लगने वाले हों और यज्ञ करें । ६ । (१९)

सूक्त ५८

(ऋषि— बन्ध्वादयो गौपायनाः । देवता—मन आवर्तनम् । छन्द—अनुष्टुप्)

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१
यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥२
यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।

तत्तआ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।३

यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्ततयामसीह क्षयाय जीवसे ।।४

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।५

यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।६।२०

हम तुम्हारे मन को विवस्वान्–पुत्र गृह के पास लौटा लाते हैं । हे सुबन्धु ! तुम इस जगत् में रहने के लिए ही जीवित रहना चाहते हो । १ । हे सुबन्धु ! सुदूर स्वर्ग में गये हुए तुम्हारे मनको हम पुनः लौटाते हैं तुम इस संसार में रहने के निमित्त ही जीते रहना चाहते हो । २ । हे भ्राता ! सब ओर झुक जाने वाले तुम्हारे मन को अत्यन्त दूर के लोकों से लौटा कर लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए जीवन कामना करते हो । ३ । हे सुबन्धु ! अत्यन्त दूरस्थ प्रदेश को प्राप्त हुए तुम्हारे मन को हम लौटा लाते हैं क्योंकि तुम जगत् में निवास करने के लिये ही जीवित हो । ४ । हे सुबन्धु ! तुम्हारा जो मन जल से सम्पन्न और अत्यन्त दूरस्थ समुद्र में चला गया है, उसे हम लौटा लाते हैं क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए जीवित हो । ५ । हे बन्धो ! तुम्हारा जो मन सब ओर विस्तृत रश्मियों में स्थित हो गया है उसे लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए ही जीवित हो । ६ । (२०)

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।७

यत्ते सूर्यं यदुषस मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८

यत्ते आ पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥११

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१२॥२१

हे सुबन्धो ! हम तुम्हारे गए हुए मन को वृक्षादि से दूरस्थ जल से लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम जगत् में रहने के लिए ही जीवित हो ।७। हे भ्राता ! सूर्य में या उषा में जाकर रमे हुए तुम्हारे मन को हम लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने की इच्छा करते हुए ही जीवित हो ।८। हे सुबन्धो ! संसार में अत्यन्त दूर गये तुम्हारे मन को हम पुनः लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने के लिए ही जीवन धारण किये हुए हो ।१०। हे सुबन्धो ! दूर से भी गये हुए तुम्हारे मन को हम उस स्थान से लौटा लाते हैं, क्योंकि तुम संसार में रहने की इच्छा करते हुए ही जीवित हो ।११। हे भ्राता ! तुम्हारा जो मन भूत, भविष्यत् आदि जिस किसी काल से युक्त हो गया है, उसे हम लौटाते हैं क्योंकि तुम संसार में रहना चाहते हुए ही जीवित हो ॥१२॥ [२१]

सूक्त ५६

(ऋषि—बन्ध्वाद्यो गौपायना: । देवता—निर्ऋतिः, । निर्ऋतिः सोमश्च । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति, जगती)

प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥१
सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ।
अभीष्वर्यः पौंस्यैर्भवेष द्यौर्न भूमि गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥३
मो षु णः सोम मृत्यवे परा दा पश्येम: नु सूर्यं मुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥४
असुनीते मनो अस्मायु धारय जीवातवे सु प्र मिरा न आयुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्व वर्धयस्व ॥५

चतुर सारथि के कारण रथारूढ़ व्यक्ति जैसे आश्वस्त रहता है, उसी प्रकार सुबन्धु की आयु वृद्धि हो। क्योंकि जिसकी आयु क्षीण होती है, वह अपनी आयु के बढ़ने की कामना करता है। सुबन्धु के पास से निर्ऋति दूर हो जाय ।१। हम परमायु की प्राप्ति के लिए सोमपान करते हुए यज्ञ के लिए अन्न आदि हव्य एकत्रित करते हैं। निर्ऋति देवता का भी हमने स्तव किया है। वह हमारे समस्त पदार्थों से प्रसन्न होते हुए हमसे बहुत दूर चले जांय ।२। पृथिवी से आकाश जैसे ऊँचा है, वैसे हम शत्रुओं को बलपूर्वक पराभूत करते हुए उनसे ऊँचा स्थान पावें। मेघ की गति को पर्वत जैसे रोक लेता है, वैसे ही हम शत्रुओं की गति को रोकने में समर्थ हों। निर्ऋति देवता हमारी स्तुति को सुनकर हमसे दूर चले जाँय ।३। हे सोम ! हम उदय होते हुए सूर्य के नित्य प्रति दर्शन करें। हमारा बुढ़ापा सुखपूर्वक व्यतीत हो निर्ऋति हमारे पास से दूर होजाय । तुम हमको मृत्यु के मुख में मत डालना ।४।

हे असुनीत ! अपने मन को हमारी ओर करो । हमारे जीवन के लिए श्रेष्ठ परमायु दो । सूर्य जहाँ तक देखते हैं, हमें वहाँ तक रहने वाला बनाओ । हम तुम्हारी पुष्टि और प्रसन्नता के निमित्त यह घृताहुति देते हैं ।।५।। [२२।

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृलया नः स्वस्ति ।।६
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ।।७
शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवी क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ।।८
अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः ।
पृथिवि क्षर रपो मोषुते किं चनाममत् ।।९
समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामपयद्रपोद्यौः पृथिविक्षमारपोमो षु ते किं चनाममत् ।।१०।२३

अनुनीति ! हमारे प्राण को पुनः हमारे समीप लाओ । हमें नेत्र पुनः प्रदान करो जिससे हम भोगों में समर्थ हों । हम कभी नाश को प्राप्त न हों और सदा हमारा मङ्गल हो । हम चिरकाल तक सूर्य के दर्शन करने वाले हों ।६। आकाश और अन्तरिक्ष हमें पुनः प्राण प्रदान करें । पृथिवी हमें पुनर्जीवित करे । सोम हमारे देह को पुनः बनावे और पूषा हमको सर्वश्रेष्ठ और मङ्गल करने वाली वाणी प्रदान करें जिसके द्वारा हम अपना हित-साधन कर सकें ।७। महिमामयी आकाश-पृथिवी सुबन्धु का मङ्गल करने वाली हों । स्वर्गलोक और भूलोक समस्त अकल्याणों को दूर भगावें । हे सुबन्धु ! ! वे तुम्हारा अहित न करें ।८। स्वर्ग में दो-तीन औषधियाँ हैं, उनमें से एक पृथिवी पर घूमती है । यह सब औषधियाँ सुबन्धु के प्राणों को पुष्ट करें । आकाश और पृथिवी

लमस्त अकल्याणों को दूर कर दें, वे सुबन्धु का किसी प्रकार अहित न करें ।९। हे इन्द्र ! उशीनर पत्नी के शकट को खींच ले जाने वाले बैल को प्रेरणा दो । आकाश-पृथिवी समस्त कल्याणों को दूर करें और सुबन्धु का अहित न होने दें ॥१०॥ [२३]

सूक्त ६०

(ऋषि—बन्धवादयो गोपायनाः, अगस्त्यस्य स्वसषा माता ।
देवया—असमाती राजा, इन्द्रःसुबन्धोर्जीविताह्वानम्
छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, पंक्तिः)

आ जनं त्वेषसन्दृशं माहीनानामुपस्तुतम् । अगन्म बिभ्रतो नमः॥१
असमातिं नितोशनं त्वेषं निययितं रथम । भजेरथस्य सत्पतिम् ॥२
यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान् । उतापवीरवान्युधा ॥३
यस्येक्ष्वाकुरुप, व्रते रेवान्मराय्येधते । दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥४
इन्द्र क्षत्रसमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारयं । दिवीव सूर्यं दृशे ॥५
अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥६।२४

असमाति नरेश का राज्य अत्यन्त श्रेष्ठ है । उस देश की भी मेधावी जन प्रशंसा करते हैं । हमने विनीत भाव से उस देश में गमन किया था ।१। शत्रु का नाश करने वाले राजा असमाति अत्यन्त तेजस्वी हैं । जैसे रथारूढ़ होने पर अनेक अभिप्राय सिद्ध होते हैं वैसे ही राजा असमाति से मिलने पर अनेक कार्यों की सिद्धि होती है । वे भजेरथ नरेश के वंशज और प्रजाओं श्रेष्ठ प्रकार पालन करने वाले हैं ।२। राजा असमाति का पराक्रम इतना बढ़ा हुआ है कि बाघ भैंसों को मार देता है, वैसे ही वे मनुष्यों को मार देते हैं । यह कार्य बिना हथियार ग्रहण किये भी वे कर सकते हैं ।३। शत्रुओं को नाश करने वाले और ऐश्वर्यवान् राजा इक्ष्वाकु रक्षक कर्म में प्रसिद्ध हैं । उनकी रक्षा में स्थित

पंचजन स्वर्गीय सुख प्राप्त करें ।४। हे इन्द्र ! आदित्य को जैसे सब के द्वारा दर्शन करने के लिए तुमने आकाश में चढ़ाया है, वैसे ही रथ पर चढ़ने वाले राजा असमाति की आज्ञा में चलने वाले श्रेष्ठ वीरों को उन्हें प्राप्त कराओ ।५। हे राजन् ! महर्षि अगस्त्य धेवतों के निमित्त लालवर्ण के दो अश्वों को रथ में योजित करो। अत्यंत लोभी और अदानशील व्यक्तियों पर विजय प्राप्त करो ।६। [२४]

अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत् ।
इदं तव प्रसपण सुबन्धवेहि निरिहि ॥७
यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एधा दाधार ते मनो जीवतवे मुत्वेऽथो अरिष्टतातये ॥८
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥९
यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥१०
न्यग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूयः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥११
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शियाभिमर्शनः ॥१२।२५

प्राणदाता औषधि रूप जो अग्नि यहाँ पर आये हैं वे हमारे माता पिता के समान हैं। सुबन्धु ! तुम्हारा देह यही है, तुम इसी में अवस्थित होओ ।७। जैसे रथ-धारणार्थ रस्सी से दोनों काठों को बाँधते हैं, वैसे ही अग्नि ने तुम्हारे मन को ग्रहण किया हुआ है। इससे तुम्हारी मृत्यु तुमसे दूर भागेगी और तुम जीवित होकर मङ्गलमय रूप से उठ बैठोगे ।८। जैसे इस महिमामयी पृथिवी ने बड़े-बड़े वृक्षों को धारण कर रखा है, वैसे ही अग्नि ने तुम्हारे मन को भी धारण किया हुआ है, जिससे तुम्हारी मृत्यु दूर भागे और तुम जीवन धारण कर मङ्गलमय रूप हो जाओ ।९। सुबन्धु के मन का विवस्वान् पुत्र यम के पास से मैंने

अपहरण किया है । इससे उनकी मृत्यु दूर हो जायगी और वे मंगलरूप धारण करते हुए जीवन को प्राप्त होंगे ।१०। स्वर्गलोक से नीचे, अन्तरिक्ष में वायु विचरण करते हैं । सूर्य नीचे की ओर मुख करके तपते हैं । गौओं का दूध भी नीचे की ओर ही दुहा जाता है । हे सुबन्धु ! उसी प्रकार तुम्हारा अमंगल भी निम्नगामी हो ।११। अत्यंत सौभाग्यशाली मेरा यह हाथ सबके लिये भेषज के समान है । यह स्पर्श के द्वारा ही अमङ्गल देने वाला हो ।१२। [२५]

सूक्त ६१ पाँचवां [अनुवाक]

(ऋषि—नाभानेदिष्ठो मानवः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

इदमित्थाद्रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठा पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥१

स इद्दानाय दभ्याय वन्वच्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चरत् ॥२

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुधो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥३

कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपातश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥४

प्रथिष्ट यस्य वीरकर्समिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥५।२६

नाभानेदिष्ठ के माता, पिता, भ्राता आदि ने नाभानेदिष्ठ को यज्ञ-भाग नहीं दिया और वे रुद्र का स्तव करने लगे । नव नाभानेष्ठि भी रुद्र की स्तुति करने के लिये अंगिराओं के यज्ञ में गये । यज्ञ के छटवें दिन अंगिरागण जो भूल गये उसे उन्होंने सात होताओं को बताया और यज्ञ को सम्पूर्ण किया ।१। स्तुति करने वालों को धन दान के लिये

वेदी पर प्रतिष्ठित होते हुए रुद्र ने शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अस्त्रादि प्रदान किये। जल वृष्टि द्वारा मेघ जैसे अपनी सामर्थ्य दिखलाता है, वैसे ही रुद्र देवता यज्ञ में आकर उपदेश करते हुए अपने सामर्थ्य को सब ओर प्रकाशित करते हैं ।२। हे अश्विनीकुमारो ! मैंने यज्ञ की आयोजना की है। मेरे हाथ की उंगलियों को पकड़ कर और हव्य सामग्री को एकत्र कर जो अध्वर्यु तुम्हारे निमित्त चरु पकाता है, तुम उस अध्वर्यु के अनुष्ठान का आरम्भ देखकर उसके यज्ञ में शीघ्र गति से प्रस्थान करते हो ।३। हे आकाश के पुत्र रूप अश्विनीकुमारो ! जब रात्रि का अन्धेरा दूर हो जाता है और प्रातःकाल की लालिमा दृष्टिगत होती है, उस समय मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम मेरे यज्ञ में आकर हव्य ग्रहण करो। दो अश्वों के समान उसका सेवन करो, जिससे हमारा अहित न हो सके ।४। जब प्रजनन में कर्म समर्थ प्रजापति का बल प्रवृद्ध हो गया तो उन्होंने जगत् के हितार्थ प्रजा को उत्पन्न किया ॥५॥
[२६]

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनाग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६
पिता यत्स्वांदुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतःसञ्जग्मानोनिषिञ्चत ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोऽष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥७
स ई वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥८
मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्त्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥९
मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपामागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१०।२७

प्रजा की वृद्धि के निमित्त प्रजापति की शक्ति का अवस्थान श्रेष्ठ और उपयुक्त स्थान में हुआ ।६। जब प्रजापति की शक्ति का संयोग

पृथिवी से हुआ तो उसके प्रभाव को ग्रहण कर देवताओं ने वास्तोष्पति वा रुद्र का निर्माण किया ।७। नमुचि के मारे जाते समय इन्द्र जैसे संग्राम भूमि में पहुंचे थे वैसे ही वास्तोष्पति मेरे पास से चले गये। अङ्गिराओं ने जो गौऐं मुझे दक्षिणा में प्रदान की थीं, उन गौओं को उन्होंने दूर हटाया। ग्रहण-समर्थ होते हुए भी उन्होंने वे गौऐं ग्रहण नहीं की थीं ।८। रुद्र द्वारा रक्षित इस यज्ञ में प्रजा को कष्ट देने वाले और समान अग्नि को जलाने वाले दैत्य नहीं आ सकते। इस यज्ञाग्नि की ओर नग्न असुर रात्रि को भी आने में समर्थ नहीं है। यज्ञ की रक्षा करने वाले अग्नि ने काष्ठों को ग्रहण कर अन्न रूप धन बांटा। वही अग्नि प्रकट होकर असुरों से संग्राम करने लगे ।९। नौ महीने तक यज्ञ करते हुए अङ्गिराओं ने गौओं को प्राप्त किया। उन्होंने श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञ को सम्पूर्ण किया। उन्होंने ऐहलौकिक और पारलौकिक समृद्धि प्राप्त की और इन्द्र के समीप उपस्थित हुए। उन्होंने बिना दक्षिणा के यज्ञ द्वारा अमर फल पाया ।१०। [२७

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्त रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥११

पश्वा यत्पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुपक्षु ॥१२

तदिन्नवस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३

भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्वर्णये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४

उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥१५।२८

अमृत के समान दूध देने वाली गौओं के पवित्र दूध को अङ्गिराओं

ने जब यज्ञ में दिया, तब श्रेष्ठ स्तुतियों से नये वैभव के समान जल वृष्टि प्राप्त हुई । ११ । यज्ञ करने वाले पर इन्द्र का बड़ा अनुग्रह रहता है । जिसका पशु खो जाता है ? उसके पशु को वे ढूँढ़कर दे देते हैं ।१२। जब इन्द्र अत्यन्त विस्तीर्ण शुष्ण के मर्म को ढूँढ़कर उसका वध कर देते हैं और नृषद के पुत्र को चीर डालते हैं तब उनके अनुचर उनके चारों ओर रहते हुए गमन करते हैं । १३ । जो देवता पवित्र कुश पर यज्ञ में विराजमान होते हैं, वे उस समय अग्नि के तेज को भर्य कहते हैं । इन अग्नि के एक तेज को जातवेदा कहते हैं । हे अग्ने ! तुम यज्ञ के सम्पादनकर्त्ता और होता हो । तुम हमारे आह्वान को सुनकर हम पर अनुग्रह करते हो । १४ । हे इन्द्र ! वे जैसे मनु के यज्ञ में हर्ष को प्राप्त होते हैं, वैसे ही मेरे यज्ञ में हर्षित हों । मैंने उन्हीं के निमित्त यह कुश विस्तृत किया है । वे यज्ञ को स्वीकार करके प्रजाओं को ऐश्वर्य्यवान् बनावें । १५ । (२८)

अयं स्तोतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं चक्रमर्वतो रघुद्रु ।।१६
स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सवधुं धेनुमस्व दुहध्यै ।
स यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थेर्ज्यष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ।।१७
तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधानाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ।।१८
इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे देवा अयमस्मि सर्वः ।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्यद देनुरदुहज्जायमाना ।।१९
अधासु मन्दो अरतिर्विभावव स्यति द्विवर्तयिवनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्नशिशुर्दन्मक्षू स्थिरंसेधवृसुत माता ।।२०।२९

जैसे सोम की सब स्तुति करते हैं, वैसे ही हम भी करते हैं । यह सेतु रूप सोम कर्म में कुशल और श्रेष्ठ है । वे जल का अतिक्रमण करते हैं । द्रुतगामी अश्व जैसे रथ चक्र की परिधि को कम्पायमान करते

हैं, वैसे ही वह अग्नि को भी कंपित करते हैं। १६। यज्ञकर्त्ता अग्नि सब के पार लगाने वाले हैं । यह ऐहलौकिक और पारलौकिक स्थानों में हित करने वाले हैं। जब पयस्विनी गौ दूध नहीं देती, तब वे उसे गर्भवती करते हुए दुग्ध से पूर्ण कर देते हैं। उस समय मित्रावरुण और अर्यमा को श्रेष्ठ स्तुतियों के द्वारा प्रसन्न किया जाता है। १७। हे सूर्य ! तुम स्वर्ग में वास करते हो। मैं तुम्हारा भाई नाभानेदिष्ट तुम्हारा स्तव करता हूं। मैं गौएं प्राप्त करने का इच्छुक हूं। स्वर्गलोक मेरा और सूर्य का जन्म-स्थान है । १८। मैं स्वर्ग में रहता हूं मेरा जन्म-स्थान यहीं है। सभी देवता मेरे आत्मीय हैं। सत्यस्वरूप ब्रह्मा ने द्विजों को सर्व-प्रथम उत्पन्न किया है। यज्ञ रूपिणी गौ ने इन सब की उत्पत्ति की है। १६। अग्नि अपने स्थान को सुख पूर्वक ग्रहण करते हैं यह तेजस्वी अग्नि काष्ठों को वश में करते हुए अपनी ज्वालाओं को उन्नत करते हैं। यह इहलोक और परलोक में सहायता करने वाले और स्तुतियों के योग्य हैं। अरणि रूप माताऐं इन सुखमय अग्नि को शीघ्रता से उत्पन्न करती हैं। २०।

(२६)

अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं यालाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१
अध त्वमिन्द्र विद्ध्य् स्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसते हरिवो अभिष्टौ ।२२
अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूवपरा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥२३
अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥२४
युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोम जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचोः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५
स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुनमसा सूक्तैः ।

वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥२६
ते ऊषुणो महो यजत्राभूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजां अनयता वियन्तो येभूस्था निचेतारो अमूराः ॥२७।३०

मैं नाभानेदिष्ट श्रेष्ठ स्तुतियों का उच्चारण करता हुआ शान्ति को प्राप्त हुआ हूं। मेरे स्तोत्र इन्द्र को प्राप्त हो गए हैं। हे अग्ने ! इन इन्द्र के निमित्त यज्ञ करो। मैं अश्वमेध यज्ञकर्त्ता मनु का पुत्र हूं। तुम मेरे स्तोत्र द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो। २१। हे वज्रिन् ! तुम हमारी धन की कामना को जानो। हम तुम्हें हव्य प्रदान करते हुए तुम्हारी स्तुति करते हैं तुम हर प्रकार हमारी रक्षा करो, हर्यश्व इन्द्र ! हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त हों और तुम्हारे प्रति दोषी न हों।२२। गौओं के प्राप्त करने की कामना से अङ्गिराओं ने यज्ञ किया था। सब के जानने वाले नाभानेदिष्ट स्तुतियों की कामना करते हुए उनके पास गये, हे मित्रावरुण ! मैंने स्तुतियाँ करते हुए यज्ञ को सम्पूर्ण किया, इसलिए वे मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हुए।२३। गौओं को प्राप्त करने की कामना से स्तुति करते हुए हम अजेय वरुण की शरण में आते हैं। उन वरुण का पुत्र द्रुतगामी अश्व है। हे अन्नदाता वरुण ! तुम विद्वान् हो। २४। हे मित्रावरुण ! ऋत्विज् तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारी मैत्री अत्यन्त हित करने वाली है। जब हम तुम्हारा स्नेह प्राप्त कर लेंगे, तब सब ओर से स्तुतियाँ की जाँयगी। पहिले से जाना हुआ मार्ग कल्याणप्रद होता है, वैसे ही तुम्हारी मित्रता हमारे स्तोत्र को कल्याणकारी करे। तुम हम पर प्रसन्न होओ। २५। वरुण हमारे अतीव मित्र हैं। वे हमारी श्रेष्ठ स्तुतियों और नमस्कारों के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हों। पयस्विनी गौ के दूध की धारा वरुण के यज्ञ के लिए प्रवाहित हो।२६। हे देव गण ! तुम हमारी रक्षा करने के लिए सब समान मति वाले होओ। तुम हमारे यज्ञ में सोम-पान के अधिकारी हो। हे अङ्गिराओ। तुमने मुझे अन्न प्रदान किया है। हमारे इस यज्ञ में तुम गो-रूप धन दुग्ध को प्राप्त करो। २७। (३०)

सूक्त ६२

(ऋषि—नाभानेदिष्टो मानवः । देवता—विश्वेदेवा अंगिरसो वा, विश्वे देवाः, सावर्णदानस्तुतिः । छन्द—जगती, अनुष्टुप् बृहती, पङ्क्ति, गायत्री, त्रिष्टुप्)

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥१
य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेयाभिन्दन्परिवत्सरे बलम् ।
दीर्घायुत्वमंगिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२
य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं जातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमंगिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३
अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमंगिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानव सुमेधस. ।४
विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेवसः ।
ते अंगिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥५॥१

हे अङ्गिराओ ! तुमने हव्यादि के साथ इन्द्र की मैत्री और अमरत्व प्राप्त कर लिया है । तुम्हारा मंगल हो । तुम मुझ मनु पुत्र को आश्रय दो । मैं भले प्रकार यज्ञानुष्ठान में लगूँगा । १ । हे अङ्गिराओ ! तुम हमारे पिता के समान हो । तुम उस अपहृत गौ को लौटा लाये । तुमने एक वर्ष यज्ञ किया और बल नामक दैत्य का नाश किया तुम दीर्घ आयु प्राप्त करते हुए मुझ मनु पुत्र को आश्रय दो । मैं भले प्रकार यज्ञ करूँगा । २ । तुमने सत्य रूप यज्ञ से सूर्य को आकाश में प्रतिष्ठित किया है और सब की रचयिता पृथिवी को पूर्ण किया । तुम सन्तान वाले होओ । तुम मुझ मनु पुत्र को आश्रय दो । मैं भले प्रकार अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ कर्म करूँगा । ३ । हे अङ्गिराओ ! यह नाभानेदिष्ट तुम्हारे यज्ञ में श्रेष्ठ स्तुति करता है । तुम मेरी बात सुनो और श्रेष्ठ ब्रह्मतेज को प्राप्त होओ । तुम मुझ मनु-पुत्र को अपना आश्रय

प्रदान करो । मैं भले प्रकार यज्ञादि कर्म करूँगा ।४। यह अङ्गिरागण त्रिविध रूप वाले और श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले हैं । यह अग्नि के पुत्र सब ओर प्रकट होते हैं ।।५।। [१]

ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ।।६
इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ।।७
प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु ।
यः सहस्रं शताश्व सद्यो दानाय मंहते ।।८
न तमश्नोति कश्चन दिवइव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ।।९
उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा ।
यदुस्तुर्वश्च मामहे ।।१०
सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानेतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ।।११।२

विभिन्न रूप वाले यह अङ्गिरागण अग्नि के द्वारा आकाश में सब ओर उत्पन्न हुए, उनमें से किसी ने नौ मास तक तथा किसी ने दस मास तक यज्ञानुष्ठान किया जिससे उन्हें श्रेष्ठ गोधन की प्राप्ति हुई । यह अंगिरागण देवताओं के साथ वास करते हैं । इनमें श्रेष्ठ अंगिरा मुझे धन प्रदान करते हैं ।६। कर्मवान अङ्गिराओं ने इन्द्र के सहयोग से गौओं और अश्वों से युक्त स्थान को प्राप्त किया । उन लम्बे कान वाले अंगिराओं ने एक हजार गौऐं मुझे प्रदान की और देवताओं को एक यज्ञात्मक अश्व प्रदान किया ।७। जैसे जल के सींचने पर बीज बढ़ता है, वैसे ही सावर्णि मनु कर्मों के फल से युक्त होकर वृद्धि को प्राप्त हुए । वे मनु इस समय सौ अश्व और एक हजार गौऐं दान करना चाहते हैं ।८। मनु के समान दानदाता कोई भी नहीं है । वे स्वर्ग के समान उन्नत

लोक जैसे ऊँचे भावों से सम्पन्न हैं । उन सावर्णि मनु का दान नदी के समान ही गम्भीर और विस्तृत है ।६। यदु और तुर्व नामक राजर्षि गौओं में सम्पन्न और सदा मंगल करने वाले हैं । वे मनु को दुग्ध रूप भोजन के लिए गवादि पशु प्रदान करते हैं ।१०। मनुष्यों के नेता मनु सहस्र गौओं के देने वाले हैं । उन्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता । देवगण इनकी आयु वृद्धि कर और इनकी दक्षिणा सूर्य सहित सब लोकों में विख्यात हो । हम सब कर्मों के करने वाले अन्न को पावें ।११। [२]

सूक्त ६३

ऋषि—गयः प्लातः । देवता—विश्वेदेवाः, पथ्यास्वस्ति ।

न्द—जगती त्रिष्टुप्,)

परावतो ये दिधिषन्त आप्य मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥१
विश्वा हि वो नमस्यामि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थजाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इहश्रुता हवम् ॥२
येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यांअनु मदास्वस्तये ॥३
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरि ह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
तां आविवास नमसा सुवृक्तिभिमहाआदित्याअदितिंस्वस्तये ॥५

सुदूर लोक से आकर जो देवता मनुष्यों से सख्य भाव स्थापित करते हैं, प्रसन्नता प्राप्त करके जो देवता विवस्वान्-पुत्र मनु की सन्तानों का पोषण करते हैं, जो देवता नहुष के पुत्र राजा ययाति के यज्ञ में पूजित होते हैं, वे हमें धनादि ऐश्वर्य प्रदान करें और हमारे सम्मान की वृद्धि करें ।१०। हे देवगण ! तुम्हारे सभी रूप नमन योग्य, स्तुत्य और यज्ञ के

योग्य हैं। अदिति जल पृथिवी आदि मे प्रकट हुए सभी देवता मेरी स्तुतियों को सुनें ।२। पृथिवी सबकी रचयित्री और मधुर रस प्रवाहित करने वाली है। मेघयुक्त आकाश जिनके लिए अमृत रूप जलों का धारण करने वाला है उन सब आदित्यों की स्तुति करके कल्याण को प्राप्त होओ। इन आदित्यों का बल स्तुत्य है। उनका कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है। वे जल वृष्टि के लाने वाले हैं ।३। जितनी देर में मनुष्य पलक गिराते हैं, उससे भी न्यून समय में दर्शक ने देवताओं के लिये अमृतत्व को पाया। उनका रथ दमकता हुआ है। वे निष्पाप मनुष्यों के कल्याण उन्नत लोक में निवास करते हैं। उनके कर्म को कोई रोक नहीं सकता ।।४।। यज्ञों में आने वाले देवता श्रेष्ठ प्रकार से बढ़े हुए और अपने तेज में प्रतिष्ठित रहने वाले हैं। वे किसी के द्वारा हिंसित नहीं हो सकते। उन स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं के लिये और अदिति के लिये श्रेष्ठ नमस्कार और स्तुतियाँ करो और विविध प्रकार से उनकी सेवा करो ।।५।।   ।(३)

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथविश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ।।६
येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभ्य शर्म यच्छत सुगाः नः कर्त सुपथा स्तस्तये ।।७
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुजगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ।।८
भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोप्रण सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्नि मित्रं वरुण सातये भग द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ।।९
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहस सुशर्माणमदितं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ।।१०।४

हे सर्वज्ञाता और प्रजावान् देवताओ! मैं जैसी स्तुति करता हूं, वैसी स्तुति अन्य कोई नहीं कर सकता। जो यज्ञ कल्याणप्रद और पापों से रक्षा

करने वाला है, उसका श्रेष्ठ आयोजन मेरे सिवाय अन्य कौन कर सकता है ? ।६। श्रद्धावान् मन वाले मनु ने अग्नि को प्रज्वलित किया और सात होताओं के साथ देवताओं को हवन योग्य सामग्री अर्पित की। वे सभी देवता हमारे भयों को दूर करें। हमारे सब कर्मों को सरल करते हुए हमें कल्याण प्रदान करें।७। स्थावर जगत के स्वामी देवगण मेधावी और सब के जानने वाले हैं। हे लोकपालक देवताओ ! तुम हमें भूतकालीन और भविष्य के भी पापों से बचाओ। तुम हमारे किए कल्याणप्रद होओ।८। अपने यज्ञों में हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। उन्हें आहूत करना मंगलजनक है। हम देवगण का आह्वान करते हैं। वे श्रेष्ठ कर्म वाले, और पाप-नाशक हैं। अग्नि, मित्र, वरुण, भग, आकाश पृथिवी और मरुद्गण को भी हम धन प्राप्ति की कामना करते हुए तथा कल्याण चाहते हुए आहूत करते हैं।६। हम आकाश रूप वाली मंगल-मयी नौका पर आरूढ़ हों और देवत्व को प्राप्त करें। इस नाव पर चढ़ने से अरक्षा का कोई डर नहीं रहता। इस पर चढ़ने से अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। यह अक्षय नौका सुविस्तीर्ण हो। यह श्रेष्ठ कर्म वाली और सुदृढ़ है। यह पाप-रहित तथा कभी भी नाश को प्राप्त न होने वाली है ।।१०।। (४)

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ।।११
आपामिवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ।।१२
अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ।।१३
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ।।१४
स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ।।१५

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्त्यभि या वाममेति ।
स नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व अदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७।५

हे देवताओ ! तुम यज्ञ के योग्य हो । हमें रक्षा का आश्वासन प्रदान करो । नाश करने वाली कुगति से हमारी रक्षा करो । हम इस श्रेष्ठ यज्ञ को आरम्भ करते हुए तुम्हारा आह्वान् करते हैं । तुम हमारे आह्वान को सुनकर हमारा मङ्गल करो ।११। हे देवताओ ! हमारी पाप बुद्धि का नाश करो । हमारी बुद्धि दान से विमुख न हो । तुम हमारे शत्रुओं को हमसे दूर ले जाओ । उनकी दुष्ट बुद्धि को नष्ट करो । हमको अतीव कल्याण और सुख प्रदान करो ।१२। हे देवगण ! तुम अदिति के पुत्र हो । तुम जिस श्रेष्ठ मार्ग पर चलाते हुए कल्याण की ओर ले जाते हो तथा पापों से निवृत्त करते हो, वह मनुष्य बुद्धिमान् होता है । उसके वंश की वृद्धि होती है । उस धर्म कार्यों के करने वाले पुरुष को कोई हिंसित नहीं कर सकता ।१३। हे देवगण ! तुम अन्न प्राप्ति के लिए रथ के रक्षक होते हो, हे मरुद्गण ! तुम जिस रथ की धन के निमित्त युद्ध में रक्षा करते हो, हे इन्द्र ! रणक्षेत्र में जाते हुए उस रथ की उसी प्रातःकाल कामना करनी चाहिए । उस रथ पर आरूढ़ होकर हम कल्याण प्राप्त करने वाले हों । उस रथ को कोई हिंसित नहीं कर सकता ।१४। श्रेष्ठ मार्ग और मरुभूमि में जहाँ कहीं हमे गमन करें, वहीं हमारा मङ्गल हो । जल में और युद्ध में सर्वत्र हम जयशील रहें । जिस युद्ध में शस्त्रास्त्र चलाये जाते हैं, उस सेना में हमारा कल्याण हो । हमारे गर्भस्थ शिशुओं मङ्गल हो । हे देवगण ! धन के निमित्त हमारा कल्याण करो ।१५। जो पृथिवी मङ्गलमय पथ वाली है, जो श्रेष्ठ धनों से भरपूर है तथा जो वरण करने योग्य पृथिवी यज्ञस्थान के रूप में है, वह घर और जंङ्गल में, सर्वत्र हमारा कल्याण करने वाली हो । देवगण जिस पृथिवी का भरण करते हैं उस पृथिवी पर हम सुखपूर्वक निवास

करने वाले हों ।१६। हे देवगण ! हे अदिति ! प्लुति के पुत्र गया ने तुम लोगों को इस प्रकार प्रवृद्ध किया । गया ने तुम्हारी ही स्तुति की है । तुम्हारे प्रसन्न होने पर मनुष्यों को स्वामित्व की प्राप्ति होती है ।१७। [५]

सूक्त ६४

(ऋषि—गयः प्लातः । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृलाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१
क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२
नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रित वायसुषसमक्तु मश्विना ॥३
कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
आज एकपात्सुहवेभिऋक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ॥४
दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजानवरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरूरथो अर्यमा सप्तहोता वि पुरूपेषु जन्मसु ।५।६

हम किस देवता के लिए, किस प्रकार स्तोत्र रचना करें ? कौन से देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करते हुए हमें सुखी बनावें ? हमारा रक्षा के लिए कौन-से देवता हमारे यज्ञ में आगमन करेंगे ? वे देवता यज्ञ में आकर हमारे स्तोत्रों को सुने ।१। हमारी बुद्धि हमें यज्ञादि कर्म करने को प्रेरित करती है । वह बुद्धि देवताओं की कामना करने वाली है । हमारी कामनाऐं देवताओं की ओर गमन करती है, उनके समान सुख देने वाला कोई अन्य नहीं है । हमारी इच्छाऐं इन्द्रादि देवताओं में निहित होकर फल चाहती हैं ।२। हे स्तोता ! पूषा देवता धन देकर

पुष्ट करने वाले और शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष हैं । तुम उनका स्तव और पूजन करो । जो अग्नि सब देवताओं में तेजस्वी हैं, उनका स्तोत्र करो तथा सूर्य, चन्द्रमा, यम, वायु, उषा, रात्रि, अश्विद्वय और स्वर्ग लोक में निवास करने वाले त्रित की स्तुति करो ।३। अग्नि मेधावी हैं, वे किन स्तोत्रों से प्रसन्न होते हैं । वृहस्पति सुन्दर स्तुतियों से प्रवृद्ध होते है । अज् एकपात और अहिबुध्न्य देवता हमारे श्रेष्ठ आह्वान को श्रवण करें ।४। हे पृथिवी ! तुम कभी नाश को प्राप्त नहीं होती और सूर्य के उत्पत्तिकाल से ही तुम मित्रा वरुण की परिचर्या करती हो । सूर्य अपने सुविस्तीर्ण रथ पर आरूढ़ होकर गमन करते हैं । उनका प्राकट्य विभिन्न रूप से होता है । सप्तर्षि उन सूर्य का श्रेष्ठ आह्वान करते हैं ।५।

[६]

ते नो अर्वन्तो हवनश्रु तो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेत्रसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जीभ्ररे ।।६
प्र वो वायुं रथयुज पुरंधि स्तोमैः कृणुध्व सख्याय पूषणाम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्तेः सचेतसः ।।७
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पवर्ताँ अग्नि मूतये ।
कृशानुमस्तृन्तिष्य सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ।।८
सरस्वती सरयुः सिन्धुरुर्मिभिर्महो महोरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो धृतवत्पयो मनधुमन्नो अर्चत ।।६
उत माता वृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिजनिभिः पिता वचः।
ऋभुक्षा वाजोरथस्पतिभगोरुण्वः शंसः शशमानस्यपातु न ।। १०।७

इन्द्र के हर्यश्व संग्राम में शत्रुओं के धनों को जीतकर स्वयं ले आते हैं । जो यज्ञानुष्ठानों में सदा धन प्रदान करते और चतुर अश्वों के समान पग प्रहार करते हैं, वे सभी हमारे आह्वान को श्रवण करें, क्योंकि आहूत किये जाने पर वे अश्व कभी रुकते नही ।६। हे स्तोताओ ! रथ को जोड़ने वाले वायु, अनेक कर्म वाले इंद्र और पूषा देवता की स्तुति

करो और उनकी मित्रता प्राप्त करो । वे सब समान मन वाले होते हुए हमारे प्रातः सवन में प्रसन्नता पूर्वक पधारते हैं ।७। हम इक्कीस नदियों, वनस्पतिय, पर्वतों, सोम पालक गन्धर्वों, बाण चलाने वालों, नक्षत्रों, रुद्रों में मुख्य रुद्र और अग्नि देवता को रक्षा-कामना से अपने यज्ञ में आहूत करते हैं ।८। अत्यन्त महत्त्व वाली यह इक्कीस नदियाँ हमारे लिए रक्षा करने वाली हों । यह सब नदी रूपा देवियाँ जल को प्रेरित करने वाली हैं । अतः यह घृत और मधु के समान मधुर जल दें ।९। अपनी महिमा से तेजस्विनी हुई देवमाता और अपने पुत्रों तथा पुत्र बन्धुओं सहित देवता पिता त्वष्टा हमारे आह्वान को श्रवण करें । इन्द्र, मरुद्गण, वाज, ऋभुक्षा आदि सब देवता स्तुतियों की अभिलाषा करते हुए हमारी रक्षा करें ।१०। ७]

रण्व सदृष्टौ पितुमां इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्नाम यशसो जनेष्वा सदा देवास इलया सचेमहि ॥११
यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२
कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथम सनसामहे तत्र जामित्यमदितिर्दधातु नः ॥१३
तेहि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरामभिः रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४
विः षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिःपनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५
एवा कविस्तुवीरवा ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७।७

जैसे अन्न से परिपूर्ण घर देखने में सुन्दर लगता है, वैसे ही यह मरुद्गण सुन्दर दर्शन वाले हैं । इन रुद्रपुत्रों की स्तुतियाँ सदा मङ्गल

करने वाली होती हैं। हे देवगण ! हम सदा अन्नादि से सम्पन्न रहें और यवादि धन से युक्त होते हुए समान पुरुषों में यशोवान् बनें ।११। गौ जैसे दुग्ध से परिपूर्ण रहती है, वैसे ही हे इन्द्र, वरुण मरुद्गण, मित्र तथा अन्य सब देवताओ ! तुम लोगों से सुकृतों को फलों से पूर्ण करो, क्योंकि तुम रथारूढ़ होकर हमारे आह्वान को सुनते हुए इस यज्ञ में पधारे हो ।१२। हे मरुद्गण ! प्राचीन काल में अनेक बार तुमने मनुष्यों की मित्रता की रक्षा की है, उसी प्रकार अब भी करो। हम जहाँ सर्व प्रथम वेदों की रचना करते हैं, वहां पृथिवी सब प्राणियों से हमारे बन्धुत्व को स्थापित करे ।१३। अत्यन्त तेजस्वी, रचयिता, श्रेष्ठ महिमा वाली और यजनीय द्यावा पृथिवी प्रकट होते ही इन्द्र को पाती है। यह अपनी त्रिविध रक्षा-सामर्थ्य द्वारा देवताओं के सहयोग से, मेघ से जल वृष्टि करने में समर्थ होती है ।१४। प्राणी बड़े-बड़ों का पालन करने वाली है। यह स्तुति रूप वाक्यों से सम्पन्न होकर सोम निष्पीड़न कर्म में सहायक होने से महिमामयी कही जाती है। इसके द्वारा समस्त धन व्याप्त होते हैं। स्तुति करने वाले मेधावी जन अपनी स्तुतियों के प्रभाव से देवताओं को यज्ञ अभिलाषा वाले बनाते हैं ।१५। मेधावी ऋषि-गण अनेक स्तोत्रों से सम्पन्न है। वे धन की कामना करने वाले हैं। उन्होंने अपने श्रेष्ठ वाक्यों द्वारा देवताओं का पूजन किया ।१६। हे देवगण और अदिति ! प्लुति के पुत्र-गण ने तुम्हें अपने कर्मों द्वारा प्रवृद्ध किया उन्होंने देवताओं की भले प्रकार स्तुति की, क्योंकि देवताओं को प्रसन्न करने वाले मनुष्य ही संसार में प्रभुत्व प्राप्त करते हैं ।।१७।।

सूक्त १८

(ऋषि - वसुकर्णो वासुक्रः । देवता—विश्वेदेवता । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।

आदित्या विष्णुमरुतः स्ववृ॑हत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्र॑ह्मणस्पतिः ।।१
इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकसा ।
अन्तिरिक्ष॑ मह्या पप्र्रुरोजसा सोमो धृतश्रीर्महिमानमीरयन् ।।२
तेषां हि मह्ना महतामनवर्णां स्तोमां इयर्म्य॑ तज्ञा ऋतांवृधाम् ।
ये अत्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ।।३
स्वणरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमि पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षाइव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवते मनुषाय सूरयः ।।४
मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयच्छतः ।
यघोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतो ।।५।९

अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुण, वायु, अर्यमा, पूषा, आदित्यगण, विष्णु, मरुद्गण, सरस्वती, रुद्र सोम स्वर्ग लोक अदिति और ब्रह्मणस्पति अपने बल से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करते हैं ।१। सज्जनों के रक्षक इन्द्राग्नि संग्राम में मिलकर शत्रुओं का पराभव करते हैं । वे महान् आकाश को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं । घृत-मिश्रित मधुर सोम-रस उन दोनों के बल की वृद्धि करते हैं ।२। यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओं के निमित किये जाने वाले यज्ञ में, मैं देवताओं की स्तुति करता हूं । जो देवता श्रेष्ठ मेघों से जल वृष्टि करते हैं, वे हमको धन प्रदान कर यशस्वी वतावें और हमारे मित्र हों ।३। सबके अधीश्वर सूर्य और ग्रह, नक्षत्र आकाश पृथिवी आदि को उन्हीं देवताओं ने अपने स्थान पर प्रतिष्ठित किया है । जैसे धन प्रदान करने वाले मनुष्य ग्रहणकर्त्ता को यशस्वी बनाते हैं, वैसे ही देवगण मनुष्यों को धन-दान द्वारा सम्मानित बनाते हैं । धन दान के कारण ही वह स्तुतियों की आकांक्षा करते हैं ।४। हे स्तोताओ ! मित्रावरुण के निमित्त हवि दो । यह राजाओं में भी राजा के समान देवता कभी निष्क्रिय नहीं रहते । इनका लोक भले प्रकार स्थिर रहकर अत्यन्त प्रकाश करने वाला हुआ है । आकाश-पृथिवी याचिका के समान इनके आश्रय में रहती है ।।५।। (९)

या गीर्वंत नि पर्वते निष्कृतं पयो दुहानां व्रतनोरवारतः ।
सा प्रव्र वाणय वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६
दिवक्ष सो अग्निजिह्वा ऋतस्य योनिं त्रिमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्यपआक्रु रोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी नि मामृजुः ॥७
परिक्षितार्पितरा पूर्वजाबरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥८
पर्जन्यावाता वृषभा पुरोषिणेन्द्रनुवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवां आदित्यां अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अस्सुये ॥९
त्वष्टार वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रिय सोम मनसा उ ईमहे ॥१०

यज्ञ स्थान में आने वाली पवित्र गौ अपने दुग्ध द्वारा यज्ञ को परिपूर्ण करती है । वह गौ दानशील वरुण तथा अन्य देवताओं को हव्य प्रदान करे और मुझ देवोपासक का भले प्रकार पालन करे ।६। जिन देवताओं के लिये अग्नि जिह्वा रूप होकर हवि ग्रहण करते हैं, जो देवता यज्ञ को प्रवृद्ध करते और अपने तेज से आकाश को व्याप्त करते हैं, वे देवता इस यज्ञ में अपने स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं । वे अपनी महिमा से ही वृत्र से जल का उद्घाटन करते और यज्ञीय हव्य का सेवन करते हैं ।७। सर्व व्यापिनी द्यावा-पृथिवी सब की माता पिता रूप हैं । यह समान स्थान वाली सबसे पहिले प्रकट हुई हैं । इन दोनों का ही यज्ञ में वास है । यह दोनों ही समान मति वाली होंकर वरुण को घृत-दुग्ध से अभिषित करती हैं । कामनाओं के सींचने वाले मेघ और वायु जल से सम्पन्न हैं । हम इन्द्र, वायु, मित्रावरुण आदित्यों आदि व अदिति को भी आहुत करते हैं । आकाश, पृथिवी और जल में उत्पन्न होने वाले देवताओं का भी हम आह्वान करते हैं । हे ऋभूगण ! तुम्हारे कल्याण के लिये जो सोम देवाह्वाक त्वष्टा और वायु की ओर गमन करते हैं तथा जो बृहस्पति और वृत्रहन्ता की इन्द्र की ओर जाकर उन्हें तृप्त करते हैं, उन्हीं सोम से हम धन की याचना करते हैं ॥१०॥ (१०)

ब्रह्म गामश्व जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वतां अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्याव्रता विसृजन्तो अधिक्षमि ॥११
भुज्युमहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव सृजथः ॥१२
पावी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वेदेवासः शृणवन्वचांसिमेसरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या ॥१३
विश्वे देवाः सह धीभिः पुरन्ध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ॥१४
देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्देयेविश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासान्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । १५।११

पृथिवी, वन,वृक्ष, लता पर्वत, गौ, अश्व और अन्न यह सब देवताओं द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं । देवताओं ने सूर्य का आकाश पर आरोहण किया है । उन्होंने पृथिवी पर अत्यन्त श्रेष्ठ है कर्म सम्पन्न किये हैं । उनका दान अत्यन्त श्रेष्ठ है ।११। हे अश्विनीकुमारो ! तुमने भुज्यु की रक्षा की । तुम्हारी कृपा से वध्रिमती को एक पिंगलवण पुत्र प्राप्त हुआ । तुमने ही विमद को एक सुन्दरी पत्नी प्राप्त कराई और विश्वक ऋषि को भी विष्णप्व नाम का एक पुत्र प्राप्त कराया ।१२। माध्यमिकी वाक् मधुर और आयुधों से सम्पन्न हैं । आकाश को धारण करने वाले अज एकपात्, ज्ञानवती और विविध कर्मों वाले सरस्वती, विश्वेदेवा, समुद्र और वृष्टि-जल मेरे निवेदन को श्रवण करें ।१३। इन्द्रादि देवगण सभी कर्मों के प्रेरणा करने वाले, अत्यन्त ज्ञानी, यजनीय अविनाशी, हव्य ग्राहक, सत्य के जानने वाले और यज्ञों में आने वाले हैं । यह देवता हमारे द्वारा अर्पित अन्न और श्रेष्ठ स्तुतियों को स्वीकार करें ।१४। वह देवता सब लोकों में व्याप्त हैं । वसिष्ठ वंशीय ऋषियों ने इनकी स्तुति की थी । यह हमको यशस्वी बनाने वाला अन्न प्रदान करें । हे देवगण ! तुम कल्याण प्रदान करो और सब प्रकार से हमारी रक्षा करो ॥१५॥ (११)

सूक्त ६६

(ऋषि—वसुकर्णो वासुक्रः । देवता—विश्वे देवाः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

देवान्हुवे वृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥१
इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२
इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृलयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ॥३
अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून्रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ॥४
सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ॥५।१२

जो देवता इन्द्रात्मक, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् अन्नवान् अत्यन्त तेज के करने वाले, अविनाशी और यज्ञ से सम्पन्न हैं, मैं उन देवताओं को यज्ञ के निर्विघ्न सम्पूर्ण होने की अभिलाषा से आहूत करता हूं ।१। जो मरुद्गण इन्द्र की प्रेरणा से कार्यों में लगते और वरुण की सहमति से प्रकाशमान सूर्य के मार्ग को सम्पन्न करते हैं, उन शत्रुओं का नाश करने वाले मरुद्गण की स्तुति का हम ध्यान करते हैं । हे मेधावीजनो ! इन्द्र के पुत्रों के लिए यज्ञनुष्ठान का आरम्भ करो ।२। आदित्यों के सहित अदिति हमारा मङ्गल करें । वसुओं सहित इंद्र हमारे घर को ऐश्वर्य से सम्पूर्ण करें । मरुद्गण के सहित रुद्र हमारा कल्याण करें और सपत्नीक त्वष्टादेव हमारे लिए सुख की वृद्धि करें ।३। हम अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, आदित्यगण, रुद्रगण, वसुगण, विस्तीर्ण स्वर्ग, द्यावापृथिवी, अदिति और श्रेष्ठ दान वाले सूर्य का आह्वान करते हैं । यह सब देवता श्रेष्ठ-रक्षक साधनों से सम्पन्न हैं । अतः हमारी भी रक्षा करें ।४। अत्यन्त महिमामय विष्णु, कर्मवान् वरुण, पूषा, मेधावी

समुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, पापियों का नाश करने वाले मेधावी तथा स्तुति करने वालों के अन्नदाता और अविनाशी देवगण हमको श्रेष्ठ गृह प्रदान करें ।५। [१२]

वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।
वृषणा द्यावापृथिवीऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥६
अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ॥७
धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥८
द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
अन्तरिक्ष स्व रा पप्र रूतये वशं देवासस्तन्वी नि मामृजुः ॥९
धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधिः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो
रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥१०।१३

यह यज्ञ हमारा इच्छित फल प्रदान करे । यज्ञ के देवता हमारी अभिलाषाओं को पूर्ण करें । हव्य एकत्र करने वाले, देवगण, स्तोतागण, पर्जन्य और यज्ञ के अधिष्ठात्री देवता आकाश पृथिवी हमारे अभीष्टों की पूर्ति करें ।६। अग्नि देवता काम्यदाता हैं । मैं अन्न प्राप्ति के लिए उनकी स्तुति करता हूँ । समस्त संसार दाता कहकर उनकी स्तुति करता है । ऋत्विग्गण यज्ञ में उन्हीं को पूजते हैं, वे हमें सुन्दर निवास वाला गृह प्रदान करें ।७। जो देवगण यज्ञ को सुशोभित करने वाले हैं, जो अत्यन्त बलवान् और तेजस्वी हैं, जो सत्यनिष्ठ अग्नि के द्वारा आहूत किये जाते हैं और जो यज्ञ में आकर यज्ञ को सम्पूर्ण करते हैं, उन देवताओं ने वृत्र से संग्राम कर वर्षा के लिए जल का उद्घाटन किया ।८। देवताओं ने अपने श्रेष्ठ कर्म द्वारा आकाश पृथिवी की रचना की तथा वनस्पति, जल और यज्ञ योग्य सामग्री को

भी बनाया। देवताओं ने ही स्वर्ग को अपने तेज से सम्पन्न किया और अपने को यज्ञ में व्याप्त कर यज्ञ की शोभा बढ़ाई ।६। श्रेष्ठ हाथ वाले ऋभुओं ने आकाश को धारण किया । वायु और मेघ अत्यन्त शब्द करने वाले हैं। धन देने वाले भग देवता मेरे यज्ञ में आगमन करें । जल और वनस्पति हमारी स्तुतियों को समृद्ध करें।१०। [१३]

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ।।११
स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्रणयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानवइमाब्रह्म शस्यमाननि जिन्वत ।।१२
दैव्या होतरा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थातन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पति प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवां अमृतां अप्रयुच्छतः ।।१३
वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवां ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये ।
प्रीताइव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽवधूनेता वसु ।।१४
देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभि सदा नः ।।१५।१४

गर्जनशील मेघ, अज, एकपात् अहिर्बुध्न्य, समुद्र, नदी, आकाश और धूलियुक्त भूमि मेरे आह्वान को श्रवण करें ।११। हे देवताओ ! हम मनुष्य तुम्हारे निमित्त हव्य देने वाले हों । तुम हमारे सनातन यज्ञ को सुसम्पन्न करो। हे आदित्यगण, वसुगण, और रुद्रगण ! तुम श्रेष्ठ दान में समर्थ हो अतः हमारे उत्कृष्ट आह्वान को श्रवण करो ।१२। अग्नि और आदित्य दोनों ही सर्वोत्कृष्ट ऋत्विज हैं । वही देवताओं का आह्वान करने वाले है । मैं उस अग्नि और आदित्य को हवि देता हुआ अपने यज्ञ में निर्विघ्न प्राप्त कर रहा हूं। हम अपने पास रहने वाले क्षेत्रपति और अविनाशी देवगण की स्तुति करते हुए उनकी शरण में जाते हैं, क्योंकि वे दवगण स्तोता की कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं ।१३। वसिष्ठ ऋषि के वंशजों ने वसिष्ठ के समान ही मङ्गल कामना करते हुए देवताओं

का पूजन और स्तवन किया । हे देवगण ! अपने मित्र को जैसे तुमने अभीष्ट दिया था, वैसे ही यहां आकर तृप्त होते हुए हमारी भी कामनाओं को पूर्ण करो ।१४। यह देवगण समस्त लोकों में व्याप्त रहते हैं । वसिष्ठों ने इन सब का श्रेष्ठ स्तोत्र किया है । यह हमको यशस्वी बनाने वाला अन्न प्रदान करें । हे देवगण ! तुम हमको कल्याणकारी होते हुए सब प्रकार से हमारी रक्षा करो ।१५। (१४)

सूक्त ६७

(ऋषि—अयास्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इमां धियं सप्तशीर्ष्णी पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शसन् ।।१
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्र पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ।।२
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पति रभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वां अगायत् ।।३
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नु दुस्राआकवि हि तिस्र आवः ।।४
विभिद्या पूरं शयथेमपाचीं निस्त्राणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामकं विवेद स्तनयन्निवद्यौः ।।५
इन्द्रो बलं रक्षितारं दुधानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वदाञ्जि भिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमागा अमुष्णात् ।६।१५

हमारे पितरों ने सात छन्दों वाले विस्तृत स्तोत्र को रचा है । वह स्तोत्र सत्य द्वारा उत्पन्न हुआ है । विश्व का कल्याण चाहने वाले अयास्य नामक ऋषि ने एक पद के स्तोत्र की रचना करते हुए इन्द्र की स्तुति की ।१। सत्यवादी, सरल भाव वाले और स्वर्ग के पुत्र रूप अंगिराओं ने यज्ञ रूप श्रेष्ठ स्थान में जाने का विचार किया । बुद्धिमानों के समान

व्यवहार करने वाले वे अंगिरागण श्रेष्ठ बल और उत्कृष्ट मेधा से सम्पन्न हैं ।२। बृहस्पति के अनुचरों ने हंसों के समान शब्द करना आरम्भ किया । बृहस्पति ने उनके सहयोग से पत्थर के द्वार का उद्घाटन कर भीतर रोती हुई गौओं को मुक्त किया । उस समय उन्होंने उच्च स्वर से श्रेष्ठ स्तुतियों का गान किया ।३। नीचे एक द्वार से और ऊपर दो द्वारों से वे गौऐं अन्धकार से युक्त गुफा में छिपाई गई थीं । बृहस्पति ने उस अन्धकार को दूर कर प्रकाश करने के लिये तीनों द्वारों को खोलकर गौओं का उद्धार किया ।४। रात्रि में उन्होंने मौनपूर्वक पुरी के पृष्ठ भाग को तोड़ा और समुद्र के समान उस गुफा के तीनों द्वारों का उद्घाटन किया । प्रातःकाल उन्होंने सूर्य और गौ को एक साथ देखा । तब वे वीररूप में मेघ के समान शब्द करने लगे ।५। जिस बल द्वारा वे गौ रोकी गई थीं, उस बल को इन्द्र ने अपने गर्जन से इस प्रकार नष्ट कर डाला, जैसे आयुध से छेद डाला हो । उन्होंने मरुद्गण से मिलने की इच्छा करते हुए गौओं को साथ लिया और पाप रूप असुर को रुलाया ।६।

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ।।७
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ।।८
तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ।।९
यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ।।१०
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ।।११
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ।।१२।।२६

अपने सहायकों के साथ इन्द्र ने बल को छिन्न-भिन्न किया । उनके सहायक मरुद्गण सत्य भाषण करने वाले, धन देने वाले, तेजस्वी, वर्षणशील, जग लाने वाले तथा श्रेष्ठ चाल वाले हैं । उनको साथ लेकर ही इन्द्र ने उस गोधन पर अधिकार किया ।७। सत्य को चैतन्य करने वाले, मरुद्गण ने अपने कर्म से गौओं को पाया और तब बृहस्पति का गौओं का स्वामी बनाने की इच्छा की । तब परस्पर सहायता करने वाले मरुद्गण के साथ बृहस्पति ने गौओं को बाहर निकाला ।८। मरुद्गण अन्तरिक्ष सिंह के समान गर्जनशील हैं । उन कामनाओं की वर्षा करने वाले, विजयशील और बृहस्पति को प्रवुद्ध करने वाले मरुद्गण को हम सुन्दर स्तोत्र से स्तुति करते हैं ।९। बृहस्पति अन्तरिक्ष पर आरूढ़ होते हैं और विभिन्न प्रकार के अन्नों का सेवन करते हैं, तब वर्षणशील बृहस्पति की सब देवता विभिन्न दिशाओं से स्तुति करते हैं ।१०। अन्न प्राप्ति के लिए मेरी स्तुति को फलवती करो । मुझे अपनी शरण लेकर रक्षा करो । हमारे सब शत्रु नाश को प्राप्त हों । जगत् को पुष्ट करने वाली आकाश-पृथिवी हमारे आह्वान को सुनें ।११। बृहस्पति महिमामय हैं, उन्होंने जल से सम्पन्न मेघ के मस्तक को छिन्न-भिन्न किया और निरोधक शत्रु का नाश कर डाला । इससे समस्त नदियाँ जलवती होकर समुद्र में जा मिलीं । हे द्यावापृथिवी ? तुम समस्त देवताओं के सहित हमारा पालन करो ।१२। [१६]

सूक्त ९८

(ऋषि अयास्य । देवता--बृहस्पतिः छन्द--त्रिष्टुप्)

बदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषा ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिसभ्यर्का अनावन् ।।१
संगो भिराङ्गिरसो नक्षमाणो भगइवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रोनदम्पतीअनक्ति अनक्तिबृहस्पतेवाजयाशूं रिवाजौ ।।२
साध्वर्या अतिथिनोरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३
आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्यौः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं विभेद ॥४
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या बलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥१७

जैसे जल को सींचने वाले किसान अपने अन्न वाले खेत से पक्षियों को उड़ाने के लिये शब्द करते हैं, जैसे वर्षक मेघ गर्जन करते हैं, जैसे पर्वत से टकराती हुई जल की लहरें शब्द करती हैं, वैसे ही बृहस्पति की प्रशंसा वाली स्तुतियाँ शब्द करती हैं ।१। अंगिरा के पुत्र बृहस्पति ने गुफा में छिपी हुई गौओं के पास सूर्य का प्रकाश पहुंचाया तब उनका तेज भग देवता के समान व्याप्त हो गया । जैसे मित्र दम्पति का मेल करा देते हैं, वैसे ही उन्होंने गौओं का मनुष्यों से मेल कराया । जैसे रण-क्षेत्र में अश्व को दौड़ाते हैं, वैसे ही हे बृहस्पति ! तुम इन गौओं को दौड़ने वाली करो ।२। जैसे कोठी से जौ निकाले जाते हैं, वैसे ही बृहस्पति ने पर्वत से गौओं को बाहर निकाला । वे गौऐं श्रेष्ट वर्ण और रूप वाली हैं । वह शीघ्र गमन वाली, स्पृहणीया और श्रेष्ठ कल्याणकारी दूध देने वाली हैं ।३। बृहस्पति से गौओं का उद्धार करके सत्कर्म के स्थान यज्ञ को मधुर दुग्ध से सींचा । तब सूर्य के आकाश से उल्कापात करने के समान बृहस्पति अत्यन्त तेजस्वी हुए । उन्होंने पाषाण रूप कपाट से गौओं को निकाल कर उनके खुरों से पृथिवी की त्वचा को उसी प्रकार चारा, जैसे वर्षा-काल मे मेघ वृष्टि के वेग से भूमि की त्वचा को कुरेदते हैं ।४। वायु द्वारा जल से शैवाल को हटाये जाने के समान ही बृहस्पति ने आकाश से अन्धकार को हटाया । जैसे वायु मेघों को विस्तृत करता है, वैसे ही बृहस्पति ने बल के छिपे हुए स्थान को जान कर गौओं को उससे बाहर किया ।५। बृहस्पति के अग्नि के समान तप्त और तेजस्वी

आयुध ने जब वायु के अस्त्र को काट डाला, तब बृहस्पति ने उन गौओं को अपने वश में किया। जैसे दाँतों द्वारा चर्वण किये गये पदार्थ को जीभ खाती है, वैसे अपहरणकर्त्ता पणियों का वध करके बृहस्पति ने गौओं को प्राप्त किया।६। [१७]

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेवभित्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं दीन उदनि क्षियन्तम्।
तिष्ठज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेण विकृत्य ॥८
सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्नि सो अर्केण वि वबाधे तमांसि।
बृहस्पतिर्गोवपुषा बलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९
हिव मे पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विददगाः ॥११
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स
नृभिर्नो वयो धात् ॥१२॥१८

गुफा में छिपी हुई गौओं ने जब शब्द किया तभी बृहस्पति को गौओं के वहाँ होने का पता लगा था। जैसे अण्डे को फोड़ कर पक्षी बच्चे को उससे बाहर निकालता है, वैसे ही उन्होंने पर्वत से गौओं को बाहर किया।७। मछलियाँ अल्प जल में जैसे प्रसन्न नहीं रहतीं, उसी प्रकार पर्वत की गुफा में जैसे अप्रसन्न गौओं को बृहस्पति ने देखा। जैसे वृक्ष के काष्ठ से सोम-पात्र निकालते हैं, वैसे ही बृहस्पति ने गौओं को पर्वत से वाहर निकाला।८। गौओं को देखने के निमित्त बृहस्पति ने उषा को पाया। उन्होंने सूर्य और अग्नि को प्राप्त कर अन्धकार को दूर किया। जैसे अस्थि से मज्जा को बाहर निकालते हैं, वैसे उन्होंने बल

राक्षस के पर्वत से गौओं को बाहर निकाला ।९। हिम जैसे पद्म-पत्रों को हर लेता है, वैसे ही बल द्वारा छिपी हुई गौओं का बृहस्पति ने अपहरण किया। अन्य व्यक्ति ऐसा कर्म करने में समर्थ नहीं है। उनके इस कार्य से ही सूर्य और चन्द्र का उदय रूप कर्म प्रारम्भ हुआ ।१०। पालनकर्त्ता देवताओं ने नक्षत्रों से आकाश को उसी प्रकार सुसज्जित किया, जिस प्रकार कृष्ण के अश्व को सुवर्ण के आभूषणों से सजाया जाता है। उन्होंने प्रकाश को दिवस के लिए और अन्धकार को रात्रि के लिए नियत किया। वृहस्पति ने पर्वत को विदीर्ण कर गौ रूप धन को पाया ।११। अनेक ऋचाओं के रचयिता तथा अन्तरिक्ष में वास करने वाले वृहस्पति को हमने नमस्कार किया। वे वृहस्पति हमें गौ, अश्व, सन्तान भृत्य और अन्न धन प्राप्त करें ।१२। [१८]

सूक्त ६६ (छटवाँ अनुवाक]

(ऋषि—सुमित्रो वाध्र्यश्वः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

भद्रा अग्नेर्वध्र यश्वस्य सदृशौ वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुती जरते दविद्युतत् ॥१
घृतमग्नेर्वध्र यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्म मेदनम्।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्यइव रोचते सर्पिरासुतिः ॥२
यत्ते मगुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाज दषि स इह श्रवो धाः ॥३
यं त्वा पूर्वमीलितो वध्रयश्वा समीधे अग्ने स इदं जुषस्व।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ॥४
भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा त रीदभिमातिर्जनानाम्।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ॥५
समज्र् या पर्वत्या वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँ यरभिष्या ॥६।२९

वध्र्यश्व ने अग्नि की स्थापना की, उन अग्नि का अनुग्रह हमारा मङ्गल करे। उनका रूप दर्शन के योग्य हो और उनको यज्ञ स्थान में आना अत्यन्त शुभ हो। जब हम उन अग्नि देवता को प्रतिष्ठित करते हैं, तब वे घृत की आहुति प्राप्त कर प्रदीप्त होते हैं। हम उन्हीं अग्नि देवता का स्तोत्र करते हैं।१। वध्र्यश्व के अग्नि घृत के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हों। घृत रूप आकार ही उनका पोषण करे। घृत की आहुति प्राप्त कर अग्नि अत्यन्त फैल जाते हैं। घृत के प्राप्त होने पर अग्नि का प्रकाश सूर्य के समान अत्यन्त उज्ज्वल होता है।२। हे अग्ने! मनु ने जैसे तुम्हें प्रदीप्त किया था, वैसे ही मैं भी तुम्हें प्रदीप्त कर रहा हूँ। किरणों का यह समूह नवीन है अतः तुम ऐश्वर्यवान् होकर बढ़ो। हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर शत्रु सेना को चीर डालो और हमारे पास अन्न पहुंचाओ।३। वध्र्यश्व ने ही, हे अग्ने! तुम्हें प्रथम प्रज्वलित किया था। तुमने जो कुछ हमें प्रदान किया है वह अविनश्वर हो। तुम हमारे घर और शरीर की भी रक्षा करो।४। हे वध्र्यश्व के अग्नि? तुम प्रज्वलित होकर रक्षक बनो। तुम्हें हिंसक दुष्ट हरा न सकें। तुम वीरों के समान शत्रुओं के नाशक बनो। मैं सुमित्र इन अग्नि के नामों का उच्चारण करता हूं।५। हे अग्ने! पर्वत पर उत्पन्न धन को जीत कर तुमने अपने उपासकों को दिया। तुम वीर के समान होकर शत्रुओं के हिंसक बनो। जो शत्रु युद्ध करने के लिए आवें, उनसे सामना करो।६। [१६]

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्नि सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा।
द्यु मान्द्यु मत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥७
त्वं धेनुः सुदुघा जातवेऽदोसश्चतेव समना सवर्धुक्।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥८
देवश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन्।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥९
पितेव पुत्रमभविरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन्।

जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठोत पूर्वा अवनोव्रधितश्चित् ॥१०
शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून्नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ॥११
अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीनभितिष्ठ शर्ध तोवाध्र्यश्व ॥१२।२०

यह अग्नि दीर्घसूत्र वाले हैं। यह देने वालों में प्रमुख हैं। यह सहस्रों स्थानों को ढकने में समर्थ हैं। सैकड़ों भागों से आगमन करते हैं। यह प्रकाशमानों में भी प्रकाशमान हैं। हे अग्ने! हम सुमित्रों के घर में सुख पूर्वक प्रज्वलित होओ।७। हे मेधावी अग्ने! तुम्हारी गौ सरलता से दुही जाती हैं उनका दोहन निर्विघ्न रूप से होता है। वह अमृत के समान मधुर दुग्ध देने वाली है। देवताओं के उपासक सुमित्र वंश वाले ऋषि दक्षिणा से युक्त होकर तुम्हें प्रदीप्त करते हैं।८। हे वध्र्यश्व के अग्नि! जब मनुष्यों ने तुम्हारी महिमा जाननी चाही थी, तव प्रवृद्ध देवताओं के साथ कर्म में विघ्न डालने वालों पर विजय पाई थी। वही देवता तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा का भले प्रकार गान करते हैं।९। हे अग्ने! पिता जैसे पुत्र को गोद से उठा कर प्यार करता है, वैसे ही मेरे पिता ने तुम्हारी परिचर्या की थी। उस मेरे पिता ने समिधाऐं ग्रहण करके तुमने शत्रुओं का नाश किया था।१०। वध्र्यश्व के अग्नि ने सोमाभिषवकर्त्ता ऋषियों के साथ शत्रुओं पर सदा विजय पाई है। हे अग्ने! तुम विभिन्न तेजों से युक्त हो। तुम हिंसक राक्षसों को सदा जलाते हो। जो हिंसाकारी दैत्य अधिक प्रवृद्ध हुए थे, उन्हें अग्नि ने कष्ट कर दिया।११। वध्र्यश्व के अग्नि शत्रु का संहार करने वाले हैं। वे सदा प्रदीप्त होते हैं। उनको नमस्कार किया जाता है। अग्ने! हमसे भिन्न शत्रुओं का पराभव करो।१२। [२०]

सूक्त ७०

(ऋषि—सुमित्रों वाध्र्यश्वः। देवता—आप्रम्। छन्द—त्रिष्टुप्)

इमां मे अग्ने समिधजुषस्वेलस्पदे प्रति हर्या घृताचीम्।

वर्ष्मंन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अंह्‌नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥१
आदेवनामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥२
शश्वत्तममीलते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना दुवान्वक्षि नि षदेह होता ॥३
वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेलता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठां उशतो यक्षि देवान् ॥४
दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भि र्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥५।२१

हे अग्ने ! उत्तरवेदी पर प्रतिष्ठित होकर मेरी समिधाओं को स्वीकार करो । घृतयुक्त स्रुक की कामना करते हुए पृथिवी के श्रेष्ठ भाग पर देवयाग में अपनी ज्वालाओं को उन्नत करो ।१। अग्नि देवताओं से आगे चलने वाले हैं । मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं । वे विभिन्न अङ्ग वाले अश्वों के सहित हमारे यज्ञ स्थान में आगमन करें । देवताओं में मुख्य और कर्मों में चतुर अग्नि हमारी हवियों को वहन करें ।२। हवि देने वाले यजमान दौत्य कर्म के निमित्त अग्नि की स्तुति करते हैं । सुन्दर रथ को वहन करने वाले अश्वों के साथ हे अग्ने ! इन्द्रादि देवताओं को यज्ञ में लाओ और हमारे इस यज्ञ में होता रूप में विराजमान होओ ।३। देवताओं की सेवा करने वाला कुश वृद्धि को प्राप्त हो और सुरभि के समान सुखदाता हो । हे अग्ने हव्याकाँक्षी इन्द्रादि देवताओं को हर्षित मन से पूजो ।४। हे द्वार देवियो ! तुम उन्नत होती हुई पृथिवी के समान बढ़ो । तुम रथ की कामना करती हुई देवताओं की अभिलाषा करो और तुम अपनी महिमा से प्रतिष्ठित होकर विचरण साधन रथ को धारण करने वाली बनो ।५। [२१]

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥६
ऊर्ध्वो ग्रावा वृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञ अस्मिन् विदुष्टर द्रविणमा यजेथाम् ॥७
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सदित चकृमा वः स्योनम ।
मनुष्वद्यज्ञ सुधिता हवींषीला देवी घृतपदी जुषन्त ॥८
देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९
वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥१०
आग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अंतरिक्षात् ।
सीदन्तुर्वर्हिर्विश्वआयजत्राःस्वाहादेवाअमृता मदयन्ताम् ॥११।२२

आकाश की पुत्री और श्रेष्ठ तेज वाली उषा और रात्रि हमारे यज्ञ में विराजमान हों । हे सुन्दर धन वाली देवियो ! तुम्हारे निकटस्थ स्थान में हवि चाहने वाले देवता विराजमान हों ।६। जब सोम को निष्पन्न करने के लिए हाथ में पाषाण ग्रहण करते हैं, जब महान् अग्नि प्रदीप्त होते हैं और जब हवियों को धारण करने वाले पात्र यज्ञ में प्रस्तुत किये जाते हैं, तब तुम हमारे यज्ञ में धन प्रदान करो ॥७॥ हे इडा आदि त्रिदेवियो ! तुम्हारे निमित्त यह कुश विस्तृत किया गया है, तुम इस पर प्रतिष्ठित होओ । हे इडा ! जैसे ओजस्विनी सरस्वती और देदीप्यमती भारती ने मनु के यज्ञ में हव्य ग्रहण किया था, उसी प्रकार हमारे यज्ञ में भी दिये जाने वाले हव्य को भी स्वीकार करो ।८। हे त्वष्टादेव ! तुम्हारा रूप कल्याणकारी है । तुम अंगिराओं के मित्र हो । तुम श्रेष्ठ धन से सम्पन्न हो । तुम हव्य की कामना से देवभाग को जानते हुए अन्न प्रदान करो ।९। हे यूप काष्ठ ! तुम वनस्पति से बनाये गए हो । तुम जब रस्सी से बांधे जाओ तब हमको अन्न प्रदान करने वाले

बनो । वनस्पति हवि सेवन कर और हमारी हवियों को देवताओं को पहुँचावें । आकाश, पृथिवी मेरी स्तुतियों का पालन करें ।१०। हे अग्ने ! हमारे यज्ञ के लिये आकाश और अन्तरिक्ष से इन्द्र और वरुण को यहां लाओ । यज्ञ योग्य देवता हमारे कुश पर विराजमान हों और हमारे स्वाहाकार से प्रसन्न हों ।।११।। (१२)

सूक्त ७१

(ऋषि—बृहस्पति । देवता—ज्ञानम् । छन्द—त्रिष्टुप, जगती)

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ।।१
सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां यक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।।२
यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्व विन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ।।३
उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः श्रृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।४
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिः वैत्यपि वाजिनेषु ।
अन्धेवा चरति माययैष वाच शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ।।५।२३

बृहस्पति प्रथम पदार्थ का नामकरण करते हैं । यह उनकी शिक्षा की प्रथम सीढ़ी है । इनका जो गोपनीय ज्ञान है वह सरस्वती की कृपा से ही उत्पन्न होता है ।१। जैसे सत्तू को सूप से शुद्ध करते हैं, वैसे ही मेधावी-जन अपने बुद्धि—बल से शोधित भाषा को प्रयुक्त करते हैं । उस समय ज्ञानीजन के अपने प्राकट्य के जानने वाले होते हैं । इनकी वाणी में कल्याणकारिणी लक्ष्मी का निवास रहता है ।२। मेधाजीवन यज्ञ से भाषा के मार्ग को पाते हैं । ऋषियों के अन्तःकरण में स्थित वाणी को

उन्होंने पाया। वही वाणी सब मनुष्यों को सिखाई गई। इसी वाणी के योग से सातों छन्द स्तुति करने में समर्थ होते हैं।३। कोई व्यक्ति समझ देखकर और सुन कर भी भाषा को समझने देखने या सुनने का यत्न नहीं करते। परन्तु किसी व्यक्ति पर वाग्देवी सरस्वती की अत्यन्त कृपा रहती है।४। कोई-कोई व्यक्ति विद्वानों के समान इतने प्रतिष्ठित हो जाते हैं कि उनके बिना कोई कार्य नहीं हो पाता। परन्तु कोई-कोई व्यक्ति निरर्थक वाणी को प्रयुक्त करते हैं ॥५॥ (२)

यस्तित्याज सचिविद सखायं व तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलक शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६
अक्षण्वन्त कर्णवन्त सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदाइव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७
हृदा तष्ठेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणा संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्व वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणा वि चरन्त्यु त्वे ॥८
इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥९
सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामर हितो भवति वाजिनाय ॥१०
ऋचाँ त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याँ यज्ञस्य मात्रां वि विमीत
उ त्वः ॥११।२४

मित्र से विमुख होने वाले विद्वान को वाणी फलहीन होती है।उनका सुना हुआ सब व्यर्थ होता है। क्योंकि वह सत्य मार्ग से अनजान रहता है।६। आँख-कान से सम्पन्न मित्र मन के भावों को प्रकाशित करने में विशिष्टता वाले होते हैं। कोई-कोई मुख तक गहरे जल वाले और कमर

तक जल वाले जलाशय के समान होते हैं तथा कोई-कोई हृदय के समान गम्भीर होते हैं ।७। जब अनेक मेधाजीवन वेदार्थों के गुण दोषों का विवेचन करने के लिये एकत्र होते हैं, तब कोई-कोई स्तोत्र वाला पुरुष वेदार्थं का जानने वाला होकर सर्वत्र घूमता है और कोई-कोई व्यक्ति वेदार्थं का जानने वाला होकर सर्वत्र घूमना है और कोई कोई व्यक्ति सर्व ज्ञान से शून्य होता है ।८। इस लोक से पुरुष वेद के जानने वाले ब्राह्मणों और पारलौकिक देवताओं के सहित यज्ञादि कर्मों को नहीं करते, जो स्तुति नहीं करते और न सोम-याग की ही इच्छा करते हैं, वे पाप के चंगुल में फँसकर मूर्खों के समान केवल लोक व्यवहार के द्वारा हल चलाने में चतुर होते हैं ।९। यश मित्र के समान है । इसके द्वारा सभाओं में प्रमुखता प्राप्त होती है । यश को पाने वाले पुरुष प्रसन्न रहते हैं । यश से बुराई दूर होकर अन्न मिलता और विभिन्न प्रकार से उनका उपकार ही होता है ।१०। एक प्रकार के उपासक अनेक ऋचाओं द्वारा स्तुति करते हुए यज्ञादि कर्मों में सहायक होते हैं । दूसरी प्रकार के उपासक गायत्री छन्द युक्त साम का गान करते हैं । यज्ञस्थ ब्रह्मा विभिन्न प्रकार की व्याख्याओं को करते हैं और अध्वर्यु गण यज्ञ के अनेक कर्मों के करने वाले होते हैं ।।११।। [२४]

सूक्त ७२

(ऋषि—बृहस्पतिर्बृहस्पतिर्वा लोक्य अदितिर्वा दाक्षायणी ।
देवता—देवाः । छन्दः—अनुष्टुप्)

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ।।१

ब्रह्मणस्पतिरेता स कर्मारइवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ।।२

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत ।
तदाशां अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ।।३

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भूव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ।।४
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अवृतवन्धव ।।५।१

हम देवताओं के प्राकटच का विस्तृत वर्णन करते हैं । अगले युग में देवगण यज्ञ के आरम्भ में स्तोताओं की ओर देखते रहने वाले होंगे ।१। कर्मकार के समान सृष्टि के आदि में अदिति ने देवताओं को जन्म दिया । वे नाम और रूप से रहित देवता नाम रूप आदि के महित प्रकट हुए ।२। देवताओं के उत्पन्न होने से पहिले असत् से सत् की उत्पत्ति हुई । फिर दिशाऐं और वृक्ष उत्पन्न हुए ।३। वृक्षों के पश्चात् पृथिवी और पृथिवी से दिशाऐं उत्पन्न हुईं । दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई ।४। हे दक्ष ! तुम्हारी पुत्री अदिति ने जिन देवताओं को उत्पन्न किया है, वे अविनाशी देवता स्तुतियों के योग्य हैं ।५। [१]

यद्द वा अदः सलिले सुसरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रा रेणुरपायत ।।६
यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूलहमा सूर्यमजभतन ।।७
अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व स्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तिभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ।।८
सप्ताभिं पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुमर्मार्तण्डमाभरत् ।।९।२

देवगण इस पृथिवी में रहकर अत्यन्त उत्साह प्रदर्शित करने लगे । उन्होंने नर्तन-सा किया, जिससे कष्टप्रद धूलि सब ओर उड़ने लगी ।६। देवताओं ने मस्तक विश्व को मेघ के समान आच्छादित कर दिया । आकाश में छिपे हुए सूर्य को उन्होंने प्रकाशित किया ।७। अदिति के आठ पुत्र हुए, जिनमें से सात को लेकर वे स्वर्गलोक में गईं ।

आठवें सूर्य आकाश में ही रह गए थे।८। उस श्रेष्ठ समय से अदिति सात पुत्रों को साथ ले गईं और सूर्य को आकाश में ही प्रतिष्ठित किया।९। [२]

सूक्त ७३

(ऋषि—गौरिवीतिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्,)

जनिष्टाउग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥१
द्रुहो निषत्ता पृषनो चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः ॥२
ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र मालावृकान्त्सहस्रनासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥३
समना तूर्णिरूप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥४
मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥५।३

हे इन्द्र ! जब इन्द्र की माता ने इन्द्र को उत्पन्न किया, तब मरुद्-गण ने तेजस्वी इन्द्र की प्रशंसा करते हुए कहा कि तुमने शत्रुओं का नाश करने को ही जन्म लिया है । तुम ओजस्वी, वीर, मानी और स्तुतिओं के पात्र हो ।८। दोहनकर्त्ता इन्द्र के पास गमनकर्त्ता मरुद्गण सहित सेना सुसज्जित है । मरुद्गण ने श्रेष्ठ स्तुतियों के द्वारा इन्द्र की वृद्धि की । जैसे विस्तीर्ण गोष्ठ में ढकी हुई गौऐं उससे बाहर निकलती हैं, वैसे ही घोर अन्धकार में ढका हुआ वर्षा का जल बाहर निकालता है ।२। हे इन्द्र ! तुम महिमावान् चरणों वाले हो । जब तुम उनके द्वारा गमन करते हो तब ऋभुगण वृद्धि को प्राप्त होते हैं । उस समय सभी देवता महानता को प्राप्त होते हैं । तुम सहस्र वृक को मुख में रखते हो और अश्विनीकुमारों को लौटाते हो ।३। हे इन्द्र तुम संग्राम में जाने की जल्दी होते हुए भी तुम यज्ञ में गमन करते हो । उस समय तुम दोनों

अश्विनीकुमारों से मित्रता करते हो । तुम हमारे निमित्त हजारों धनों को धारण करते हो तब अश्विनीकुमार हमें धन प्रदान करते हैं ।४। जब इन्द्र यज्ञ में प्रसन्न हो जाते हैं तब मरुद्गण के साथ यजमान को धन प्रदान करते हैं । यजमान के निमित्त इन्द्र ने राक्षसी माया का नाश किया तथा अन्धकार को दूर कर वर्षा की ।५।

सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथा नः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६
त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥७
त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥८
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९
अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥१०
वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य स्मान्निधयेव बद्धान् ॥११।४

इन्द्र अपने सब शत्रुओं को एक प्रकार से ही नष्ट करते हैं । उन्होंने उषा को तथा शत्रु को समान रूप से ही मिटा दिया । वृत्र-वध की कामना वाले महान् इन्द्र अपने मित्र मरुद्गण सहित नेत्र का हनन करने के निमित्त पहुंचे । हे इन्द्र ! तुमने अत्यन्त रूपवान् पुरुषों को भी मार डाला ।६। नमुचि तुम्हारे धन को चाहता था । तुमने उसे मार डाला। तुमने मनु के समीप जाने वाले नमुचि की माया को नष्ट कर दिया । तुमने देवताओं के मध्य मनु के लिए मार्ग बनाया जिसके द्वारा सरलता से देव लोक में जाया जा सकता है ।७। हे इन्द्र ! तुम विश्व को अपने

तेज से भरते हो । तुम जब वज्र धारण करते हो तब सबके स्वामी होते हो । समस्त बलवान् देवता तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि तुमने मेघों को अधोमुखी कर दिया है ।८। इन्द्र का चक्र जल में अवस्थित हैं । वह इन्द्र के लिए मधु निकालता है । हे इन्द्र ! तृण-लता आदि में जो तुमने मधुर रस स्थापित किया है, वह उज्ज्वल गौ-दुग्ध के रूप में हमें प्राप्त होता है ।९। लोगों का कथन है कि इन्द्र आदित्य से प्रकट हुए हैं । परन्तु वे बल से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा मैं जानता हूं यह इन्द्र उत्पन्न होते ही शत्रुओं की अटटालिकाओं की ओर दौड़े । वे किस प्रकार उत्पन्न हुए, इसे उनके सिवाय अन्य कोई नहीं जानता ।१०। सूर्य की रश्मियाँ भले प्रकार गमन करने वाली और नीचे गिरने वाली हैं । वे इन्द्र के पास गईं तब यज्ञ की कामना वाले ऋषि ही पक्षी रूप हुए । उन्होंने इन्द्र से निवेदन किया कि हे इन्द्र ! मेरे चक्षुओं को ज्योति से पूर्ण करो । अन्धकार को दूर करो । जिस पाश से हम बंधे हैं, तुम उससे हमें करो । अंधकार को दूर करो । जिस पाश से हम बँधे हैं, तुम उससे हमें मुक्त करो ।११।

सूक्त ७४

(ऋषि—गौरिवीतिः । देवता—छन्द–त्रिष्टुप्,)

वसूनां व चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अवन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ।।१
हव एषामसुरा नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ।।२
इयमेषाममृताना गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञ च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्य मसामि ।।३
आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्व य पुरुपुत्रो महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ।।४
शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्ति भर्त्ता यो वज्रं नयं पुरुक्षुः ।।५

यद्वावान पुरुतमं पुराषाला वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ।।६।५

यज्ञ द्वारा इन्द्र को देने के लिए प्रेरित किया जाता है। वे देवताओं और मनुष्यों द्वारा आकर्षित किये हैं। संग्राम में धन जीतने वाले अश्व उन्हें अपनी ओर खींचते हैं। शत्रुओं का नाश करने में प्रसिद्ध योद्धा भी इन्द्र को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं ।१। अंगिराओं की स्तुतियों के घोष ने आकाश को पूर्ण किया। जो देवता इन्द्र की कामना करते हुए अन्न चाहते हैं, उन्होंने यज्ञकर्त्ताओं की गौऐं प्राप्त कराने को भूमि प्राप्त की। पणियों द्वारा चुराई गौओं को खोजते हुए देवताओं ने सूर्य के समान अपने तेज से आकाश को आलोकित किया ।२। अविनाशी देवगण यज्ञ में विभिन्न प्रकार के श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं। तब उनकी स्तुति की जाती हैं। वे हमारी स्तुति को स्वीकार करें और हमें महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ।३। हे इन्द्र ! शत्रुओं के गोधन को जीतने की कामना वाले उपासक तुम्हारी स्तुति करते हैं। एक ही बार उत्पन्न हुई यह विस्तीर्ण पृथिवी अनेकों जन्म देती है। यह सहस्र धाराओं वाले श्रेष्ठ दूध के देने वाली हैं। जो इस पृथिवी रूप गौ का दोहन करने की इच्छा करते हैं, वे भी इन्द्र की पूजा करते हैं ।४। हे ऋत्विजो ! इन्द्र किसी के सामने नहीं झुकते। वे मनुष्यों का हित करने के लिये वज्र धारण करते और शत्रुओं से जूझते हैं। तुम उन्हीं महान् ऐश्वर्य वाले इन्द्र से रक्षा की याचना करते हुए उनका आश्रय प्राप्त करो ।५। इन्द्र ने शत्रुओं के नगर को तोड़ा। उन्होंने जब वृत्र जैसे दुर्धर्ष शत्रु का हनन किया, तब पृथिवी जल से परिपूर्ण हुई। तब इन्द्र की क्षमता सब पर प्रकट हुई और सब यह जान गए कि इन्द्र कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं ।।६।। (५)

सूक्त ७५

(ऋषि—सिन्धुक्षित्प्रैयमेधः । देवता—नद्यः । छन्द— जगती)

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥१
प्रतेऽरद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२
दिवि स्वनो यतते भूम्योर्पयनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥३
अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्नमातरो वाश्रा अर्षन्ति धेनवः ।
राजेव युध्वा नयास त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४
इम मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं संचता परुष्ण्या ।
असिकन्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शुशुह्या सुषोमया ॥५।६

हे जल ! उपासना करने वाले यजमान के घर में, मैं तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा का बखान करता हूँ । सात सात के रूप में नदियाँ तीन प्रकार से गमनशील हुईं । उनमें सिन्धु नाम की नदी अत्यन्त प्रवाह वाली है ।१। हे सिन्धु नदी जब तुम हरे भरे प्रदेश की ओर गमन करने वाली हुईं उस समय वरुण ने तुम्हारे प्रवाहित होने के लिये मार्ग को विस्तीर्ण किया । तुम सब नदियों में श्रेष्ठ हो और पृथिवी पर उत्कृष्ट मार्ग से गमन करती हो ।२। सिन्धु नदी का निनाद पृथिवी से उठ कर आकाश को गुन्जाता है । यह नदी अपनी प्रचण्ड लहरों और अत्यन्त वेग के साथ गमन करती है । जब यह बैल के समान घोर शब्द करती है, तब ऐसा लगता है जैसे गर्जनशील मेघ जल की वर्षा कर रहे हों ।३। माता जैसे बालक के पास जाती है और पयस्विनी गौएं अपने बछड़ों की ओर गमन करती हैं, वैसे ही प्रवाहित होती हुई सब नदियाँ सिन्धु की ओर गमन करती हैं । जैसे युद्ध में प्रवृत्त राजा अपनी सेना को संग्राम भूमि में ले जाता है, वैसे ही तुम अपने साथ चलने वाली दो नदियों को आगे-आगे लेकर चलती हो ।४। हे गंगा, यमुना, सरस्वती, सतजल, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, सुषोमा, आर्जीकीया आदि

नदियो ! तुम मेरे स्तोत्र को अपने अपने भाग में विभाजित कर मेरी याचना श्रवण करो ।।५।। [६]

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिंधो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ।।६
ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ।।७
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुरथासुवाहिरण्मयी सुकृता वाजनीवती ।
ऊर्णावति युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ।।८
सुखं रथ ययुजे सिन्धुरश्विन तेन वाज सनिषदस्मिन्नाजो ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ।।६।७

हे सिन्धुनद ! तुम पहिले तुष्टामा के संग चलीं। फिर सुमत्तु, रमा और श्वेत्या के साथ हुई। तुमने ही क्रमु और गोमती को कुभा और मेहत्न से सुसंगत किया। तुम इन सब नदियों में मिलकर प्रवाहित होती हो।६। श्वेतवर्ण वाली सिन्धु नदी सरलता से गमन करने वाली है। उसका वेगवान् जल सब ओर पहुंचता है, क्योंकि सिन्धु नदी सबसे अधिक वेगवाली है वह स्थूल नारी के समान दर्शनीय और अश्व के समान सुन्दर है।७। सिन्धु नदी सुन्दर, रथ, अश्व, वस्त्र, सुवर्ण, अनादि से सम्पन्न है। इसके प्रदेश में तृण भी उत्पन्न होते हैं। यह मधुरता के बढ़ाने वाले पुरुषों से ढकी हुई है।८। यह नदी कल्याण-कारी अश्वों वाले रथ में योजित करती है। अपने उस रथ के द्वारा अन्न प्रदान करे। सिन्धु नदी के इस रथ की यज्ञ में प्रशंसा की जाती है। वह रथ कभी हिंसित न होने वाला, महान् और यशस्वी है।७। (७)

सूक्त ७६

(ऋषि—जरत्कर्ण ऐरावतः सर्पः। देवता—ग्रावाणः। छन्दः—जगती)

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनो सचाभुवासदः सदो वरिवस्यातउद्भिदा ॥१

तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्यर्यो अभिभूत पौंस्यं महो राये चितरुते यदर्वतः ॥२

तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥३

अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायतः निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥४

दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥५।८

हे पाषाणो ! मैं तुम्हें अन्नवती उषा के आगमन के साथ ही काम में लगाता हूँ । तुम सोम प्रदान द्वारा इन्द्र मरुद्गण और आकाश पृथिवी का अनुग्रह प्राप्त कराओ । यह आकाश-पृथिवी हम में से सबके घरों में स्तुतियाँ स्वीकार करती हुई घरों को धन से सम्पन्न करें ।१। अभिषवण प्रस्तर जब हाथों में ग्रहण किया जाता है तब वह अश्व के समान वेग वाला हो जाता है । हे प्रस्तर ! तुम सोम को अभिषुत करो, जिससे अभिषवकर्त्ता यजमान शत्रुओं को पराभव करने वाली शक्ति प्राप्त करे । जब यह अश्वदान करता है, तब इसे अभीष्ट धन प्राप्त होता है ।२। मनु के यज्ञ में जैसे सोम-रस आया था उसी प्रकार पाषाण द्वारा अभिषुत होकर यह सोम जल में मिश्रित हो । यज्ञ में गौओं को और अश्वों को जल स्नान कराने तथा घर निर्मित करने आदि कर्मों में सोम के आश्रित होते हैं ।३। हे पाषाणो ! हिंसक राक्षसों को वध करो । पाप देवता को दूर भगाते हुए कुबुद्धि को दूर करो । देवताओं को हर्षप्रद स्तोत्र का सम्पादन करते हुए हमें सन्तान युक्त धन प्रदान करो ।४। जो सुधन्वा के पुत्र विभ्वा से भी शीघ्र कार्य करने वाले,

आकाश से भी अधिक तेजस्वी और सोमाभिषवकर्म में वायु से भी अधिक वेगवान् हैं, उन अग्नि से भी बढ़कर धन देने वाले अभिषवण पाषाणों को देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पूजो ॥५॥ (५)

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसोग्रावाणो वाचादिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं तध्वाघोषन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥६
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्म रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥७
एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुय सोसमन्द्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसुः वः पार्थिववाय सुवन्ते ॥८॥९

यह पाषाण हमारे यज्ञ में सोम का निष्पीड़न करें। वे श्रेष्ठ स्तोत्र रूप बाणी द्वारा हमको सोम-योग में प्रतिष्ठित करें। ऋत्विग्गण शीघ्र कर्म करते हुए सोम याग में स्तोत्र ध्वनि के द्वारा सोमरस का दोहन करते हैं ॥६॥ वे पाषाण सोम को क्षरित करते हैं। अग्नि को सींचने की कामना से स्त्रोत को चाहते हुए सोम-रस का दोहन करते हैं। अभिषव कराने वाले ऋत्विज अवशिष्ट सोम को पीकर अपने को पवित्र करते हैं॥७॥ हे पाषाणो ! हे ऋत्विजो! सुन्दर सोम का निष्पीड़न करो। इन्द्रो के निमित्त सोम का संस्कार करते हुए स्वर्ग की प्राप्ति के लिए अद्भुत पदार्थ प्रस्तुत करो और निवास के योग्य श्रेष्ठ धन यजमान को प्रदान करो ॥८॥ (८)

सूक्त ७७

(ऋषि—स्यूमररश्मि भार्गवः। देवता—मरुतः। छन्द—त्रिष्टुप, जगती)

अभ्रप्रुषो न वाच प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुतं न ब्रह्मणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥१
श्रिये मर्यासो अञ्जींरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवुस्युत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥२

प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो मर्या अभिद्यवः ॥३
युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४
यूय धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासोनस्वयशसोरिशादसःप्रवासोनप्रसितासः परिप्रुषः ॥५।१०

स्तुतियों द्वारा प्रसन्न हुए मरुद्गण मेघ से जल-बिन्दु वैभव की वृष्टि करते हैं। वही सम्पन्न यज्ञ के समान विश्व के रचयिता हैं। मैं मरुद्गण के दल का यथार्थ पूजन नहीं कर सकता हूँ। मैंने इनकी स्तुति भी नहीं की है ॥१॥ आरम्भ में मनुष्य रूपी मरुद्गण अपने पुण्यकर्मों द्वारा देवता बने अनेक सेनायें एकत्र होकर भी उन्हें हरा नहीं सकती। दिव्य लोक के वासी इन मरुद्गणों ने अभी हमको दर्शन नहीं दिये, क्यों कि अभी हमने इनकी स्तुति नही की है ॥२॥ पृथिवी और स्वर्ग में यह मरुद्गण स्वयं प्रवृद्ध हुए हैं। सूर्य के मेघ से बाहर निकलने के समान ही मरुद्गण प्रकट हुए हैं। यह वीर पुरुषों के समान प्रशंसा की कामना करते हैं और शत्रु का संहार करने वाले मनुष्यों के समान तेजस्वी हैं ॥३॥ हे मरुद्गण ! जब तुम पृथिवी पर वृष्टि करते हो तब पृथिवी न तो व्याकुल होती है और न बलहीन ही होती है। तुम अन्नवान् पुरुषों के समान एकत्र होकर आगमन करो ।४। हे मरुद्गण ! रस्सी से योजित रथ जिस प्रकार गमन करने वाला होता है वैसे ही तुम गमन वाले हो। प्रातःकालीन प्रकाश के समान तुम प्रकाशित हो और बाज के समान शत्रु के भगाने वाले हो। तुम स्वयं यशस्वी होते हो और सब ओर विचरण करते हुए जल-वृष्टि करते हो ॥५॥ (१०)

प्रयद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ॥६
य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥७

ते हि यज्ञेष यज्ञियास ऊमा आदित्येन याम्ना शम्भविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनोषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥८॥११

हे मरुद्गण ! बहुत दूर में तुम अभीष्ट धन लाते हो । द्वेष करने वाले शत्रुओं को दूर भगाते हुए तुम उनके धनों को प्राप्त कर लेते हो ॥६॥ जो यज्ञ कर्त्ता पुरुष अपने यज्ञ के पूर्ण होने पर अनुष्ठान करता हुआ मरुद्गण को हवि देता है, वह पुरुष अन्न, धन और अपत्यादि को प्राप्त करता हुआ देवगण के साथ बैठकर सोम पीने वाला होता है ॥७॥ मरुद्गण यज्ञ के अवसर पर रक्षा करने वाले हैं । अदिति जल-वृष्टि द्वारा सुख प्रदान करती हैं, वे अपने द्रुतगामी रथ से आकर हमें शोभनबुद्धि दें ॥८॥ (११)

सूक्त ७८

(ऋषि—स्यूमरश्मिभार्गवः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्,जगती)

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसन्दृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥१
अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठा सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥२
वातासो न ते धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनाँ न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितृणां न शंसा सुरातयः ॥३
रथानाँ न ये राः सनाभयो जिगीवासो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥४
अश्वासो न ये ज्येष्ठा आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपाअङ्गिरसोनसामभिः ॥५॥१३

विद्वान् स्तोता जैसे स्तोत्र से प्रीति रखते हैं उसी प्रकार मरुद्गण यज्ञ में श्रेष्ठ ध्यान के योग्य हैं । देवताओं को तृप्त करने की इच्छा वाले यजमान जैसे कर्मों में लगे रहते हैं, वैसे ही मरुद्गण वृष्टिपात आदि कर्मों

में व्यस्त रहते हैं। वे मरुद्गण राजाओं के समान पूज्य और गृह स्वामी के समान सत्कार के योग्य हैं ॥१॥ अग्नि के समान तेजस्वी मरुद्गण अपने हृदय पर सुन्दर अलङ्कार धारण करते हैं। वे वायु के समान शीघ्रगन्ता और ज्ञानियों के समान पूजनीय हैं। जैसे सोम यज्ञ में जाते हैं वैसे ही वे श्रेष्ठ चक्षु और मुख वाले मरुद्गण यज्ञ में गमन करते हैं ।२। वायु के समान शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले मरुद्गण वायु वेग से ही गति करते हैं। अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी, कवच धारण करने वाले योद्धाओं के समान वीर-कर्मा और पितरों के आशीर्वाद के समान दाता हैं ॥३॥ रथ चक्र के डंडे के समान मरुद्गण एक नाभि से युक्त है। वे दान के देने वाले के समान जल के सींचने वाले, वीरों के समान विजयशील हैं। जैसे श्रेष्ठ स्तोत्र करने वाले शब्द करते हैं, उसी प्रकार मरुद्गण भी शब्द करते हैं ॥४॥ अश्वों के समान द्रुत गति वाले मरुद्गण धन-सम्पन्न रथ के स्वामियों के समान श्रेष्ठ दान के देने वाले हैं। जैसे नदियों का जल नीचे बहता है, वैसे ही वे नीचे की ओर वृष्टि करते हैं। वे विविध रूप धारण करने वाले और अंगिराओं के समान साम-गायक हैं ॥५॥

(१२)

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीलयः सुमातारो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥६
उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७
सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्स्तोतृन्मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८।१३

जैसे जल देने वाले मेघ नदियों को प्रवाहित करते हैं, वैसे ही मरुद्गण करते हैं। जैसे वज्र आदि आयुध ध्वंस करने में समर्थ हैं वैसे ही वे शत्रु संहार करने में समर्थ हैं जैसे वात्सल्यमयी माता का शिशु निर्भय खेलता

है, उसी प्रकार वे क्रीड़ा करते हैं। वे महिमावान् व्यक्तियों के समान यशस्वी हैं।६। कल्याण चाहने वाले वरों के समान अलंकृत और उषा की रश्मियों के समान यज्ञ को आश्रय देने वाले हैं। नदियों के समान प्रवाह वाले और प्रदीप्त आयुध वाले हैं। दूर जाने वाले पथिक के समान वे मरुद्गण बहुतों को लाँघते हुए गमन करते हैं।।७।। हे मरुद्-गण ! तुम स्तुतियों के द्वारा प्रसन्न होकर स्तोताओं को श्रेष्ठ धन से सम्पन्न करो। तुमने हमें सदा ही धन प्रदान किया है अतः हमारे स्तोत्र को धारण करो।८। [१३]

सूक्त ७९

(ऋषि—अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, सप्तिर्वा वाजम्भरः।
देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥३

तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥४

यो अस्मा अन्नं तृष्वा दधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥५

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान्।
अक्रीळन् क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ॥६

विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान्।

चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ॥७॥१४

मरणशील मनुष्यों में निवास करने वाले अविनाशी अग्नि की महानता से मैं परिचित हूँ। यह अपने अद्‌भुत जबड़ों द्वारा चबाते नहीं, अपितु काष्ठादि को खाते हैं ।१। गुप्त स्थान में मस्तक वाले तथा विभिन्न स्थानों में नेत्र वाले अग्नि बिना चबाये ही काष्ठ को खा लेते हैं। इनके लिए हव्य जुटाने वाले यजमान इनके निकट लाकर हाथ जोड़ते हुए नमस्कार करते हैं ।२। यह अग्नि रूप वाले शिशु अपनी मातृ रूप पृथिवी पर गमन करते हुए लता आदि को खाते हैं। पृथिवी के जो वृक्ष आकाश स्पर्शी कहे जाते हैं उन्हें यह पक्वान्न के समान ग्रहण करते हुए अपनी ज्वालाओं से भस्म कर डालते हैं ।३। हे द्यावा पृथिवी ! मेरी यथार्थ बात श्रवण करो। अरणियों द्वारा उत्पन्न यह अग्नि रूप शिशु अपने माता-पिता रूप अरणियों को खा जाते हैं। मैं अल्पज्ञान वाला मनुष्य अग्निदेव के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। हे वैश्वानर ! तुम्हारा ज्ञान कैसा है—यह मैं भी नहीं जानता ।४। अग्नि को शीघ्र हवि देने वाले, गोघृत और सोम से आहुति देने वाले और काष्ठादि से प्रदीप्त करने वाले यजमान को अग्नि अपनी असंख्य ज्वालाओं से देखते हैं। ऐसे हे अग्ने ! तुम हमारे ऊपर कृपा करते हो ।५। हे अग्ने ! मैं अनजान तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुमने कभी देवताओं पर भी कोप किया था ? हरे वर्ण वाले अग्नि क्रीड़ा करते, न करते भी काष्ठादि का भक्षण करते समय उसे वैसे ही टुकड़े कर डालते हैं, जैसे तलवार से किसी के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं ।६। जब अग्नि जङ्गल में प्रज्वलित हुए तब उन्होंने पुष्ट होकर द्रुतगामी अश्वों को रस्सी में बाँधकर योजित किया। काष्ठ के टुकड़ों से अवृद्ध होने वाले अग्नि काष्ठ रूप अन्न को प्राप्त कर उसे विचूर्णित कर देते हैं ।७। [१४]

सूक्त ८०

(ऋषि—अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा। देवता—अग्निः।
छन्द—त्रिष्टुप्)

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् ॥१
अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥२
अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम् ॥३
अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४
अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥५
अग्निं विश ईलते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ॥६
अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥७।५

संग्राम भूमि में शत्रुओं से धन जीत कर लाने वाले अश्व का अग्नि अपने उपासकों को प्रदान करते हैं । वे आकाश पृथिवी को सुशोभित कर घूमते और स्तोता को यज्ञ की कामना वाला वीर पुत्र प्राप्त कराते हैं । स्त्री भी उनकी कृपा से वीर पुत्र को जन्म देने वाली ।१। अग्नि के कार्य में आने वाले समिधाएँ कल्याण करने वाली हों । वे अपने तेज से आकाश-पृथिवी को पूर्ण करते हैं । संग्राम भूमि में वे अपने उपासकों को विजयी करते हुए उनके अनेक शत्रुओं को संहार करते हैं ।२। अग्नि ने जरूथ नामक शत्रु को जल से निकाल कर जलाया और जरत्कारु नामक ऋषि की भले प्रकार रक्षा की । तप्त कुण्ड में पड़े अत्रि ऋषि का उद्धार भी अग्नि ने किया और उन्होंने निःसंतान नृमेध ऋषि को श्रेष्ठ संतान सेयुक्त किया ।३। ज्वाला रूप धन वाले अग्नि सहस्र गौओं वाले ऋषि को मन्त्र

द्रष्टा पुत्र प्रदान करते हैं। उनके इस पृथिवी पर अनेक विशाल देह हैं। यजमानों द्वारा प्रदत्त हव्य को अग्नि स्वर्गलोक में ले जाते हैं ।४। ऋषिगण, यज्ञारम्भ में श्रेष्ठ मन्त्रों से अग्नि को आहूत करते हैं। रण के उपस्थित होने पर मनुष्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के निमित्त अग्नि को आहूत करते हैं। नभचर पक्षी भी अग्नि का आह्वान करते हैं। वे अग्नि सहस्रों गौओं को घेर कर यज्ञ में आगमन करते हैं ।५। मनुष्य और नहुष—वंश वाले पुरुष अग्नि को स्तोत्र करते हैं। अग्नि देवता गन्धर्वों के हितकारी वचनों को यज्ञ के लिए सुनते हैं। अग्नि का मार्ग घृत में निहित रहता है ।६। मेधावी ऋतुओं ने अग्नि सम्बन्धी स्तोत्र की रचना की। हम भी उन महिमावान् अग्नि का स्तोत्र कर चुके हैं। हे अग्ने! महान् धन देते हुए, इस स्तोता की रक्षा करो ।७। [१५]

सूक्त ८१

(ऋषि—विश्वकर्मा भौवनः। देवता—विश्वकर्मा। छन्द—त्रिष्टुप्)

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥१
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥५
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७।१५

विश्वकर्मा हमारे पिता और होता हैं । आरम्भ में वे संसार का यज्ञ करके स्वयं अग्नि में प्रतिष्ठित हुए स्वर्ग रूप धन की इच्छा करते हुए वे स्तोत्रादि से सम्पन्न होकर अपने निकटस्थ प्राणियों के सहित स्वयं भी अग्नि में समा गये ।१। सृष्टि के रचना-काल में विश्वकर्मा किसके आश्रित थे ? उन्होने सृष्टि कार्य किस प्रकार आरम्भ किया ? विश्व के देखने वाले उन विश्वकर्मा ने किस स्थान पर आश्रय लिया और किस प्रकार पृथिवी तथा आकाश की रचना की ? ।२। विश्व-कर्मा के नेत्र, मुख भुजा और चरण सब ओर हैं । वे अपने बाहु और चरणों से द्यावापृथिवी को प्रकट करते हैं । वे विश्वकर्मा एक हैं ।३। विश्वकर्मा ने कौन-से वन के किस वृक्ष द्वारा आकाश-पृथिवी की रचना की ? हे मेधावी जनो ! तुम अपने ही मन से प्रश्न करो कि वे विश्व-कर्मा किस पदार्थ पर खड़े होकर संसार को स्थिर करते हैं ? ।४। हे विश्वकर्मा ! तुम यज्ञ के ग्रहण करने वाले हो । तुम हमें यज्ञ के अवसर पर उत्तम, मध्यम साधारण देह को बताओ । तुम अन्न से सम्पन्न होते हुए भी यज्ञ द्वारा अपने शरीर का पोषण करते हो ।५। हे विश्वकर्मा ! आकाश-पृथिवी में यज्ञ करके तुम अपने देह का पोषण करते हो । हमारे यज्ञ का विरोध करने वाले शत्रु चैतन्य न रहें और हमारे यज्ञ में विश्वकर्मा हमको कर्म फल के रूप में स्वर्गादि लोक प्राप्त करावें ।६। अपने यज्ञ की रक्षा के लिए आज हम विश्वकर्मा को आहूत करते हैं । वे हमारे सब यज्ञों में उपस्थित हों । वे श्रेष्ठ कर्म वाले हमारी रक्षा में सावधान रहते हैं ।७। [१६]

सूक्त ८२

(ऋषि—विश्वकर्मा भौवनः । देवता—विश्वकर्मा । छन्द—त्रिष्टुप्)

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ।।२
योनः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ।।६
त आयजन्त द्रविणं समस्या ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि रिषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ।।४
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ।।५
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकसमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवमानि तस्थुः ।।६
न तं विदाथ य इमा जाजानान्यद्युष्माकमन्तर वभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्पशासश्चरन्ति ।।७

शरीरों के रचने वाले और अत्यन्त धीर विश्वकर्मा ने जल को सर्वप्रथम रचा फिर जल में इधर-उधर चलती हुई आकाश पृथिवी की रचना की । फिर आकाश-पृथिवी के प्रदेशों को स्थिर किया । इसके पश्चात् आकाश-पृथिवी की ख्याति हुई ।१। विश्वकर्मा का मन महान् है । वे स्वयं महान् हैं । वे सर्वद्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ और सबके निर्माता हैं । वे सप्तर्षियों के दूरस्थ स्थान को भी देखते हैं । यहाँ वे अकेले ही हैं । उनके द्वारा विद्वानों की अन्न-कामना पूर्ण होती है ।२। संसार के उत्पत्ति-कर्त्ता विश्वकर्मा हमारे उत्पन्न करने वाले तथा पालन करने वाले हैं। वे जगत के सभी स्थानों के जानने वाले हैं उन्होंने देवताओं का नामकरण किया है । सभी प्राणी उन एक मात्र देवता को प्राप्त करने के विषय में जिज्ञासु बनते हैं ।३। जिन ऋषियों ने स्थावर जंगम संसार की उत्पत्ति पर धनादि दिया, उन्हीं पुरातन-कालीन ऋषियों ने धन व्यय करने वाले स्तोता के समान यज्ञ कर्म का आरम्भ किया था ।४। वह आकाश-पृथिवी, राक्षसों और देवताओं को पार करके अवस्थित

हैं। ऐसा कौन-सा गर्भ जल में है जिसमें इन्द्रादि सब देवता परस्पर एकत्र होते हुए दिखाई पड़ते हैं ? ।५। वही विश्वकर्मा जल द्वारा गर्भ में धारण किये गये । सब देवता गर्भ में ही पलते हैं । 'अज' की जिस नाभि में ब्राह्माण्ड अवस्थित है, उस नाभि-रूप ब्रह्माण्ड में विश्व के सभी प्राणी निवास करते हैं ।६। तुम उन विश्वकर्मा को नहीं जानते जिन्होंने समस्त प्राणियों की रचना की है । तुम्हारे हृदय ने अभी उन्हें भले प्रकार नहीं पहिचाना है । अज्ञान से दबे हुए मनुष्य विभिन्न प्रकार की बात करते हैं । वे अपने जीवन के निमित्त भोजन और स्तोत्र करते हैं। वे अपने स्वर्ग फल वाले कर्मों में लगे रहते हैं ।७। [१७]

सूक्त ८३

(ऋषि—मन्युस्तापसः । देवता—मन्युः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्यु विश ईलते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोसाः ॥२
अभोहि मन्यो तवसस्तदीयांत्तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४
अभागः पन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीलाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥५
अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥६
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि चङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिवाव ॥७॥१८

हे मन्यु देवता ! तुम वज्र और वाण के समान तीक्ष्ण क्रोध वाले हो । जो यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, वह ओज और बल का धारण करने वाला होता है । तुम महाबली हो, अतः तुम्हारी सहायता से हम अपने शत्रुओं को पराभूत करें ।१। मन्यु देवता है, वही जातवेद अग्नि और इन्द्र हैं । वही वरुण और होता हैं । सभी मनुष्य मन्यु की पूजा करते हैं । हे मन्यो ! हमारे पिता के सहयोग से तुम हमारी रक्षा करने वाले होओ ।२। हे महावली मन्यो ! यहाँ आगमन करो । मेरे पिता की सहायता लेकर शत्रुओं को नष्ट कर डालो । तुम शत्रुओं का नाश करने वाले, वृत्र के हननकर्त्ता हो । तुम हमारे निमित्त समस्त धनों को यहां लाओ ।३। हे स्वयं उत्पन्न हुए मन्यो ! तुम शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ हो । शत्रुओं के आक्रमण को सहने वाले महाबली और तेजस्वी हो । अतः हमारे वीरों को भी तेजस्वी बनाओ ।४। हे मन्यो ! तुम श्रेष्ठ ज्ञान वाले और महान् हो । मैं तुम्हारे यज्ञ का आयोजन न कर सकने के कारण तुम्हें नहीं पूज सका । तुम्हारे कर्म में प्रमाद करने के कारण मैं अत्यन्त लज्जित हूं । तुम अपने स्वभाव के अनुसार मुझे सशक्त बनाने के लिए आगमन करो ।५। हे मन्यो ! मैंने तुम्हारे समीप गमन किया है तुम मुझ पर अनुग्रह कर मेरे निकट प्रकट होओ । हे सर्वधारक, वज्रधारी, सहनशील मन्यो ! तुम मेरे पास बढ़ो और मुझे अपना मित्र समझो । तुम्हारी ऐसी कृपा को पाकर राक्षसों को मारने में समर्थ हो सकूंगा ।६। हे मन्यो ! मेरे पास आकर दक्षिण हस्त की ओर प्रतिष्ठित होओ । तब हम अपने शत्रुओं को मार सकेंगे । मैं तुम्हारे लिये श्रेष्ठ सोम रूप हव्य देता हूं । फिर हम दोनों ही मिलकर मधुर सोम-रस का पान करेंगे ।७। [१८]

सूक्त ८४

(ऋषि—मन्युस्तापसः । देवता—मन्युः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥१

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ।।२
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ।।३
एको बहूनामसि मन्यवीलितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ।।४
विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो स्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ।।५
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्यधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ।।६
संसृष्टं धनमुभयं समाकृतं मस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ।।७।।१९

हे मन्यो ! मरुद्गण आदि संग्राम का नेतृत्व करने वाले देवता पुष्ट होकर तीक्ष्ण धार वाले आयुधों को ग्रहणकर और अग्नि के समान दाहक बन कर तुम्हारे साथ रथ पर चढ़ कर सहायता के लिए रणभूमि में स्थान करें। १ । हे मन्यो ! तुम अग्नि के समान तेजस्वी होकर शत्रुओं का पराभव करो। तुम युद्ध में हमारे सेनापति होओं, इसलिए हम तुम्हें आहूत करते हैं। हमको बल प्रदान कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले बनाओ और उनका धन जीत कर हमें दे दो। २। हे मन्यो ! हमारे प्रतिस्पर्द्धी शत्रु का नाश करो। उन्हें मारते-काटते हुए उनका सामना करो। तुम इकले ही सब शत्रुओं को वशीभूत करते हो, क्योंकि तुम्हारे बल को रोकने का सामर्थ्य अन्य किसी में भी नहीं है। ३ । हे मन्यो ! तुम एकाकी हो। संग्राम के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरित करो। तुम जब सहायता करोगे तब हमारा तेज कभी नष्ट नहीं होगा। हम विजय की कामना करते हुए सिंहनाद करते हैं और तुम्हारी स्तुति करते हैं। ४। हे मन्यो ! तुम अनिंद्य हो। हम तुम्हारी प्रिय स्तुति करते हैं। तुम इन्द्र के समान हो। शत्रुओं को

जीतने वाले हो । तुम हमारे इस यज्ञ में रक्षाकारी होओ । तुम बल के उत्पन्न करने वाले हो और स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हो । ५ । हे रिपुहन मन्यो ! तुम स्वभाव से ही शत्रु-नाशक हो । तुम सदा श्रेष्ठ तेज को धारण किये रहते हो हमारे संग्राम में तुम अपने कर्म से पुष्ट होओ । अनेक जन तुम्हें आहूत करते हैं । ६ । वरुण और मन्यु प्राप्त और विजित धनों को हमें दें । उनकी कृपा से भयभीत और पराजित शत्रु कहीं जा छिपें । ७ । (१६)

सूक्त ८५ [सातवाँ अनुवाक]

(ऋषि—सूर्या सावित्री । देवता—सोमः सूर्याविवाहः । देवाः सोमार्को, चन्द्रमाः, तृणांविवाहमन्त्रा आशीः प्रायाः, वधूवासः संस्पर्शनिन्दा । छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप् जगती, बृहती)

सत्येनोत्तभित्ता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥१
सोमेनादित्या बलिन सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२
सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमे यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वान्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥४
यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥५।२०

देवताओं में प्रमुख ब्रह्मा ने पृथिवी को आकाश के आकर्षण में रोक लिया है । सूर्य ने स्वर्ग को स्थित किया है । देवगण यज्ञाहुति के आश्रित रहते हैं । सोम स्वर्ग में स्थित हैं । १ । सोम के बल से इन्द्रादि देवता बलवान होते हैं । सोम के द्वारा ही पृथिवी महिमामयी हुई है । यह सोम

नक्षत्रों के समीप अवस्थित किया गया है । २ । जब वनस्पति रूप वाले सोम को पीसते हैं तब ऐसा लगता है जैसे सोम पी लिया हो परन्तु ब्राह्मण जिसे यथार्थ सोम बताते हैं, उसे यज्ञ न करने वाला कोई पुरुष नहीं पी सकता । ३ । हे सोम ! स्तोतागण ! तुम्हें अप्रकट रखते हैं । तुम प्रस्तर के शब्द को सुनते हो कोई मनुष्य तुम्हें पी नहीं सकता । ४ । हे सोम ! तुम्हें पीने पर तुम भी बढ़ते हो । जैसे मास वर्ष का पोषण करते हैं, वैसे ही वायु सोम को पुष्ट करते हैं । दोनों ही समान रूप वाले हैं । ५ । (२०)

रंभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाययैति परिष्कृतम् ।।६
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षु रा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ।।७
स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विनना वराग्निरासीत्पुरोगवः ।।८
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्या यत्पत्ये शंसन्तीं मतसा सवितादद्दाम् ।।९
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदिः ।
शुक्रावनड् वाहावास्ता यदयात्सूर्या गृहम् ।।१०।२१

जब सूर्या का विवाह हुआ, तब रैभी नाम की ऋचाऐं उसकी सखी बनीं, नाराशसी नाम की ऋचाऐं उसकी सेविका हुईं और उसका श्रेष्ठ परिधान साम गान से सुसज्जित हुआ । ६ । जब सूर्या पति के घर में पहुंची तो वहाँ चैतन्य रूप चादर बना, नेत्र उबटन हुआ और आकाश पृथिवी कोष हुए । ७ । स्तोत्र रथ-चक्र के डण्डे हुए, कुरिर नामक छन्द रथ के आंतरिक भाग हुए,अग्नि के आगे चलने वाले दूत हुए औरअश्विद्वय उसके पति थे । ८ । जब सूर्य ने सूर्या का विवाह किया, तब सोम वरण करना चाहते थे । उस पतिकामा सूर्या के वर अश्विनीकुमार ही निश्चित

किये गये । ९ । जब सूर्या पति गृह को चली तब उसका मन ही शकट हुआ, आकाश ओढ़ना बना और सूर्य चन्द्र उसके रथ के वहन करने वाले हुए । १० । (२१)

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ।।११
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ।।१२
सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्यु ह्यते ।।१३
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वेदेवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितराववृणीत पूषा ।।१४
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थयुः ।।१५।२२

ऋग्वेद और सामवेद में वर्णित वृषभ के समान सूर्य और चन्द्रमा उसके रथ को खींचने वाले बने । हे सूर्या ! रथ के दोनों चक्र तुम्हारे कान हुए और आकाश रथ का मार्ग बना । ११ । तुम्हारे गमन काल में रथ के दोनों चक्र नेत्र के समान उज्ज्वल हुए । तब सूर्या अपने मन के समान रथ पर आरूढ़ हुई । १२ । पति-गृह की ओर गमन करते समय सूर्य ने उसे जो ओढ़नी दी थी, वह आगे चली । मघा नक्षत्र जब उदय हुआ तब विदाई में दी गई गौऐं हाँकी गईं और अर्जुनी में चादर रथ से ले जाई गई । १३ । हे आश्विनीकुमारो ! जब तुम दोनों ने तीन चक्र वाले रथ पर आरोहण किया और सूर्या के विवाह की बात जान कर उससे विवाह किया तब सब देवताओं ने तुम्हारे कार्य का अनुमोदन किया । उस समय पूषा ने तुम्हें स्वीकार किया । १४ । हे अश्विनी-कुमारो ! जब तुम वर रूप में सूर्या के समीम गये थे, तब तुम्हारे रथ का चक्र कहाँ था ? तुम मार्ग को जानने की इच्छा से किस स्थान पर खड़े हुए थे । १५ । (२२)

द्वे ते चक्रे सूर्य ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीलन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८
नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१६
सुकिंशुकं शाल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०।२३

हे अश्विद्वय ! तुम्हारे कालानुसार चलने वाले दो चक्र प्रसिद्ध हैं और गोपनीय चक्र को मेधावी जन भले प्रकार जानते हैं ।१६। मित्रावरुण, सूर्या तथा सभी देवता प्राणियों के हितैषी हैं । मैं उन्हें प्रणाम करता हूं ।१७। यह दोनों बालक पूर्व पश्चिम में अपनी शक्ति से घूमते और क्रीड़ा करते हुए, यज्ञ में आगमन करते हैं इनमें चन्द्रमा ऋत का संचालन करते हैं ।१८। दिवस की सूचना देने वाले सूर्य नित्य प्रातःकाल नवीन होकर उदित होते हैं । उनके आगमन पर देव-यागों की योजना होती है । चन्द्रमा दीर्घ आयु प्रदान करते हैं ।१६। हे सूर्या ! तुम पति गृह को गमन करते समय श्रेष्ठ पलाश और शाल्मली वृक्ष के काष्ठ से निर्मित सुन्दर, सुवर्ण के समान उज्ज्वल और चक्र-युक्त रथ पर आरूढ़ होओ । तुम सोम के निमित्त सुख देने वाले अविनाशी स्थान में गमन करो ।२०। [२३]

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१
उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज ॥२२

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभि सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनियात्सं जास्पत्य सुयममस्तु देवाः ॥२३
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा वभगासति ॥२५॥२४

हे विश्वावसो ! इस कन्या का पाणिग्रहण हो चुका है । अब तुम यहाँ से उठो । मैं इस स्तोत्र और नमस्कार के द्वारा तुम्हारा स्तव करता हूं । यदि कोई अन्य कन्या विवाह योग्य होगई हो तो उसे ग्रहण करने को गमन करो ।२१। हे विश्वावसु ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हुआ पूजता हूँ । तुम यहाँ से उठो और अन्य किसी कन्या के पास जाकर उसे ग्रहण करो ।२२। हे देवताओ ! जिन मार्गों से हमारे मित्र-सम्बन्धी कन्या के पिता के पास गमन करते हैं, उन मार्गों को काँटों से रहित एवं सरल करो । अर्यमा और भग हमें भले प्रकार पार करें । यह पति-पत्नि समान मति वाले होकर रहें ।२३। हे कन्ये ! सूर्य ने तुम्हें जिस पाश से बाँधा था, उस वरुणपाश से मैं तुम्हें मुक्त करता हूं । जिस स्थान पर सत्कर्मों का वास है और सत्य का मार्ग ही जहाँ जाता है, उस सत्यरूप स्थान पर तुम्हें पति के साथ प्रतिष्ठित करता हूं ।२४। पितृकुल से कन्या को पृथक् करता हूँ । मैं इसे पति-गृह में भले प्रकार प्रतिष्ठित करता हूँ । हे इन्द्र ! यह कन्या सुन्दर भाग वाली और श्रेष्ठ पुत्र रूप सन्तान वाली हो ।२५। [२४]

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्व प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनो त्वं विदथमा वदासि ॥२६
इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं स सृजस्वाधा जिव्री विदमथा वदाथः ॥२७
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्वंधेषु बध्यते ॥२८
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९
अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥३०।२५

हे सूर्या, पूषा तुम्हें हाथ में उठाकर ले जाँय । तब अश्विनीकुमार रथ में बैठाकर घर ले जाँय । वहाँ तुम श्रेष्ठ गृहिणी बनो, और पतिगृह में निवास करती हुई भृत्यादि पर शासन करो ।२६। हे कन्ये ! पतिगृह में पुत्र-प्रसवा होती हुई सुख पाओ । स्वामी से प्रीति स्थापित करो और वृद्धावस्था तक अपने घर पर शासन करने वाली रहो ।२७। पाप देवता नीले लाल हो रहे हैं । इस स्त्री पर कृत्या प्रेरित की जाती है । इस स्त्री के जातीय व्यक्ति प्रवृद्ध हो रहे हैं और इसका पति सांसारिक बन्धनों में बँधा है ।२८। हे पति पत्नी, मैले वस्त्र को त्याग कर ब्राह्मणों को दान दो । कृत्या प्रस्थान कर गई । अब पति से पत्नी मिल रही है ।२९। पत्नी के वस्त्र से पति अपने शरीर को ढके तो उस पर कृत्या का कोप होता है और सुन्दर शरीर मलीन हो जाता है ।३०। (२५)

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
तुनस्यतान्वज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१
मा विदन्परियन्थिनो य आसिदन्ति दम्पती ।
सगेभिदुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३
तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां योब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३४

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ।।३५।२६

जो पाप-ग्रह वर द्वारा वधू को प्राप्त हुए प्रसन्नताप्रद चादर को लेने की इच्छा करते हैं, यज्ञ-भाग पाने वाले देवता उनके मनोरथ को विफल कर दें ।३१। इन पति पत्नी के प्रति जो व्यक्ति शत्रु-भाव रखें, वे नष्ट हो जांय । इनके शत्रु दूर भागें । कल्याण के सामने अमङ्गल भी नाश को प्राप्त हो ।३२। आशीर्वाद देने वाले जन इस वधू को देखें । यह मङ्गलमयी अपने पति की प्रियपात्री हो, ऐसा आशीर्वाद दें और फिर अपने-अपने गृहों को लौट जांय ।३३। यह वस्त्र व्यवहार करने योग्य नहीं है । यह मलीन दूषित और विष से युक्त हैं । सूर्य को जानने वाला मेधावी ब्राह्मण इस वस्त्र को प्राप्त कर सकता है ।३४। सूर्या का रूप कैसा है ? इसका वस्त्र कहीं आगे बीच में और कहीं सब ओर से फटा है । ब्रह्मा ही इसके वस्त्र को ठीक करने में समर्थ हैं ।३५। (२६)

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।।३६
तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां वीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेषम् ।।३७
तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ।।३८
पुनः पत्नीमग्निरदामायुषां सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ।।३९
सोमः प्रथमो विवदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ।।४०।२७

हे कन्ये ! तुझे सौभाग्यवती बनाने के लिए मैं तेरा पाणिग्रहण

करता हूं। तुम मुझे स्वामी रूप से प्राप्त करती हुई वृद्धावस्था तक साथिनी रहना। भग, अर्यमा और पूषा देवताओं ने मुझे प्रदान किया है ॥३६॥ हे पूषन् ! नारी कल्याणमयी बना कर प्रेरित करो तब हम उसके साथ सुखपूर्वक रहेंगे ॥३७॥ हे अग्ने ! सूर्या को पहले तुम्हारे ही पास ले जाते हैं। तुम उसे पति के हाथों में देते हो ॥३८॥ अग्नि ने उस कन्या को सौन्दर्य और सौभाग्य के निमित्त प्रदान किया है। उसका स्वामी शतायुष्य होगा ॥ ६९ ॥ हे नारी ! तुम्हारा प्रथम पति सोम, द्वितीय गन्धर्व और तृतीय अग्नि हैं। यह मनुष्य तुम्हारा चतुर्थ पति है ॥४०॥ (२७)

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये ।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१
इहैव स्त मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीलन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३
अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४
इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादश कृधि ॥४५
सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६
समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७।२७

वह स्त्री सोम द्वारा गन्धर्व को दी गई गन्धर्व ने उसे अग्नि को दिया अग्नि ने उसे धन और सन्तान से सम्पन्न करके मुझे देदी ॥४१॥ हे वर

वधु ! तुम समान प्रीति वाले होकर यहाँ निवास करो। विभिन्न प्रकार के भोजनों को प्राप्त करते हुए तुम पुत्र-पौत्रों सहित प्रसन्नतापूर्वक सुख भोग करो ॥४२॥ ब्रह्मा हमें अपत्यवान् बनावें। अर्यमा हमें वृद्धावस्था तक साथ रहने वाले करें। हे वधु ! तुम कल्याण कारिणी होकर इस घर में रहो और सबका मङ्गल करो ॥४३॥ हे वधु ! तुम पति के लिए मंगल करने वाली होओ। तुम्हारा नेत्र, शुभ दर्शन हो। तुम पशुओं को सुख देने वाली बनो। तुम्हारी सौन्दर्य वृद्धि हो और मन सदा प्रसन्न रहे। तुम देवताओं की उपासिका और वीर-प्रसवा होओ ॥४॥ हे इन्द्र तुम स्त्री को श्रेष्ठ पुत्र वाली और सौभाग्य से सम्पन्न बनाओ। दश पुत्रों की माता हो ॥४५॥ हे वधू ! सास, श्वसुर, ननद, देवर आदि को वश में रखने वाली होओ ॥४६॥ जल, वायु, ब्रह्मा, सरुस्वती हम दोनों को एक करें। सभी देवता हमें समान प्रीति वाले बनावें ॥४७॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

सूक्त ८६

(ऋषि—वृषाकपिरेन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्ति)

वि हि सोतारेसृक्षत नेन्द्रं देवममसत।
यत्रामदद्व षाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्थादिन्द्र उत्तरः ॥१
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु स्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३
यमिम त्वं वृषाकपिं प्रयमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत्।
शिरोन्वस्य राविषं नसुगंदुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

मैंने स्तोताओं से सोम निष्पीडन के लिये कहा था। उन्होंने वृषाकपि का स्तोत्र किया, इन्द्र का नहीं किया। वृषाकपि मेरे मित्र होकर सोम से बढ़े हुए यज्ञ में सोम पीकर प्रसन्न हुए। तो भी मैं इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हूं ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त गमनशील होकर वृषाकपि के पास पहुंचते हो। तुम सोम पीने के लिये नहीं जाते। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र वृषाकपि ने तुम्हारा कौन-सा हित किया है, जिससे तुम उदारतापूर्वक उन्हें पोषक अन्न देते हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं। ३॥ हे इन्द्र ! वृषाकपि के कान को कुक्कुट काटता है, तुम उसकी रक्षा करते हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥४॥ यजमानों ने जो घृत युक्त सामग्री मेरे लिये बना कर रखी थी उसे इस वृषाकपि ने अपवित्र कर दिया। मैं इन्द्राणि इस दुष्ट कर्म वाले को सुखी नहीं रहने देना चाहती। इसका सिर काट डालना चाहती हूं। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥५॥ (१)

न मत्स्त्री सुभसत्तारा न सुयाशुतरा भुवत्।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमोयसि विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मेअस्बसक्थिमेशिरो मे वीव हृष्यतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥७
किं सुबाहो स्वाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्निनस्त्वमभ्यमीषि वृत्राकपिंविश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९
संहोत्र स्म पुरा नारी समन वाव गच्छति ।
वेधाऋतस्यवोरिणीन्द्रपत्नीमहीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०।२

कोई अन्य नारी मुझसे अधिक सौभाग्यवती और पुत्रवती नहीं है। मुझसे बढ़कर कोई स्त्री अपने स्वामी को सुख देने में समर्थ नहीं होगी ॥६॥ हे माता ! तुम सौभाग्यवती हो। तुम्हारे अंग आवश्यकतानुसार

हो जाते हैं। तुम पिता को प्रसन्न करो। इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं। ।।७।। हे इन्द्राणी ! तुम सुन्दर अंगों वाली हो। वृषाकपि पर इस समय क्यों क्रोधित हो रही हो ? इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।।८।। यह वृषाकपि हिंसक स्वभाव वाला है। यह मुझ पुत्र और पति वाली नारी से पति विहीना और पुत्र रहिता के समान व्यवहार कर रहा है। मुझ इन्द्र पत्नी के मरुद्गण सहायक हैं। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।।९।। यज्ञ के अवसर पर पति और पुत्र वाली इन्द्राणी उसमें भाग लेती हैं। उन यज्ञ संयोजिका की सभी पूजा करते हैं इन्द्र सब में श्रेष्ठ हैं ।।१०।।

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहश्रवम् ।
नह्यस्या अपरंचन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।११
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्य हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।१२
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
धसत्तइन्द्रउक्षणः प्रियकाचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।१३
उक्ष्णोहिमें पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमेद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मेविश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१४
वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यतेसुनोतिभावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।१५।३

इन्द्राणा को मैंने सबसे अधिक सोभाग्यवती समझा है क्योंकि इसके पति को अन्य मरणशील पुरुषों के समान मरण प्राप्त नहीं होता। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।।११।। हे इन्द्राणी ! बृषाकपि मेरा हितैषी है, उसके बिना मैं प्रसन्न नहीं रहता। उसका ही हव्यादि पदार्थ देवताओं को प्राप्त होता है। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।।१२।। हे वृषाकपि की पत्नी ! तुम धनवती, पुत्रवती श्रेष्ठ वधू हो इन्द्र तुम्हारे श्रेष्ठ हव्य का भक्षण करने वाले हों। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।।१३।। इन्द्राणी द्वारा प्रेरित याज्ञिकों के अन्न से मैं

हृष्ट होता हूँ । अभिषवकर्त्ता याज्ञिक सोम से मेरी कुक्षियों को परिपूर्ण करते हैं । इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥१०॥ हे इन्द्र ! जैसे बैल तीक्ष्ण शब्द करता है, वैसे ही करो । शब्द करता हुआ दधि मन्थन तुम्हारे हृदय को सुखी करे । जिस सोम को इन्द्राणि निष्पन्न करती हैं, वह सोम भी कल्याणकारी हो । इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥५॥ [३]

न सेशे यस्य रम्बतेऽरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमश निषेदुषो विम्भते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या
कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७
अयतिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां चरुमादेधस्यान आचित
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८
अयमेमि विचाकशद्विचिन्दांसमार्यम् ।
पिवामि पाकसुत्वनोऽभि धोरमचाकश
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९
धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदियसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयाव है ।
य एषः स्नप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा
पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१
यदुद्ञ्चो वृषाकपे गृहमिस्न्द्राजगन्तन ।
क्वस्य पुल्वधो, मृगः कमगञ्जनयोपनो ।

विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामय
द्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥४

वह मनुष्य शक्तिशाली और प्रभावित करने वाला नहीं हो सकता जो सदैव शिथिल-सा बना रहता है । जो अवसर आते ही चैतन्य होकर कार्य को उद्यत होता है वही सफल होता है ।१६। जो संघर्ष के समय निर्भय भाव से कार्य करने को उद्यत हो जाता है और विरोधियों को आज्ञा देकर उन पर भी शासन करने में समर्थ होता है, वही कृतकार्य होता है ।१७। हे इन्द्र ! वृषाकपि, चोर को अपने लिए धन-सहित प्राप्त करें । यह खड्ग, चरु, काष्ठ देखता हुआ और उनके शत्रुओं को भगाता हुआ यश में आगमन करता हूं । सोमाभिषकर्त्ता और हव्य पाक करने वाले के सोम का मैं पान करता हूं और मेधावी जन का द्रष्टा होता हूं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।१८। हे वृषाकपि ? समीपस्थ घर में निवास करो । जल से हीन मरुभूमि और कृषि योग्य उर्वरा भूमि में कितने योजनों का अन्तर है ? इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।२०। हे वृषाकपि ! पुनः आगमन करो । हम तुम्हारे लिए श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म करते हैं । जैसे स्वप्न को दूर कर देने वाले सूर्य अस्ताचल में गमन करते हैं, वैसे ही तुम भी अपने घर में लौट आओ । इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।२१। हे वृषाकपि और हे इन्द्र ! तुम मेरे गृह में आगमन करो लोगों को आनन्द देने वाला वह मृग कहाँ चला गया ? इन्द्र सब से श्रेष्ठ हैं ।२२। मनु की पुत्री पर्शु ने बीस पुत्र उत्पन्न किये । उस मनु-पुत्री का मङ्गल हो । इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ।२३। [४]

सूक्त ८७

(ऋषि–पायुः । देवता–अग्निे रक्षोहा । छन्द–त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रतिष्ठमुप यामि शर्म ।

शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो
दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेद समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान्नभस्व क्रव्यादो ।
वृक्त्यचपि धत्स्वासन् ॥२
उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सं ॥३
यज्ञैरिषु सन्नममानी अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधाभानान् प्रतीचो
बाहून्प्रति भङ्ध्येषाम् ॥४
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणोहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि
चिनोतु वृक्णम् ॥५।५

अग्नि देवता राक्षसों को नष्ट करने वले, बलवान् और यजमानों के मित्र हैं । उन्हें में घृताहुति देता हूं और अपने घर गमन करता हूं । अग्नि यजमानों के द्वारा प्रज्वलित होकर दिन-रात रक्षा करें ।१। हे अग्ने ! तुम सर्व ज्ञाता हो अपने लौह-दंत रूप ज्वालाओं से राक्षसों को दग्ध करो । मांस-भक्षी दैत्यों को मुख में रखते हुए, हिंसको को ताड़ित करो ।२। हे अग्ने ! तुम राक्षसों के दाहक हो अपने दोनों ओर के दाँतों को तीक्ष्ण कर उन्हें राक्षसों में गढ़ा दो । तुम अन्तरिक्ष में रहने वाले पिशाचों को अपने दाँतों से चबा डालो ।३। हे अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर तीक्ष्ण वाणों की नोंक से राक्षसों के हृदयों को वींध डालो और उनकी भुजाओं को विचूर्णित करो ।४। हे अग्ने ! असुरों के चर्म को छेद का अपने तेज रूप वज्र से उनका वध

करो । उनके अङ्गों को चीर डालो । माँसभक्षी पक्षी माँस भक्षण के लिए इनकी देह पर टूट पड़ें ।५। [५]

यत्रेदानी पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्त तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥६
उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभाँनदृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादःक्ष्विङ् कास्तमदन्त्वेनोः ॥७
इह प्रब्रू हि यतमः सी अग्ने यो यातुधानो श इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षस्श्चषे रन्धयैनम् ॥८
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्रणय प्रचेतः ।
हिस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥ ९
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षुतस्य त्रीणि प्रति श्रृणीह्यग्रा ।
नस्याग्ने पृष्टीर्हरसा श्रृणाहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०।६

हे अग्ने ! तुम मेधावी हो । जो राक्षस, आकाश में या पृथिवी के मार्ग में घूमता हो अथवा कहीं खड़ा हो, तुम उसे जहाँ कहीं देखो, तीक्ष्ण बाण से उसे छेद डालो ।६। हे अग्ने ! आक्रमणकारी राक्षस के खड्ग से रक्षा करो । कच्चे माँस का भक्षण करने वाले दुष्टों को नष्ट करो । यह पक्षी उन राक्षसों का भक्षण करें ।७। हे अग्ने ! इस यज्ञ में कौन-सा राक्षस विघ्न उपस्थित करता है । तुम काष्ठ द्वारा प्रकट होकर उस राक्षस का बध करो । तुम सब मनुष्यों पर अनुग्रह की दृष्टि करो और राक्षस का संहार कर डालो ।८। हे अग्ने ! हमारे यज्ञ की अपनी तीक्ष्ण तेज द्वारा रक्षा करो और इसे श्रेष्ठ धन के उपयुक्त करो । तुम राक्षसों की हिंसा करने वाले हो, राक्षस तुम्हें हिंसित न करें ।९। हे अग्ने ! मनुष्यों की हिंसा करने वाले इन राक्षसों को देखो । उनके तीन मस्तकों को छिन्न करो । उनसे निकटस्थ राक्षस का भी वध करो । उनके तीन पाँवों को काट डालो ।१०। [६]

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
चर्मचिषा स्फूर्जयंजातवेदः समक्षमेनं गुणते नि वृङ्धि ॥११

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभि शफरुजं मेन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचित न्योष ॥१२
यदग्ने भद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयंत रेभाः ।
मान्योर्मनसा शरव्या जायतेया तया विध्य हृदयेयातुधानान् ॥१३
परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः ॥१४
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेन शप था यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेन शरवऋच्छन्तुमर्मन्विश्वस्यैतुप्रसिति यातुधानः ॥१५।७

हे अग्ने ! जो राक्षस अपने असत् कर्म द्वारा सत्कर्मों को नष्ट करता है, उसे अपनी ज्वालाओं में तीन बार लपेट कर भस्म कर दो । मुझे स्तोता के सामने ही ऐसा ही करो ।११। हे अग्ने ! गर्जनशील दैत्य पर अपने तेज को प्रेरित करो । तुम अपने नखों से सन्त-भक्षक दैत्यों को टटोलने वाले हो । तुम असत्य से सत्य को दबाने वाले उस राक्षस को अपने तेज से ही जला दो । १२ । हे अग्ने ! परम्पर स्त्री-पुरुष झगड़ते और स्तोता कटु वाणी का प्रयोग करते हैं, तब मन में जो क्रोध उत्पन्न होता है उस क्रोध रूप बाण से राक्षसों के हृदयों को वींध डालो । १३ । हे अग्ने ! अपने बल से राक्षस को पछाड़, अपने तेज से वींध डालो । मनुष्यों के प्राणापहारक राक्षसों का वध करो, उन्हें तेज से भस्म करो ।१४। उस पापी दैत्य को अग्नि आदि देवता मार दें । हमारे शाप रूप वाक्य राक्षस के पास पहुंचें और बाण उसके मर्म को छेद डालें। वह राक्षस अग्नि में गिर पड़ें । १५ ।

यः पौरुषेयेणक्रविषा समङ्क्त यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
सो अघ्न्याभरति क्षोरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१६
संवत्सरीणं पयः उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् ॥१७
विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दूरेवाः ।

परै नान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्तामु ॥१८
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षाँसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१९
त्वं नो अग्नेधरा दुदक्तात्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशसं शोशुचतो दहन्तु ॥२०।८

हे अग्ने ! मनुष्य माँस के संग्राहक और पशु माँस के संग्राहक राक्षस को बलहीन करो । अहिंस्य गौ के दूध का अपहरण करने वाले राक्षस के मस्तक को काट डालो । १६ । एक वर्ष तक गौ में जो रस संचित होता है, उसे राक्षस न पी सके । हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के देखने वाले हो । जो राक्षस उस अमृत रूप दूध को पान करने की इच्छा करे उसके मर्म को अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से वींध डालो । १७ । गौओं का दूध राक्षसों के लिए विष के समान हो जाय । हे अग्ने ! अदिति के सामने उनका बलि-दान करो । तृण, लता, वनस्पति आदि के त्याज्य अंश को यह राक्षस ग्रहण कर पावें । २८ । हे अग्ने ! आने वाले राक्षसों को मारो । वे तुम्हें संग्राम में हरा न सकें । अथवा माँसभक्षी राक्षसों का समूल नाश करो । वे तुम्हारे दिव्यास्त्रों से बचकर न चले जाँय । १६ । हे अग्ने ! चारों दिशाओं में हमारी रक्षा करो । तुम्हारी श्रेष्ठ, अविनाशी और उत्तम ज्वालाएं राक्षसों को जला दें । २० । (८)

पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णोऽग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वंनः ॥२१
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२२
विषेण भङ्गुरावतः प्रतिष्म रक्षसो दहः ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥२३
प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
संत्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभि ॥२४

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं विरुज वीर्यम् ॥२५॥१९

हे अग्ने ! तुम कर्म कुशल और तेजस्वी हो । अतः हमको चारों दिशाओं में यत्नपूर्वक रक्षित करो । मैं तुम्हारा सखा हूं । मुझे दीर्घजीवी बनाओ । हे अविनाशी अग्ने ! हम मरणशील मनुष्यों के रक्षक बनो । २१ । हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम राक्षसों को नित्य प्रति मारते हो हम तुम्हारी उपासना करते हैं । २ । हे अग्ने ! ध्वंसात्मक कार्यकारिणी राक्षसों को अपने विस्तृत तेज से भस्म करो । उन्हें तृप्त खड्ग से पूर्णतया जला कर राख कर दो । २३ । कहाँ क्या हो रहा है । यह देखने वाले राक्षसों को भस्म करो । तुम्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता । तुम चैतन्य होओ । मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं । २४ । हे अग्ने ! राक्षसों के तेज को अपने प्रचण्ड तेज से नष्ट करो । उनको बल वीर्य हीन कर डालो । २५ । (९)

सूक्त ८८

(ऋषि—मूर्धन्वानाङ्गिरसो वामदेव्यो वा । देवता—सूर्यवैश्वानरौ । छन्द—त्रिष्टुप)

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥१
गीर्णं भुवनं तमसापगूलहमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥२
देवेर्भिन्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥३
यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो य समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥४
यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैःसयज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥५॥१

देवताओं द्वारा सेवन किया जाने वाला, सदा नवीन, पान-योग्य सोम रस आकाश को छूने वाले यज्ञाग्नि में होमा गया है। उसी सोम को उत्पन्न करने, परिपूर्ण करने और धारण करने के निमित्त कल्याण-कारी अग्नि की देवगण वृद्धि करते हैं। १। अन्धकार में लोक समा जाते हैं। वह उन्हें छुपा लेता है। अग्नि के प्रकट होते ही सब प्रकट हो जाते हैं। आकाश, जल, वृक्ष और देवगण आदि सब प्रसन्न होते हैं। २। यज्ञ-भाग पाने वाले देवताओं की प्रेरणा से मैं जरा-रहित महान् अग्नि का पूजन करता हूं। इन अग्नि ने आकाश-पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण किया है। ३। जो वैश्वानर अग्नि मुख होता बनकर देवताओं द्वारा सेवित हुए और जिन्हें कामना वाले यजमान घृता-हुति अर्पित करते हैं, उन अग्नि के स्थावर-जङ्गम रूप विश्व की उत्पत्ति की। ४। हे अग्ने तुम ज्ञानी हो। तुम तीनों लोकों के शीर्ष स्थान स्वर्ग में सूर्य के साथ निवास करते हो। तुम आकाश पृथिवी के पूर्ण करने वाले और यज्ञ के पात्र हो। हम तुम्हें श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्राप्त करते हैं। ५। [१०]

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायतु प्रातरुद्यन्।
मायामू तु यज्ञियानानेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥६
दृशेन्यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्च आजुहबुस्तनूपाः ॥७
सूक्तवाकं प्रथमादिदग्निमा दिद्धविरजनयन्त देवाः।
स एषां यज्ञो भवत्तनूपास्त द्यौर्वेद तं पृथिवीं तमापः ॥८
यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजहबुर्भवनानि विश्वा।
सो अर्चिषा पृथवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥९
स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निजीजनञ्छक्तिभी रोदसीप्राम्।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे सआषधी पचतिविश्वरूपा ॥१०॥११

यह अग्नि रात्रि के समय सब प्राणियों के शीर्ष रूप होते हैं और प्रातःकाल सूर्य रूप से प्रकट होते हैं। यह यज्ञ कर्म का सम्पादन करने वाले देवताओं की प्रजा कहे जाते हैं। यह सभी स्थानों में द्रुतगति से विचरण करते हैं।६। जिन अग्नि ने विशिष्ट दीप्ति से युक्त होकर श्रेष्ठ रूप धारण कर स्वर्ग में स्थान प्राप्त कर शोभा प्राप्त की, उन अग्नि के शरीर की सब देवता रक्षा करते हैं। उन देवताओं ने अग्नि के निमित्त हव्य प्रदान किया।७। पहले आकाश-पृथिवी का निरूपण करने वाले देवता अग्नि को प्रकट करते हैं। वही देवता हविरत्न के भी उत्पादक हैं। देवताओं के यजनीय अग्नि उसके शरीर की रक्षा भी करते हैं। आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष उन अग्नि को भले प्रकार जानते हैं।८। देवताओं द्वारा उत्पन्न किये जिन अग्नि में सर्वमेध यज्ञ में, सब पदार्थों की आहुति दी जाती हैं, वे अग्नि सरल गमन वाले होकर आकाश-पृथिवी को अपनी ज्वाला से तप्त करने वाले हो गए।९। देवताओं की स्तुति से उत्पन्न होने वाले अग्नि ने आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण किया। उन सुखकारी अग्नि को उन्होंने त्रिगुणात्मक रूप से उत्पन्न किया। वे अग्नि सब ओषधियों को परिष्कृत रूप में लाते हैं।१०। [११]

यदेदेनमदधूर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वाः ॥
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तनो अर्चिषा यन् ॥१२
वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥१३
वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥१४
द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
याभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१५॥१२

जब अग्नि और सूर्य की यज्ञीय देवताओं ने प्रतिष्ठा की, तब ये दोनों एक रूप होकर घूमने लगे । उस समय सभी प्राणियों ने उनके दर्शन किए ।११। अग्नि मनुष्यों का हित करने वाले हैं। देवताओं ने इन्हें विश्व की ध्वजा रूप माना है । वे विशिष्ठ प्रकाश वाले प्रभात को विस्तार देते हैं और अपनी ज्वालाओं से सम्पूर्ण अंधकार को दूर करते हैं ।१२। यज्ञ के पात्र और मेधावान् देवताओं ने सूर्य रूप से अग्नि को प्रकट किया । जब वे अग्नि महान् एवं स्थूल होते हैं तब वे दीर्घ काल से आकाश में रहने वाले नक्षत्रों को आभाहीन कर देते हैं ।१३। वे अग्नि जगत् का हित करने वाले, सतत तेजस्वी और क्रान्तप्रज्ञ हैं । हम उनकी श्रेष्ठ मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हैं । वे अपनी महिमा से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण करते हुए नीचे और ऊपर प्रदीप्त होते हैं ।१४। मैंने पितरों, देवताओं और मनुष्यों के दो मार्गों के सम्बन्ध में सुना है यह सब जगत् आगे बढ़ता हुआ उन्हीं मार्गों पर चलता है ।१५। [१२]

द्वे समीचो विभृतश्चरं तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ्ङ् विश्व भुवनानि तस्थावप्रच्छन्तरणिर्भ्राजमान। ॥१६
यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकु रित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥१७
कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामिबः कवयो विद्मणे कम् ॥१८
यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यों वसते मातरिश्वः ।
तावद्धात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥१९॥१३

सूर्य के शीर्ष स्थान से उत्पन्न अग्नि स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं। उनके विचरण काल में आकाश पृथिवी उनकी रक्षा करती हैं। वे अपने रक्षणकर्म में कभी उदासीन नहीं होते और प्रकाशमान होते हुए सुखपूर्वक संसार में रहते हैं ।१६। जब पार्थिव और माध्यमिक अग्नि यज्ञ ज्ञानपर विवाद करने लगते हैं, तब ऋत्विगण यज्ञ करने लगते हैं । परन्तु उनके

विवाद का निर्णय करने में समर्थ कोई नहीं है ।१७। हे पितरो ! मैं तुमसे तर्क नहीं करता, केवल जिज्ञासा ही करता हूँ कि सूर्य, अग्नि, उषाऐं और जल की अधिष्ठात्री देवियाँ कितनी-कितनी हैं।१८। हे वायो ! रात्रि जब तक उषा का मुख नहीं खोल देती तब तक पृथिवी पर निवास करने वाले अग्निं यज्ञ के समीप पहुँच कर स्थान प्राप्त करते हैं क्योंकि अग्नि ही स्तुति करने वाले हैं और वही होता हैं ।१९। (१३)

सूक्त ८६

(ऋषि—रेणुः । देवता—इन्द्रः, इन्द्रसोमौ । छन्द–त्रिष्टुप्,)

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्व मह्ना बिबबाधे रोचनावि ज्मो अन्तान ।
आ यः पप्रौ चषणीवृद्धरोभिःप्र सिन्धुभ्योविरिचानो महित्वा ॥१
स सूर्यः पर्यु रूबराँस्येन्द्री बाबृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तपमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जधान ॥२
समानमस्या अनपावृदर्चं क्ष्मया दिवो असम ब्रह्मा नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव चनिमान्यर्यं इन्द्रश्चिकार्य न सखायमीष ॥१
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुतद्याम् ॥४
आपान्तमन्युलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषो ।
सोमो विश्वान्यतमा वनानि नार्वांगिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः॥५॥४

हे स्तुति करने वालो ! श्रेष्ठ नेतृत्व वाले इन्द्र की स्तुति करो। इनका तेज सब के तेज को फीका कर देता है। वे मनुष्यों को पावन करने वाले हैं। वे समुद्र से भी विशाल और समस्त संसार को अपने तेज से भर देने में समर्थ हैं।१०। जेसे सारथि के द्वारा चक्र वाला रथ घूमता है, वैसे ही इन्द्र अपने तेज को सब ओर घुमाते हैं। घोर अंधकार जब सृष्टि पर अपना अधिकार जमाता है, तब इन्द्र उसे अपनी दीप्ति से

सर्वथा दूर कर देते हैं ।२। हे स्तोताओ ! तुम मेरे साथी होकर श्रेष्ठ नवीन और उपमा रहित स्तोत्र को उच्चारित करो । क्योंकि ये इन्द्र स्तुतियों को प्राप्त करने की कामना करते और शत्रुओं को देखते हैं । वे अपने मित्रों की अनिष्ट कामना नहीं करते ।३। धुरी जैसे चक्रों को चलाती हैं, वैसे ही इन्द्र ने अपने कर्मों के द्वारा आकाश-पृथिवी को आश्रय दिया है । उन इन्द्र की निर्लेप भाव से स्तुति की गई है आकाश के शीर्ष स्थान से मैं जल लेकर आया हूं ।४। जो सोम शत्रुओं को अपने बल से कम्पित करते हैं, जो शीघ्र ही प्रहार करने वाले हैं, जो शस्त्रास्त्र धारणी करने वाले को गति प्रदान करते हैं और जो पान किये जाने पर तेज उत्पन्न करते हैं, उन्हीं सोमों के द्वारा वनों की वृद्धि होती है । परन्तु वे इन्द्र की समानता करने में समर्थ नहीं हैं । क्योंकि इन्द्र को कोई अपने से छोटा नहीं बना सकता ।५। (१४)

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीलु रुजति स्थिराणि ॥६
जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥७
त्वं त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥८
प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्यमित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥९
इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥१०।१५

इन्द्र की समानता आकाश-पृथिवी, अन्तरिक्ष, मरुस्थल और पर्वत आदि भी करने में समर्थ नहीं हैं । उन्हीं इन्द्र के लिए सोम-रस निष्पन्न होता है । जब यह शत्रुओं पर क्रोध करते हैं, तब वे उनके सब अस्थिर और अचल पदार्थों को ध्वस्त करते और उनका संहार कर डालते हैं।६।

जंगल को जैसे कुल्हाड़ा काट देता है, वैसे ही इन्द्र ने वृत्र को काट डाला और शत्रुओं के नगर को नष्ट कर दिया। उन्होंने अपक्व घट के समान मेघ को तोड़ कर वर्षा के जल से नदियों के लिये मार्ग बनाया। इन्द्र ने अपने सहायक मरुद्गण के सहित जल को हमारे अभिमुख कराया ।७। हे इन्द्र ! जैसे फरसे से गांठें काटी जाता हैं, वैसे ही तुम स्तुति करने वालों के उपद्रवों को काटते हो। तुम ही स्तोताओं को ऋण से छुड़ाते हो। जो पुरुष मित्रावरुण के कर्म में बाधा उत्पन्न करते हैं, उन्हें वीर इन्द्र नष्ट कर डालते हैं ।८। जो मित्र, वरुण, अर्यमा और मरुद्गण से वैर करते हैं, उन्हें हे इन्द्र ! तुम मारने को उद्यत होओ और अपने शब्दवान् वज्र को तीक्ष्ण करो ।९। स्वर्ग, पृथिवी, पर्वत, जल आदि के स्वामी इन्द्र हैं। मेधावी और वीर पुरुष इन्द्र को ही अपना अधिपति मानते हैं। नवीन वस्तुओं की प्राप्ति और वस्तु की रक्षा के लिये ही इन्द्र की स्तुति की जाती हैं ॥१०॥ [१०]

प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्रवृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः।
प्र वातस्यप्रथसःप्रज्मोअन्तात्प्रसिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥११

प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रन् ॥१२

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः।
अन्विद्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३

कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत्।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४

शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र।
अन्धेनामित्रास्तमसासचन्तांसुज्योतिषोअक्तवस्ताँ अभिष्युः ॥१५

जल से सम्पन्न समुद्र, अन्तरिक्ष, वायु, दिवस, रात्रि, पृथिवी की दिशाएं, नदी और मनुष्य इन सभी से इन्द्र महान् हैं। इन्द्र ने अपनी

महिमा से सभी को व्याप्त किया हुआ है ।११। हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र अविनश्वर है । वह ज्योतिमती उषा की ध्वजा के समान शत्रुओं पर पतित हो । आकाश से अतित हुआ वज्र जैसे वृक्षादि को नष्ट कर देता है, वैसे ही तुम अपने तीक्ष्ण और गर्जनशील वज्र से हिंसाकारी शत्रुओं को विदीर्ण करो ।१२। इन्द्र के उत्पन्न होते ही आकाश-पृथिवी, पर्वत, जंगल, वनस्पति और मांस परस्पर मिलकर उनके पीछे-पीछे चले। ।१३। हे इन्द्र ! तुमने अपने जिस आयुध को फेंक कर उस दुष्ट असुर को मार दिया था तुम्हारा वह आयुध फेंकने योग्य नहीं है । जैसे वध स्थान में पशुओं का वध किया जाता है, वैसे तुम्हारे आयुध से आहत होकर दैत्यगण भूमिगत होकर शयन करते हैं ।१४। जिन राक्षस शत्रुओं ने हमें घेरकर अत्यन्त पीड़ित किया, वे इन्द्र के प्रभाव से अन्ध-कूप में पतित हों । चाँदनी रात्रि भी उनके लिये पूर्ण अन्धकार वाली हो जाय ।।१५।। [५]

पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वां अर्चतो याह्यर्वाङ् ।।१६
एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वमित्रा उतत इन्द्र नूनम् ।।१७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणिसञ्जित धनानाम् ।।१८।३६

हे इन्द्र ! यजमान तुम्हारे ही निमित्त इन अनेक यज्ञों को करते हैं। स्तुति करने वालों के स्तोत्र सुनते हुए तुम प्रसन्न होते हो । जो तुम्हें आहूत करें उन्हें आशीर्वाद दो और पूजा करने वालों के अनुकूल होते हुए उनके समीप पहुंचो ।१६। हे इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति द्वारा रक्षित होते हैं । हम तुमसे सम्बन्धित नवीन और श्रेष्ठ स्तोत्रों को प्राप्त करें । हम विश्वामित्र के वंशज तुम्हारी स्तुति द्वारा विभिन्न अन्न प्राप्त करें ।१७। युद्ध जीतने पर पर जब धन आदि का वितरण होता है, तब वही हमारी अध्यक्षता करते हैं । रणक्षेत्र में विशाल रूप बनाकर वे शत्रुओं

का वध करते हैं। वे वृत्रों को मार कर उनका धन प्राप्त करते हैं। ऐसे उन इन्द्र का हम आह्वान करते हैं ॥१८॥ [१७]

सूक्त ९०

(ऋषि—नारायणः । देवता—पुरुषः । छन्दः—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भुतं यच्च भाव्यम् ।
तउमृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहित ॥२
एतावानास्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य विश्व भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३
त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादाऽस्येहावबत्पुनः ।
ततोविष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४
तस्माद्विरालजायत विराजो अधि पुरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भू मिमथो पुरः ॥५।७

सहस्र मस्तक और सहस्र चक्षुओं वाले विराट् पुरुष के चरण भी अनन्त हैं। पृथिवी को सब ओर व्याप्त करके और दस उंगुलियों के बराबर बढ़कर अवस्थित हैं।१। भूतकाल और भविष्यत् काल यह सब पुरुष रूप ही हैं। प्राणियों के योग के लिए अपनी कारणावस्था को त्यागकर जगदावस्था पाने के कारण वे दिव्यता से सम्पन्न हैं।२। अपनी महिमा से भी महान् ईश्वर की महिमा यह सम्पूर्ण जगत् ही है। यह ब्रह्मण्ड इनका एक पग मात्र है तथा इनके तीन पद स्वर्गलोक में हैं।३। तीन पद वाले पुरुष स्वर्ग में उठे। उनका एक पद पृथिवी पर रहा। फिर वे भक्षण न करने वाले और भक्षण न करने वाले प्राणियों में अनेक रूपों से व्याप्त हुए।४। आदि पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई और ब्रह्माण्ड रूप देह के आश्रय में प्राणरूप पुरुष प्रकट हुए। वे देहधार

मनुष्य देवता आदि हुए। उन्होंने पृथिवी की रचना की और प्राण धारण करने के लिये देहों की भी रचना की ॥५॥ [१७]

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्व इध्मः शरद्धविः ॥६

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुष जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयाश्च ये ॥७

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्ताश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः समानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायत ॥९

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०।१८

जब पुरुष रूप हार्दिक हव्य द्वारा देवताओं ने मानसिक यज्ञ किया तब यज्ञ में काष्ठ ग्रीष्म ऋतु ही हुई, वसन्त ऋतु घृत हुआ और हव्यरूपी शरद ऋतु हुई।६। सबसे प्रथम जो उत्पन्न हुए हैं मानस यज्ञ में उन्हीं को हवि दी गई। फिर उन्हीं पुरुषों की प्रेरणा से देवताओं ने और ऋषियों वे यज्ञानुष्ठान का आयोजन किया।७। जिस यज्ञ में सर्वात्मा रूप पुरुष को हवि दी जाती है, उसी मानस यज्ञ के द्वारा दधियुक्त घृतादि की उत्पत्ति हुई। उससे वायु देवता सम्बन्धी वन्य पशु और ग्राम्य पशुओं की सृष्टि हुई।८। उन सर्वात्मक पुरुष के यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद की उत्पत्ति हुई। उनसे यजुर्वेद की तथा गायत्री आदि छन्दों की भी उत्पत्ति हुई।९। उसी यज्ञ से अश्व तथा अन्य पशु उत्पन्न हुए। गौ, बकरा, भेड़ भी उसी प्रकट हुए ॥१०॥ [१८]

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य को बाहू का ऊरू पाद उच्यते ॥११
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३
नाभ्या असीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४
सप्तास्यान्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वेसाध्याः सन्ति देवाः ॥१६।२९

विराट् पुरुष कितने प्रकारों से उत्पन्न हुए। उनके हाथ, पाँव, ऊरु और मुखादि कौन हुए ॥ ११ ॥ उनका मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, जंघाऐं वैश्य और चरण शूद्र हुए ॥ १२॥ इनके मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्राग्नि और प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई ॥ १३ ॥ इनके सिर से स्वर्ग, नाभि से अन्तरिक्ष और चरणों से पृथिवी उत्पन्न हुई। श्रोत्र से लोक और दिशाओं का निर्माण हुआ ॥१४॥ प्रजापति के प्राण रूप देवताओं ने पुरुष को मानसिक यज्ञ के अनुष्ठान काल में वरण किया। उस समय सात परिधियाँ तथा इक्कीस समिधाओं की रचना हुई ॥१५॥ देवताओं ने मानसिक यज्ञ में जो विराट पुरुष का पूजन किया, उससे संसार के गुण-धर्मों के धारणकर्त्ता धर्म उत्पन्न हुए। जिस स्वर्ग में देवगण निवास करते हैं उस स्वर्ग को याज्ञिक सन्तजन प्राप्त करते हैं ॥ १६॥

सूक्त ९१ [आठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—अरुणी पैतहव्य । देवता—अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निलस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥१
स दर्शतश्री रतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनञ्जन जन्योनातिमन्यते विश आक्षेति विश्यो विशंविशम् ॥२
सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसित्वमेकं इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ॥३
प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिलायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसाभिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥४
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्ठ वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नपास्ये ॥५॥२०

अग्ने ! तुम दान की कामना करते हुए उत्तर वेदी पर विराजमान होते और अन्न प्राप्ति की इच्छा से हविरत्न के होता बनते हो । स्तुति करने वाले पुरुष चैतन्य होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं । मैत्री की कामना से अग्नि भले प्रकार प्रदीप्त होते हैं । वे सुन्दर वर्ण वाले, वरण करने योग्य, व्यापक, प्रकाशवान् तथा उपासकों के श्रेष्ठ सखा हैं ॥१॥ अग्नि यजमानों के घरों में अथवा जङ्गलों में निवास करते हैं । वे श्रेष्ठ अतिथि और मनुष्यों का हित करने वाले हैं । वे सब प्रजाओं के घर में विराजमान होते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम बलों से भी अधिक बल वाले हो । तुम अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा मेधावी हो । तुम सबके जानने वाले तथा धनों की स्थापना करने वाले हो । जिस धनों को आकाश पृथिवी बढ़ाती हैं, तुम उनके अधिपति हो । तुम सदा एकाकी ही रहते हो ॥३॥ हे अग्ने ! तुम्हारे लिये जो घृतयुक्त स्थान यज्ञ वेदी पर बनाया गया है, उसे पहिचान कर उस पर प्रतिष्ठित होओ । तुम्हारी ज्वालाऐं सूर्य की

आभा के समान प्रकाश देने वाली होती हैं ।४। हे अग्ने ! जल की वृष्टि करने वाले मेघ से तुम्हारी अद्भुत दीप्ति प्रकट होती है। विद्युत् की आभायें भी प्रकाश के समान देखी जाती हैं। उस समय तुम वहां से निकल कर काष्ठ की खोज करते हो। क्योंकि काष्ठ ही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ अन्न है ॥५॥ (२०)

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समान वनिनश्च वोरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥६
वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आते यतन्ते रथ्यो यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥७
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्य समानमित्तमिन्महे वृणते नान्य त्वत् ॥८
त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्यमन्तो मनवो बृक्तबर्हिषः ॥९
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमुत्वियं तव नेष्टं त्वमग्निहृतायतः ।
तव प्रशास्त्र त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्चनो दमे ॥१०।२१

औषधियाँ गर्भ रूप से अग्नि को धारण करती और मातृभूत जल उन्हें उत्पन्न करता है। वन की लतायें उन्हें गर्भ में रखती हुई समान भाव से उत्पन्न करती हैं ।६। हे अग्ने ! वायु तुम्हें कम्पायमान करता हुआ चटाता है। तुम श्रेष्ठ वनस्पतियों में निवास करते हो। जब तुम दग्ध करना चाहते हो, तब रथ पर चढ़े वीरों के समान तुम्हारी ज्वालायें पृथक्-पृथक् होती हुई अपना बल दिखाती ।७। ज्ञानवान् अग्नि उपासकों को बुद्धि देते हैं। वे यज्ञ में सिद्धि प्रदान करने वाले हैं, सदा स्वीकार करते और प्रसन्न होते हैं ।८। हे अग्ने ! यज्ञकर्त्ता यजमान तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा करते हुए जब तुम्हें ही होता बनाते हैं, तब देवताओं के उपासक कुश को काट कर लाते और तुम्हारे निमित्त

हव्य प्रदान करते हैं ।९। हे अग्ने ! उस समय तुम ही होता और पोता का कार्य करते हो । यज्ञ करने वाले के लिये तुम ही नेष्टा हो । तुम ही प्रशस्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा बनते हो । तथा तुम ही हमारे गृह के स्वामीरूप से पूजित होते हो ।।१०।। (२१)

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य मुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ।।११
इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरःसुष्टु तयः समग्मतः ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ।।१२
इमाँ प्रत्नाय सुष्टुतिं नवयसीं वोचेयमस्माउशते शृणोतु नः ।
भूया सन्तरा हृद्यस्यनिस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।१३
यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेशा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ।।१४
अहाव्यग्ने हविरास्ये तेस्त्रु चीव घृतं चम्बीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ।।१५

हे अग्ने ! तुम्हें अविनाशी मानकर जो पुरुष समिधा आदि प्रदान करते हैं, तुम उनके होता बनते हो । उसके निमित्त दूत होते हुए देवताओं के पास जाते और उन्हें बुलाकर यज्ञ करते हो । उस समय तुम ही अध्वर्यु होते हो ।११। सब वेद वाणी रूप स्तोत्र और उपासना आदि अग्नि के निमित्त ही किये जाते हैं । वे अग्नि वास देने वाले तथा ज्ञानी हैं । अर्थ की कामना से सब स्तोत्र उनसे आश्रित होते हैं । इन स्तोत्रों के बढ़ने पर अग्नि प्रसन्न होते हैं और उपासकों की भी वृद्धि करते हैं ।१२। स्तुतियों के चाहने वाले पुरातन अग्नियों के निमित्त मैं नितान्त अभिनव स्तोत्र का उच्चारण करता हूं । वे हमारी स्तुति को सुनें । जैसे सौभाग्यवती नारी सुन्दर शस्त्रालङ्कारों में सुसज्जित होती हैं, वैसे ही मैं अग्नि का स्पर्श करता हुआ सुशोभित होता हूं ।।१३।। यज्ञ में जिस अग्नि के लिए हव्य दिया जाता है, जो अग्नि जलपान करते

और सोम को ग्रहण करते हैं तथा जो यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं उन अग्नि के निमित मैं सुन्दर और मंगलमय स्तोत्र की रचना करता हूं ।१४। चमस में जैसे सोम को रखते हैं, स्रुक में जैसे घृत को रखते हैं, वैसे ही हे अग्ने ! मैं तुम्हारे मुख में पुरोडाश, हव्यादि रखता हूं । तुम मुझ पर प्रसन्न होकर श्रेष्ठ पुत्र, पौत्र, अन्न, धन आदि प्रदान कर यशस्वी बनाओ ।१५। (२२)

सूक्त ९२

(ऋषि—शार्यातो मानवः देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—जगती)

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिविभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१
इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥२
बलस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया यस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥३
ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्य रमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥४
प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरुज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥५।२३

हे देवताओ ! अग्नि मनुष्यों के स्वामी, यज्ञ के नेता, रात्रि में अतिथि और विभिन्न तेज रूप धनों से सम्पन्न हैं । तुम उनकी परिचर्या करो । वे हरे काष्ठों में प्रविष्ट होने वाले तथा शुष्क काष्ठों को भस्म करने वाले हैं । वे कामनाओं के वर्षक, यज्ञ-योग्य, ध्वजारूप तथा आकाश में शयन करने वाले हैं । १ । अग्नि धर्म के धारण करने वाले और प्राणियों के रक्षक हैं । वे वायु के पुत्र और श्रेष्ठ पुरोहित हैं । उषाऐं सूर्य के समान ही उनका स्पर्श करने वाली हैं । उन्हीं अग्नि को

मनुष्यों ने यज्ञ का साधन वनाया । २ । जिस मार्ग को अग्नि दिखाते हैं वही मार्ग सत्य है । वे अग्नि हमारे हव्य का भक्षण करें । जब उनकी बलवती ज्वालाऐं तीक्ष्ण होती हैं तब देवताओं की ओर गमन करती हैं । ३ । विस्तृत आकाश, व्यापक अन्तरिक्ष, असीमित पृथिवी इन यज्ञ में प्रकट अग्नि को प्रणाम करते हैं । मित्र, वरुण, इन्द्र भग, सूर्य आदि देवता प्रकट हुए हैं । ४ । वेगवान् मरुद्गण की सहायता से नदियाँ प्रवाहित होती हुई पृथिवी को आच्छादित करती हैं । सब ओर जाने वाले इन्द्र मरुद्गण की सहायता से व्योम में गर्जन करते हुए अत्यन्त वेग से जल-वृष्टि करते हैं । ५ । (२३)

क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीलयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥६
इन्द्रे भुज शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्याहणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥७
सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥८
स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥९
ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञं रथर्वाप्रथमो विधारयद्देवादक्षै भृगवः संचिकित्रिरे ॥१०।२४

जब मरुद्गण कर्म में लगते हैं तब विश्व को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं । वे मेघ को आश्रय देने वाले और श्येन के समान हैं । वरुण मित्र, अर्यमा और मरुद्गण सहित इन सब बातों के देखने वाले हैं ।६। स्तुति-कर्त्ता यजमान इन्द्र से रक्षा और सूर्य से चक्षु प्राप्त करते हैं । जो उपासक इन्द्र का भले प्रकार पूजन करते हैं वे इन्द्र के वज्र की सहायता पाते हैं । ७ । इन्द्र के भय से भीत हुए सूर्य अपने अश्वों को चालित करते और गमन काल में सबको प्रसन्न करते हैं । इन्द्र भयङ्कर जल वृष्टि

करने में समर्थ हैं। आकाश में गर्जन करते रहते हैं। शत्रुओं का पराभव करने वाला वज्र का घोष इन्द्र के भय से नित्य उत्पन्न होता रहता है। ऐसे इन इन्द्र से कौन भयभीत नहीं होता है। ८। हे स्तोताओ ! उन्हीं इन्द्र रूप रुद्र को प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति करो। वे अश्वारोही मरुद्गण की सहायता से जल की वृष्टि करते हुए कल्याणकारी होते है। वे जब शत्रुओं का संहार करते हैं तब उनके यश का विस्तार होता है। ९। सोम की इच्छा करने वाले देवताओं तथा वृहस्पति ने प्राणियों के पोषण के निमित्त अन्न एकत्र किया है। सर्व प्रथम अपने यज्ञ के द्वारा ऋषि अथर्वा ने देवताओं को तृप्त किया। देवगण और भृगुवंशी ऋषि अपने बल को करके यज्ञ को जानते हुए यज्ञ-स्थान में पहुंचे।१०। (२४)

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशसश्चतुरङ्गो यमोऽदिति।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्ररोदसी मरुतो विष्णुर्रहिरे ॥११
उतस्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्नयो हवीमनि।
सर्यामासा विचरन्तादिविक्षिताधियाशमीनहुषीअस्यबोधतम् ॥१२
प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु बायुरिष्टये।
आत्मानं वस्योअमि वातमर्चततदश्विनासुहवायामनि श्रुतम् ॥१३
विशामासामभया नामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि।
ग्नाभिर्विश्याभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवाननृमणाअधा पतिम् ॥१४
रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम्।
येभिर्विहायाअभवद्विचणःपाथःसुमेकस्वधितिर्वनन्वति ॥१५।२५

नराशंस नामक यज्ञानुष्ठान में चार अग्नियों की स्थापना हुई। यम, अदिति, धनदाता त्वष्टादेव, जलवर्षक आकाश-पृथिवी रुद्र-पत्नी, ऋभुगण, मरुद्गण और विष्णु ने यज्ञ में स्तुतियों को प्राप्त किया। ११। फलाभिलाषी होकर हम जिन महान् स्तोत्रों को करते हैं, उन्हें यज्ञ के अवसर पर आकाश में निवास करने वाले अहिबुंध्न्य अवश्य श्रवण करें। आकाश में विचरण करने वाले हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम हमारी इस स्तुति को हृदय से श्रवण करो। १२। पूषा देवताओं के शुभचिन्तक

ओर जल के वंशज हैं। वे हमारे पशुओं का पोषण करें। यज्ञ कर्म के निमित्त वायु भी हमारे रक्षक हों। उन आत्म-स्वरूप वायु की धन-लाभ के निमित्त स्तुति करो। हे अश्विनीकुमारों! तुम्हारा आह्वान कल्याण-कारी होता है। तुम पथ पर चलते हुए हमारी श्रेष्ठ स्तुतियों को श्रवण करो। १३। जो हमारे स्वामी होकर सम्पूर्ण प्राणियों को अभय प्रदान करते है और जो अपने यश को अपने कर्म द्वारा प्राप्त करते हैं हम उनकी स्तुति करते हैं। अविचलित भाव वाली अदिति की देवताओं की पत्नियों और चन्द्रमा के सहित हम स्तुति करते हैं। वे सब प्राणियों पर कृपा करने वाले हैं। १४। अङ्गिरा ऋषि बड़े हैं। उन्होंने इस यज्ञ में देवताओं की स्तुति की है। ऊपर उठते हुए पाषाण यज्ञ में निष्पीडित सोम को उपस्थित करते हैं। सोम पान द्वारा ही इन्द्र हृष्ट हुए और उनके वज्र ने जल वृष्टि की। १५। (२५)

सूक्त ९३

(ऋषि—तान्वः पार्थ्यः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप्, बृहती)

महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि ॥१
यज्ञे यज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति।
यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥२
विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः।
विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥३
ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भग ॥४
उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या।
स चा यत्साद्येषामहिर्बुध्न्येषु बुध्न्यः ॥५।२६

हे आकाश-पृथिवी! अत्यन्त विस्तार वाली होकर तुम हमारे घर

में कल्याणमती नारी के समान आगमन करो। तुम अपने रक्षण साधनों द्वारा शत्रु से हमारी रक्षा करो। अपनी महिमा से ही शत्रुओं से हमें रक्षित करो। १। जो याज्ञिक पुरुष सब अनुष्ठानों में देवताओं की परिचर्या करता है अथवा जो शस्त्रों के सुनने वाला उपासक देवोपासन करता है, वही यथार्थ सेवक और उपासक है ।२। देवताओं का दान विस्तृत है । वे सब प्रकार बलवान् हैं। यज्ञानुष्ठान के समय यज्ञ-भाग पाने के अधिकारी और सब प्राणियों के स्वामी हैं ।३। मनुष्य जिन रुद्र-पुत्रों का स्तोत्र करने पर सुखी होता है, वे अर्यमा, वरुण, भाग अमृत के स्वामी हैं । वे स्तुतियों के योग्य और प्राणियों के पोषक हैं। ।४। जब अहिर्बुध्न्य जल के साथ प्रतिष्ठित होते हैं, तब सूर्य और चन्द्रमा भी एकत्र बैठते हुए दिवस और रात्रि में जल रूप धन की वृष्टि करते हैं ।५। [२६]

उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुत्रा उरुष्यताम् ।
महः सराय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ।।६
उत नो रुद्रा चिन्मृलतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्माविश्ववेदसः ।।७
ऋभु ऋर्भुक्षा ऋभूर्विधतो मदआते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ।।८
कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मि न योयूवे ।।९
ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ।।१०।२७

दोनों अश्विनीकुमार कल्याणों के स्वामी हैं । वे मित्रावरुण के साथ अपने तेज से हमारी रक्षा करें । यह जिस यजमान की रक्षा करते हैं, वह महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और बुरी गति से छूट जाता है। ।६। रुद्र-पुत्र, वायु, पूषा, ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, भग और

इन्द्रादि सभी देवता हमें सुख प्रदान करने वाले हों। हम उनके लिए श्रेष्ठ स्तोत्र करते हैं ।७। यज्ञ के द्वारा इन्द्र महान् तेज को धारण करते हैं। हे इन्द्र! जब तुम वेगवान् रथ को योजित करते हो तब यज्ञ करने वाले यजमान सुखी होते हैं। इन्द्र के लिए प्रस्तुत किया जाने वाला पान योग्य सोम विशिष्टता युक्त होता है। उनके निमित्त किया जाने वाला अनुष्ठान देवताओं की कृपा से ही सम्पन्न होता है।८। हे इन्द्र! तुम हमको प्रेरणा देने वाले हो। हमें लज्जित न करो। तुम ऐश्वर्यवान् यजमानों के ऋत्विजोंद्वारा पूजे जाते हो। तुम ही हमारे बल हो, क्योंकि तुम अपने श्रेष्ठ रथ को जोड़कर यज्ञ में आते हो ।९। हे आकाश-पृथिवी! हमारे पुत्रादि को महान् ऐश्वर्य प्रदान करो। तुम्हारा अन्न हमको प्रचुर परिणाम में प्राप्त हो। विपत्तियों से छुटकारा पाने और धन लाभ करने के लिए तुम्हारा धन उपयोगी सिद्ध हो ।१०। [२७]

एतंशंमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तंसहमावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये।
मेदतां वेदता वसो ।।११
एतं मे स्तोमं न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम्।
संवनं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ।।१२
वावर्त येषां युक्तैषां हिरण्मयी।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ।।२३
प्र तद्दु:शीमे पृथवाने वेने प्रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये उक्त्वात पञ्च शतामस्मयु पथा विश्राव्येषाम् ।।१५
अधीन्नवत्त सप्ततिं च सप्त च।
सद्यो दिदिष्ट तान्त्र:सद्योदिदिपार्थ्य:सद्योदिदिष्टमायव: ।।१५।२८

हे इन्द्र! जब तुम हमारे समीप आना चाहते हो, तब स्तुति करने वाला जहाँ भी हो, वही पहुंच कर उसकी रक्षा करते हो। हे धनदाता! अपने स्तोता को जानो ।११। मेरा यह स्तोत्र अत्यन्त महिमा वाला है।

यह अपने तेज के सहित सूर्य की सेवा में उपस्थित होता और मनुष्यों को समृद्ध करता है। रथकार जैसे अश्व द्वारा खींचने योग्य रथ की रचना करता है, वैसे ही मैंने इस स्तोत्र की रचना की है।१२। हम जिनसे धन माँगना चाहते हैं, उनके निमित्त उत्कृष्ट स्तोत्र को बारम्बार उच्चारित करते हैं। युद्ध करने वाले सैनिक जिस प्रकार बारम्बार रणभूमि को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हमारे स्तोत्र भी वारम्बार आराध्य की ओर जाते हैं।१३। सब देवता जैसे पांच सौ रथों को अश्वों से योजित कर यज्ञ-मार्ग पर गमन करते हैं, उसी प्रकार मैंने उसके यशःगाथा रूप स्तोत्र पृथवान् वेन आदि राजाओं के समीप बैठकर रचा है।१४। तान्व, पार्थ्य और मायव आदि ऋषियों ने इन राजाओं से सतहत्तर गौओं की याचना की ॥१५॥ (२८)

सूक्त ९४

(ऋषि—अर्बुद काद्रवेयः सर्पः। देवता—ग्रावाण।

छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥१
एवे वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥२
एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥३
बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽयिदन्नना मधु।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिपुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः।
न्य ङ्न यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५।२९

हम अभिषवण पाषाणों की स्तुति करते हैं, वे शब्दवान् हों। हे

ऋत्विजो ! स्तोत्र का उच्चारण करो । हे पूजनीय पाषाण ! तुम इन्द्र के लिए सोम निष्पन्न करते हुए शब्द करो । हे सोमपाये ! तुम सोम-पान द्वारा तृप्त होओ ।१। यह पाषाण सहस्रों व्यक्तियों के समान घोष करते हुए सोम से मिलकर हरे रंग के मुख वाले होकर देवताओं का आह्वान करते हैं । यह श्रेष्ठ कर्म वाले पाषाण, देवताओं के यज्ञ में हव्य की अग्नि के पूर्व में ही प्राप्त कर लेते हैं ।२। यह पाषाण लाल रङ्ग की शाखा का भक्षण करते हुए वृषभों के समान शब्द करते हैं । मांसाहारी जीव जैसे मांस से सन्तुष्ट होते हैं वैसे ही आनन्द से यह भी शब्द करते हैं ।३। निष्पन्न होते हुए हर्षकारी सोम के द्वारा इन्द्र को आहूत करने वाले यह पाषाण घोर शब्द करते हैं । उस हर्षकारी सोम को इन्होंने अपने मुख के द्वारा पाया है । यह सोमाभिषव कर्म में लगकर अपने मधुर शब्द से भूमि को परिपूर्ण करते हुए उँगलियों के रहित नृत्य करते हैं ।४। पाषाणों का शब्द ऐसा लगता है जैसे अन्तरिक्ष में पक्षी चहचहा रहे हों । यह मृगों के स्थान में गमन करने वाले पाषाण काले मृगों के समान नृत्य-सा कर रहे हैं । अभिषुत सोम रस को इस प्रकार क्षरित करते हैं, जैसे सूर्य उज्ज्वल जलों की वृष्टि करते हैं ।।५।। [२९।

उग्राइव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां
प्रोथथो अर्वतामिव ।।६
दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्य ।।७
ते आदयो दशयन्त्रास आशवस्तेयामाधान पर्येति हर्यतम् ।
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूष प्रथमस्य भेजिरे ।।८
ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रा वर्धते प्रथते वृषायते ।।९
वषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेलावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।

रंवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो
अजुषध्वमध्वरम् ।।१०।३०

जैसे बलवान् अश्व सुसंगत होकर अपने शरीर कोबढ़ाते हुए रथ का वहन करते हैं, वैसे ही यह पाषाण भी आकर सोम-रस को क्षरित करते हैं। श्वास लेने मात्र के समय में यह सोम का ग्रास करते हुए अश्व के शब्द के समान शब्द करते हैं। मैंने इनके शब्द को अनेक बार सुना है। ६। हे स्तोताओ! इन अमृतत्व सम्पन्न पाषाणों का यश गाओ। सोमाभिषव काल में जो दशों उंगलियाँ जब इनका स्पर्श करती हैं, तब यह दशों उंगलियां अश्वों की बाँधने की दश रस्सियाँ, दश योक्त्र या दश लगामों के समान लगती हैं। अथवा ऐसा लगता है कि दश धुरे एकत्र होकर रथ का वहन कर रहे हों। ७। दशों उंगलियों को बंधन-कारिणी रस्सियों के समान पाकर यह पाषाण शीघ्र कार्यकारी होते हैं। इनके द्वारा निचुड़ा हुआ सोम रस हरे रङ्ग का होकर गिरता है। कुटे हुए सोम खण्ड, पीसे जाने पर अमृत के समान मधुर रस को बाहर निकालते हैं। उस अन्न रूप सोम का प्रथम भाग यह अभिषवण पाषाण ही प्राप्त करते हैं। ८। सोम का प्रथम सेवन करने वाले अभिषवण पाषाण इन्द्र के दोनों अश्वों का स्पर्श करते हैं। उन पाषाणों द्वारा जो मधुर सोम-रस क्षरित होता है, उसका पान करने पर इन्द्र प्रवृद्ध होकर वृषभ के समान बल प्रकट करने वाले होते हैं। ९। सोम के खण्ड तुम्हें रस प्रदान करेंगे, इसलिये निराशा का कोई कारण नहीं हैं। जिनके यज्ञ में तुम रहते हो, वे यजमान सदा अन्नदान रहते और ऐश्वर्यवंतों के समान तेजस्वी होते हैं। १०।   [३०]

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अश्रृथिता अमृत्यवः।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो
अतृषिता अतृष्णजः ।।११

ध्रुवा व वएः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण

पृथिवीमशुश्रवुः ॥१२
तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो वीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं
न मिनन्ति बप्सतः ॥१३
सुते अध्वरे अभि वाचमक्रता क्रीलयो न मातरं नुदन्त ।
वि षू मुंञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्ताम ।
द्रयश्चायमानाः ॥१४।३१

हे पाषाणो तुम कभी निराश नहीं होते । तुम्हारे अनुग्रह के बिना दूसरों को निराश होना पड़ता है । तुम्हें थकान नहीं व्यापती । तुमको रोग, शोक, जरा, मृत्यु, तृष्णा आदि का आभास नहीं होता । तुम स्थूल हो । तुम एकत्र करने और छटपटाने में चतुर माने जाते हो । ११ । पर्वत तुम्हारे पूर्वज हैं । यह पूर्णकाम पर्वत युग युगान्तर से अपने स्थान पर अडिग खड़े हैं । यह कभी अपने स्थान को नहीं त्यागते । वे जरा रहित हैं । उन पर सदा हरे वृक्ष लहलहाते हैं । वे हरे रङ्ग के से होकर पक्षियों की चहचहाट से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं । १२ । जैसे रथ पर चढ़ने वाले पुरुष रथ के मार्ग पर रथ को चलाते हैं, तब उससे शब्द होता है, वैसे ही सोम का अभिषव करने वाले पाषाण शब्द करते हैं जैसे धान्य बोने वाले किसान खेत में बीज को फैलाते हैं, वैसे ही यह पाषाण सोम-रस को फैलाते हैं । यह उनका सेवन करके उसे निर्वीय नहीं करते । १३ । जैसे खेलने वाले बालक खेलने के स्थान में शब्द करते हैं, वैसे ही सोम के निष्पन्न करने वाले पत्थर शब्द करते हैं । हे स्तोताओ ! जिन पाषाणों ने सोम को निष्पीड़न किया है, तुम उनकी स्तुति करो, जिससे वे घूमते हुए अपना कार्य करें । १४ । [३१]

सूक्त ९५

(ऋषिः—पुरुरवा एलः, उर्वशी । देवता—उर्वशी, पुरुरवा ऐलः ।
छन्द—त्रिष्टुप्)

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा नुनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥१
किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्त परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥२
इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोपाः शतसा न रंहि ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युत्तन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥३
सा वसु श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिंचाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वेतसेन ॥४
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वेतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व स्तदासीः ॥५॥१

हे निर्दय नारी ? तुम अपने मन को अनुरागी बनाओ । हम शीघ्र ही परस्पर वार्तालाप करें । यदि हम इस समय मौन रहेंगे तो आगामी दिवसों में सुखी नहीं रहेंगे । १ । हे पुरुरवा ! वार्तालाप से कोई लाभ नहीं । मैं वायु के समान ही दुष्प्राप्य नारी हूं । मैं उषा के समान तुम्हारे पास आई हूं । अब तुम अपने गृह को लौट जाओ । २ । हे उर्वशी ! मैं तुम्हारे वियोग में इतना सन्तप्त हूं कि अपने तूणीर से बाण निकालने में असमर्थ हो रहा हूं । इस कारण मैं युद्ध में जय लाभ करके असीमित गौओं को नहीं ला सकता । मैं राज कार्यों से विमुख हो गया हूं इसलिए मेरे सैनिक भी कार्य-हीन हो गए हैं । ३ । हे उषा ! उर्वशी यदि श्वसुर को भोजन कराना चाहती तो निकटस्थ घर से पति के पास जाती । ४ । हे पुरुरवा ! मुझे किसी सपत्नी से प्रतिस्पर्द्धा नहीं थी, क्योंकि मैं तुमसे हर प्रकार सन्तुष्ट थी । जब से मैं तुम्हारे घर में आई तभी से तुमने मेरे सुखों का विधान किया । ५ । (५)

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६
समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः ।

महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्य हत्याय देवाः ॥७
सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ।
यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः स्वा सश्वाशो न क्रीलयोदन्दशानाः ॥९
विद्युन्नया पतन्ती दविद्योद्भरन्ती अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०।२

सूर्जूणि, श्रेणि सुम्न आदि अप्सराऐं मलीन वेश में यहा आती थीं। गोष्ठ में आती हुई गौऐं जैसे शब्द करती हैं, वैसे ही शब्द करने वाली वे महिलाऐं मेरे घर में नहीं आती थीं। ६। जब पुरुरवा उत्पन्न हुआ तब सभी देवाँगनाऐं उसे देखने को आईं। नदियों ने भी उनकी प्रशंसा की तब हे पुरूरवा ! देवगण ने घोर संग्राम में जाने और नाश करने के लिए तुम्हारी स्तुति की। ७। जब पुरुरवा मनुष्य होकर अप्सराओं की ओर गए तब अप्सराऐं अन्तर्धान हो गईं वह उसी प्रकार वहाँ से चली गईं जिस प्रकार भयभीत हरिणी भागती है या रथ में योजित अश्व द्रुतगति से चले जाते हैं। ८। मनुष्य योनि को प्राप्त हुए पुरुरवा जब दिव्यलोकवासिनी अप्सराओं की ओर बढ़े तब वे अप्सराऐं, जैसे क्रीड़ा-कारी अश्व भागा जाता है, वैसे ही भाग गईं। ९। जो उर्वशी अंतरिक्ष की विद्युत के समान आभामयी है, उसने मेरी सब अभिलाषाओं को पूर्ण किया था। यह उर्वशी अपने द्वारा उत्पन्न मेरे पुत्र को दीर्घजीवी करे। १०। [२]

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आश‍ृणोः किमभुग्वदासि ॥११
कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषुदीदयत् ॥१२
प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्नाक्रन्ददाध्ये शिवायै ।

प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३
सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृको रभासाभो ।अद्युः ॥१४
रूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५।३

हे पुरुरवा ! तुमने पृथिवी की रक्षा के लिए पुत्र को उत्पन्न किया है । मैं तुमसे अनेक बार कह चुकी हूँ कि तुम्हारे पास नहीं रहूंगी । तुम इस समय प्रजा पालन के कार्य से विमुख होकर व्यर्थ वार्तालाप क्यों करते हो ? ।११। हे उर्वशी ! तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रहेगा ? वह मेरे पास आकर रोवेगा ? पारस्परिक प्रेम के बन्धन को कौन सद्गृहस्थ तोड़ना स्वीकार करेगा ? तुम्हारे श्वसुर के घर में श्रेष्ठ आलोक जगमगा उठा है ।१२। हे पुरुरवा ! मेरा उत्तर सुनो । मेरा पुत्र तुम्हारे पास आकर रोयेगा नहीं, मैं उसकी मंगल-कामना करूँगी । तुम अब मुझे नहीं पा सकोगे, अतः अपने घर को लौट जाओ । मैं तुम्हारे पुत्र को तुम्हारे पास भेज दूंगी ।१३। हे उर्वशी ! मैं तुम्हारा पति आज पृथिवी पर गिर पड़ा हूँ । वह (मैं) फिर कभी न उठ सका । यह दुर्गति के बन्धन में पड़कर मृत्यु को प्राप्त हो और वृकादि उसके शरीर का भक्षण करें ।१४। हे पुरुरवा ! तुम गिरो मत । तुम अपनी मृत्यु की इच्छा न करो । तुम्हारे शरीर को वृकादि भक्षण न करें । स्त्रियों का और वृकों का हृदय एकसा होता है, उनकी मित्रता कभी अटूट नहीं रहती ।१५।

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववस रात्री शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं स कृदह आश्नां तादवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६
अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युवशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७
इति त्वा देवा इम आहुरैल यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ मादयासे ॥१८।४

मैंने विविध रूप धारण कर मनुष्यों में विचरण किया है। चार वर्षों तक मैं मनुष्यों में ही वास करती रही हूँ। नित्यप्रति एक बार घृत-पान करती हुई घूमती रही हूं ।१६। उर्वशी जल को प्रकट करने वाली और अन्तरिक्ष को पूर्ण करने वाली है। वसिष्ठ ही उसे अपने वश में कर सके। तुम्हारे पास उत्तम कर्मा पुरुरवा रहे। हे उर्वशी ! मेरा हृदय दग्ध हो रहा है, अतः लौट आओ ।१७। हे पुरुरवा ! सभी देवताओं का कथन है कि तुम मृत्यु को जीतने वाले होगे और हव्य द्वारा देवताओं का यज्ञ करोगे। फिर स्वर्ग में आनन्दपूर्वक वास करोगे ।१८।

सूक्त ९६

(ऋषि—सर्व हरिर्वैन्द्र। देवता—हरिस्तुतिः। छन्द—त्रिष्टुप,)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सचेत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः॥१
हरिं हि योनिमभि ये गमस्वरन्हिवन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२
सो अस्व वज्रो हरितो य आयसोर्हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नीसु शिप्रो हरिमन्युसायकहन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ।
दिवि न केतुरधि घायि हर्यतो धिव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४
त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेष यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य मतामिराधो हरिजात हर्यतम् ॥५।५

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का संहार करने वाले हो। इस महान् यज्ञ में मैंने तुम्हारे दोनों अश्वों का स्तोत्र किया है। हे इन्द्र ! मेरा निवेदन है कि तुम भले प्रकार हर्षित होकर घृत के समान श्रेष्ठ जल की वृष्टि करो। तुम अपने हर्यश्व द्वारा आओ। मेरी स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों ।१।

हे स्तोताओ ! तुमने अपने यज्ञ की ओर इन्द्र को प्रेरित किया है और इन्द्र के दोनों अश्वों को यहाँ लाए हो। अतः अश्वों के सहित इन इन्द्र के बल की स्तुति करो। गौऐं जैसे दूध देकर तृप्त करती हैं, वैसे ही तुम हरितवर्ण वाले मधुर सोम रस को देकर इन्द्र को तृप्त करो ।२। शत्रुओं का नाश करने वाला, हरित वर्ण वाला लौह वज्र है, उसे इन्द्र अपने दोनों हाथोंमें धारण करते हैं। वे इन्द्र ऐश्वर्यवान् शोभन हनु वाले हैं और क्रोध में भरकर अपने आयुध द्वारा शत्रुओं को मारते हैं। उन इन्द्र को हम हरित एवं मधुर सोम-रस द्वारा सींचते हैं ।३। सूर्य अपने प्रकाश से जैसे सब दशाओं को व्याप्त करते हैं, उसी प्रकार शोभन तेज वाला वज्र सब स्थानों को व्याप्त करता है। श्रेष्ठ हनु वाले इन्द्र ने सोम पीकर इस लौह वज्र हवन में से वृत्र अपरिमत शक्ति प्राप्त की ।४। हे इन्द्र ! तुम्हारे केश हरे वर्ण के हैं। प्राचीन ऋषियों ने जब जब तुम्हारी स्तुति की तब तब तुम यज्ञों में गये। हे इन्द्र ! तुम्हारे अन्न की कोई उपमा नहीं हो सकती, क्योंकि वह श्रेष्ठ और सब प्रकार प्रशंसनीय है ॥५॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥७
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१०।६

वज्रधारी इन्द्र स्तुतियों के पात्र हैं। वे जब सोम-पान का हर्ष

मैंने विविध रूप धारण कर मनुष्यों में विचरण किया है। चार वर्षों तक मैं मनुष्यों में ही वास करती रही हूँ। नित्यप्रति एक बार घृत-पान करती हुई घूमती रही हूं ।१६। उर्वशी जल को प्रकट करने वाली और अन्तरिक्ष को पूर्ण करने वाली है। वसिष्ठ ही उसे अपने वश में कर सके। तुम्हारे पास उत्तम कर्मा पुरुरवा रहे। हे उर्वशी! मेरा हृदय दग्ध हो रहा है, अतः लौट आओ ।१७। हे पुरुरवा! सभी देवताओं का कथन है कि तुम मृत्यु को जीतने वाले होगे और हव्य द्वारा देवताओं का यज्ञ करोगे। फिर स्वर्ग में आनन्दपूर्वक वास करोगे ।१८।

सूक्त ९६

(ऋषि—सर्व हरिर्वैन्द्र। देवता—हरिस्तुतिः। छन्द—त्रिष्टुप,)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सचेत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः॥१
हरिं हि योनिमभि ये गमस्वरन्हिवन्तो हरी दिव्यं यथा सदः।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२
सो अस्व वज्रो हरितो य आयसोहरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः।
द्यु म्नीसु शिप्रो हरिमन्युसायकहन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे।
दिवि न केतुरधि घायि हर्यतो धिव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४
त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेष यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य मतामिराधो हरिजात हर्यतम् ॥५।५

हे इन्द्र! तुम शत्रुओं का संहार करने वाले हो। इस महान् यज्ञ में मैंने तुम्हारे दोनों अश्वों का स्तोत्र किया है। हे इन्द्र! मेरा निवेदन है कि तुम भले प्रकार हर्षित होकर घृत के समान श्रेष्ठ जल की वृष्टि करो। तुम अपने हर्यश्व द्वारा आओ। मेरी स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों ।१।

हे स्तोताओ ! तुमने अपने यज्ञ की ओर इन्द्र को प्रेरित किया है और इन्द्र के दोनों अश्वों को यहाँ लाए हो। अतः अश्वों के सहित इन इन्द्र के बल की स्तुति करो। गौऐं जैसे दूध देकर तृप्त करती हैं, वैसे ही तुम हरितवर्ण वाले मधुर सोम रस को देकर इन्द्र को तृप्त करो ।२। शत्रुओं का नाश करने वाला, हरित वर्ण वाला लौह वज्र है, उसे इन्द्र अपने दोनों हाथोंमें धारण करते हैं। वे इन्द्र ऐश्वर्यवान् शोभन हनु वाले हैं और क्रोध में भरकर अपने आयुध द्वारा शत्रुओं को मारते हैं। उन इन्द्र को हम हरित एवं मधुर सोम-रस द्वारा सींचते हैं ।३। सूर्य अपने प्रकाश से जैसे सब दशाओं को व्याप्त करते हैं, उसी प्रकार शोभन तेज वाला वज्र सब स्थानों को व्याप्त करता है। श्रेष्ठ हनु वाले इन्द्र ने सोम पीकर इस लौह वज्र हवन में से वृत्र अपरिमत शक्ति प्राप्त की ।४। हे इन्द्र ! तुम्हारे केश हरे वर्ण के हैं। प्राचीन ऋषियों ने जब जब तुम्हारी स्तुति की तब तब तुम यज्ञों में गये। हे इन्द्र ! तुम्हारे अन्न की कोई उपमा नहीं हो सकती, क्योंकि वह श्रेष्ठ और सब प्रकार प्रशंसनीय है ।।५।।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे हर्यता हरो।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यंत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ।।६
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा।
अवीद्भर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ।।७
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भियो हरिभर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ।।८
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ।।९
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ।।१०।६

वज्रधारी इन्द्र स्तुतियों के पात्र हैं। वे जब सोम-पान का हर्ष

लिये चलते हैं, उस समय उनके रथ को दो श्रेष्ठ अश्व जुत कर वहन करते हैं। इन इन्द्र के लिए यज्ञों में बहुत बार सोम-रस का निष्पीडन किया जाता है।६। इन्द्र की इच्छा के अनुसार प्रचुर सोम रस रहता है। वही सोम-रस इन्द्र के अश्वों को भी यज्ञ की ओर लाने का उत्साह देता है। जिस रस को उनके हर्यश्व संग्राम भूमि में ले जाते हैं, वही रथ इस सोमयाग में आकर ठहरता है।७। इन्द्र की दाढ़ी मूँछ भी हरी हैं। उनका शरीर लोहे के समान दृढ़ है। वे शीघ्र-शीघ्र सोम पीकर अपने देह को विशाल करते हैं। यज्ञ ही उनकी सम्पत्ति है। उनके हर्यश्व उन्हें यज्ञस्थान में ले जाते हैं। वे अपने दो अश्वों पर आरूढ़ होकर यजमान की सभी विपत्तियों को दूर करते हैं।८। स्रुवा पात्र के समान उज्ज्वल इन्द्र के दो नेत्र यज्ञ कर्म में लगते हैं। जब वे अन्न सेवन करते हैं तब उनके दोनों जबड़े हिलते हैं। चमस में सोम रस रहता है, उसका पान करके अपने दोनों अश्वों को उत्साहित करते हैं।९। इन्द्र आकाश पृथिवी पर रहते हैं। वे अश्व युक्त रथ पर आरूढ़ होकर अत्यन्त बेग से संग्राम-भूमि में पहुँचते हैं। श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा उसकी प्रशंसा होती है। हे इन्द्र! तुम अपने बल द्वारा प्रचुर अन्न प्रदान करते हो ॥१०॥ (६)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥११
आ त्वा हर्यन्त प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥१२
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ।१३।७

हे इन्द्र! तुमने अपनी महिमा से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण किया है। तुम्हारी नित्य नवीन स्तुति की जाती है। गौओं के श्रेष्ठ गोष्ठ को जलापहारक सूर्य के समीप उत्पन्न करो।११। हे इन्द्र! तुम्हारे

हनु अत्यन्त उज्ज्वल हैं। रथ में योजित तुम्हारे अश्व तुम्हें हमारे यज्ञ में लेकर आवें। फिर तुम्हारे लिए जो सोम रस दश उंगलियों द्वारा अभिषुत हुआ है उसका पान करो। यज्ञ के निधि रूप इस सोम को संग्राम के समान भी पान करने की कामना करो ।१२। हे इन्द्र ! प्रातः सवन में अभिषुत सोम को तुमने पिया था। इस मध्य सवन में जो सोम निष्पन्न हुआ है वह भी तुम्हारे निमित्त ही है। इस मधुर सोम रस का आस्वादन करते हुए अपने जठर को पूर्ण करो ।।१३।। (७)

सूक्त ९७

(ऋषि—भिषगाथर्वणः। देवता—ओषधीस्तुतिः। छन्द—अनुष्टुप्,)

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यास्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ।।१
शतं वो अत्व धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगद कृत ।।२
ओषधोः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ।।३
ओषधीरित मातरस्तद्वो देवां रुप ब्रुवे।
सनेयमश्वं गां व स आत्मानं तव पूरुष ।।४
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गाभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।।५।८

प्राचीन कालीन तीनों युगों में देवनाओं ने जिस औषधियों की कल्पना की हैं, वे सब पीत वर्ण की ओषध्रियाँ एक सौ सात स्थानों में वर्तमान हैं ।१। हे औषधियो ! तुम असीम जन्म वाली हो। तुम्हारे प्ररोहण भी असीमित हैं। तुम सैकड़ों गुणों से सम्पन्न हो अतः मुझे आरोग्यता देकर स्वस्थ करो ।२। हे पुष्प फल से सम्पन्न ओषधियो ! तुम रोगी पर अनुग्रह करने वाली बनो। जैसे रणभूमि में अश्व विजयशील होते हैं, वैसे

तुम रोगों को जीतने वाली होओ । इन पुरुषों को आरोग्य प्रदान द्वारा रोगों से पार लगाओ ।३। हे मातृवत् औषधियो ! तुम अत्यन्त तेजस्विनी हो । मैं तुम्हारे समक्ष यह कहता हूं कि मैं भिषक् गौ, अश्व और वस्त्रादि प्रदान करूँगा ।४। हे औषधियो ! तुम्हारा पीपल और पलाश पर निवास है । जब तुम रोगी पर कृपा करती हो, उस समय तुम्हें गौएँ दी जाती हैं । क्योंकि उपकारी के प्रति कृतज्ञता होनी चाहिए ।।५।।

(८)

यत्रौषधि: समग्मत राजान: समिताविव ।
विप्र: स: उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातन: ।।६
अश्वावती सोमवतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ।।७
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ।।८
इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृती: ।
सीरा: पतत्रिणी: स्थन यदामयति निष्कृथ ।।९
अति विश्वा: परिष्ठा: स्तेनइव व्रजमक्रमु: ।
ओषधी: प्राचुच्यवुर्यत्कि चतन्वो रप: ।।१०।९

सभाओं में जैसे राजा गण एकत्र होते हैं, वैसे ही यहाँ औषधियाँ एकत्र रहती हैं और जो मेधावी उनके गुण धर्म का ज्ञाता है वही चिकित्सक कहाता है. क्योंकि वह रोगों को शमन करने वाले विभिन्न यत्नोंको प्रयुक्त रहता है ।६। मैं अश्ववती, सोमावती, ऊर्जयन्ती, उषोजस आदि औषधियों का जानने वाला हूँ । वे औषधियाँ इस रोगी को आरोग्य प्रदान करें ।७। हे रोगी ! गौऐं जैसे गोष्ठ से बाहर निकलती है, वैसे ही औषधियों का गुण बाहर आता है । अत: औषधियां तुम्हें नीरोग करने में समर्थ होंगी ।८। हे ओषधियो ! तुम्हारी माता इष्कृति हैं, क्योंकि वह रोगों को दूर करती है । तुम रोगों को नष्ट करने वाली हो । शरीर को जो रोग पीड़ित करता है,उस दुष्ट रोग को तुम बाहर करो । क्योंकि

तुम आरोग्यतादायिनी हो ।९। चोर जैसे गोओं के गोष्ठ के पार जाता है, वैसे ही यह संसार को व्याप्त करने वाली औषधियां रोगों के पार जाती हैं। यह देहगत समस्त वेदना को नष्ट करती हैं ।१०। (९)

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो तथा ॥११
यश्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्ग परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२
साकं यक्ष्मं प्रपत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३
अन्या बो अन्यामवत्न्यस्था उपावत ।
ताः सर्वाः सविदाना इदं मे प्रावता यचः ॥१४
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पः याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः । १५।१०

मैं इन औषधियों को ग्रहण कर रोगी की निर्बलता को नष्ट करता हूं । तब जैसे मृत्यु को प्राप्त हुआ देहधारी मर जाता है, वैसे ही रोग की आत्मा भी नष्ट हो जाती है ।११। हे औषधियो ! जैसे बलवान् पुरुष सबको अपने वशीभूत कर लेते हैं, वैसे ही तुम जिसके शरीर में रम जाती हो, उसके सर्वाङ्ग स्थित रोग को समूल दूर कर देती हो ।१२। जैसे नीलकण्ठ और बाज पक्षी शीघ्रगति से उड़ जाते हैं, और जिस वेग से वायु प्रवाहित होता है तथा जैसे गोधा भागती है, वैसे ही हे रोग ! तुम शीघ्रता से निकल जाओ ।१३। हे औषधियो ! तुममें से एक दूसरी से और दूसरी तीसरी से मिश्रित हो । इस प्रकार सभी औषधियां परस्पर मिल कर गुण वाली हों । यही मेरी कामना है ।१४। फल वाली या फल-हीन तथा पुष्प वाली और बिना पुष्प की सभी औषधियों को बृहस्पति उत्पन्न करते हैं । वे औषधियाँ पाप से हमारी रक्षा करें ।१५। (१०)

मुञ्चतु मा शपथ्या दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्विषात् ॥१६
अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥१८
या ओषधी सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥१९
मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातरम् ॥२०
याश्चेदमुपश्रृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सदत्त वीर्यम् ॥२१
ओशधयः संवद ते सोमेन सहु राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्परायामसि ॥२२
त्वत्मुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो स्माकं यो अस्मां अभिदासति ॥२३।११

औषधियां मुझे शपथ से उत्पन्न हुए पाप रोग से रक्षित करें। वे वरुण, यम तथा अन्य देवताओं के पाश से हमारी रक्षा करें ।१६। जब औषधियां दिव्य लोक से आने लगीं तब उन्होंने कहा था कि हम जिसकी रक्षा करें, वह पीड़ित न रहे ।१७। जो औषधियाँ प्राणी मात्र के लिए उपकारिणी हैं और जिन औषधियों में मुख्य सोम है, उनमें औषधि ! तुम श्रेष्ठ हो। तुम हमारी इच्छाओं को पूर्ण करती और सब का कल्याण करने में समर्थ हो ।१८। जो औषधियाँ पृथिवी के विभिन्न भागों में स्थित हैं और सोम जिनका राजा है, वे औषधियाँ वृहस्पति द्वारा उत्पन्न होती हैं। वे इस प्रकार औषधि को गुण वाली बनावें ।१९। हे औषधियो ! मैं तुम्हें खोदकर निकालता हूँ, तुम मुझे

हिंसित मत होने देना । मैं तुम्हें जिस रोगी के लिए ग्रहण कर रहा हूं, वह रोगी भी नाश को प्राप्त न हो । हमारे मनुष्य और पशु सभी स्वस्थ रहें ।२०। जो औषधि दूर हैं अथवा जो औषधि मेरी स्तुति को सुनती हैं, वे सब औषधियाँ एकत्र होकर प्रयुक्त औषधि को गुण से सम्पन्न करें ।२१। सब औषधियों ने आगे राजा सोम से कहा कि—स्तुति करने वाले भिषक् जिसकी चिकित्सा करते हैं, उसी रोगी की हम रक्षा करती हैं ।२२। हे औषधि ! तुम सब वृक्षों से श्रेष्ठ हो हमारा बुरा चाहने वाला शत्रु हमारे पास न आवे ।२३। (११)

सूक्त ९८

(ऋषि—देवापिरार्ष्टिषेणः । देवता—देवाः । छन्द—त्रिष्टुप्,)

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा ।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वान्त्स शन्तनवे वृषाय ॥१
आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान्त्वाद्देवापे अभि मामगच्छत् ।
प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् ॥२
अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन्बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शन्तनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमां आ विवेश ॥३
आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्देवापे हविषा सपर्य ॥४
आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥५
अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥६।१२

हे बृहस्पति ! मुझ पर अनुग्रह करते हुए तुम सब देवताओं के पास गमन करो । तुम मित्रावरुण, पूषा, आदित्यगण और वसुगण के साथ साक्षात् इन्द्र ही हो । अतः तुम राजा शान्तनु के लिए मेघ से जल-वृष्टि

करो ।१। हे देवापि, कोई मेधावी और द्रुतगामी देवता दूत बन कर तुम्हारे पास से मेरे पास आगमन करें। हे बृहस्पते ! तुम हमारे सामने पधारो। तुम्हारे लिए हमारे मुख में श्रेष्ठ स्तुति प्रस्तुत है ।२। हे बृहस्पते ! तुम हमारे मुख में श्रेष्ठ स्तोत्र स्थापित करो। वह स्तोत्र स्फूर्तिप्रद और स्पष्ट हो हम उससे शान्तनु के लिए वृष्टि प्राप्त करें ।३। हमारे निमित्त वर्षा का जल प्राप्त हो। हे इन्द्र ! तुम अपने रथ के द्वारा महान् धन प्रदान करो। हे देवापि ! हमारे इस यज्ञ में आकर विराजमान होओ और देवताओं का पूजन करते हुए हविरन्न से उन्हें तृप्त करो ।४। देवापि ऋषि ऋषिषेण के पुत्र हैं। उन्होंने तुम्हारे लिये श्रेष्ठ स्तुति करने का विचार कर यज्ञ किया। तब वे अन्तरिक्ष रूप से समुद्र से पार्थिव समुद्र में वर्षा का जल ले आए ।५। देवताओं ने अन्तरिक्ष को आच्छादित किया हैं। देवापि ने इस जल को प्रेरित किया। उस समय उज्ज्वल पृथिवी पर जल प्रवाहित होने लगा ।६। (१२)

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुत वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥७

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥८

त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन्त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथा यस्वे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ॥९

एतान्यग्न नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वधस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि ॥१०

एतान्यग्ने नवति सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान्पथ ऋतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ॥११

अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात्समुद्राद बृहता दिवो नोऽपां भूमानमुप न सृजेह ॥१२॥१३

जब शान्तनु के पुरोहित देवापि यज्ञ करने के लिए तैयार हुए तब उन्होंने जल का उत्पादन करने वाले देवताओं का स्तोत्र रचा, जिससे प्रसन्न होकर बृहस्पति ने उनके मन में श्रेष्ठ स्तोत्र रूप वाक्यों को भर दिया ।७। हे अग्ने ! ऋषिषेण-पुत्र देवापि ने तुम्हें प्रज्ज्वलित किया है, अतः तुम देवताओं का सहयोग प्राप्त करके जल-वृष्टि वाले मेघ को प्रेरित करो ।८। हे अग्ने ! प्राचीन ऋषियों ने स्तुति करते हुए तुम्हारे पास आगमन किया । तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो, अतः वतमानकालीन यजमान अपने यज्ञ में स्तुतियों सहित तुम्हारी ओर गमन करते हैं। शान्तनु राजा ने जो दक्षिणा दी है, उसमे रथ सहित सहस्रों पदार्थ थे। हे अग्ने ! तुम रोहिताश्व भी कहाते हो । हमारे यज्ञ में आगमन करो ।९। हे अग्ने ! रथों सहित निन्यानवे हजार पदार्थ प्रदान किये गए हैं। तुम उनके द्वारा प्रसन्न होकर हमारे कल्याण के निमित्त आकाश से जल वृष्टि करो ।१०। हे अग्ने ! नब्बे हजार आहूतियों द्वारा इन्द्र का भाग उन्हें प्रदान करो । तुम सब देवयानों के ज्ञाता हो अतः शान्तनु को समय आने पर देवताओं के मध्य अवस्थित करना ।११। हे अग्ने ! शत्रुओं के दृढ़ नगरों को तोड़ डालो । रोग रूप व्याधियों को भगाओ । महान् अन्तरिक्ष से तुम श्रेष्ठ वृष्टि जल को लेकर आगमन करो ।१२। (१३)

सूक्त ९९

(ऋषि—वम्रो वैखानसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत्तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिवत् ॥१
स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीलेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥२
स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥३
स यह्व्यो वनीर्गोष्ववर्या जुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः ।

अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरिते घृतं वा: ॥४
स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारे अवद्य आगात्।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषान् ॥५
स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥६।२४

हे इन्द्र ! तुम हमको अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हो। वह प्रशंसनीय ऐश्वर्य वृद्धि को प्राप्त होकर हमारी भी वृद्धि करता है। इन्द्र की बल-वृद्धि के निमित्त हम क्या दें? उनके लिए वृत्र का नाश करने वाले वज्र की रचना की गई है। उन्होंने जल की वृष्टि की है ॥१॥ विद्युत् इन्द्र का आयुध है, वे उसे धारण कर यज्ञ में गाए जाते हुए सोम की ओर गमन करते हैं। वे अपनी महिमा से अनेक स्थानों पर अधिकार करते हैं। वे एक साथ निवास करने वाले मरुद्गण के सहयोग से शत्रुओं का पराभव करते हैं। उनके विमुख होने पर कोई भी कार्य नहीं बनता। वे आदित्यगण में सातवें भाई हैं ॥२॥ वे श्रेष्ठ चाल से रण-भूमि में जाते हैं। वे अवचलित होते हुए सौ द्वारों वाली शत्रु-नगरों से धन लेकर आते हैं और पापियों को अपने तेज से परास्त करते हैं।३। वे मेघों में जाकर घूमते और वहां से श्रेष्ठ भूमि पर जल वृष्टि करते हैं। उन सब जल युक्त स्थानों पर लघु नदियाँ एकत्र होकर उज्ज्वल जल को प्रवाहित करती हैं। उनके चरण, रथ, नौका आदि कुछ भी नहीं हैं।४। वे प्रकाण्ड इन्द्र बिना मांगे ही इच्छित फल प्रदान करते हैं। कुख्यात व्यक्ति उनके समक्ष जाने का साहस नहीं करता। वे इन्द्र मरुद्गण सहित अपने स्थान से यहाँ आगमन करें। मुझ वम्र के माता पिता का दुःख दूर होगया। मैंने शत्रुओं को व्यथित किया है और उनके धन को प्राप्त किया है ॥५। इन्द्र ने दस्युओं पर शासन किया। उन्होंने तीन कपाल वाले और छः नेत्रों वाले विश्वरूप का हनन किया था। त्रित ने इन्द्र के बल से बली होकर लौह समान तीक्ष्ण नखों से वराह को मार डाला था ॥६॥ (१४)

स द्रु्ह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानय शरुम् ।
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोऽभिनदर्हन्दस्युहत्ये ॥७

सो अभ्रियो व यवस उदन्यन्क्षयाय गातु विदन्नो अस्मे ।
उप यत्सीददिन्दु शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥८

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यामिमीतारुं यश्चतुष्पात् ॥१०

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रज दरयद्व षभेण विप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दादयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥११

एवा महो असर वक्षथाय वभ्रकः षडभिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जंसुक्षितिं विश्वमाभाः॥१२॥१५

इन्द्र के जिस उपासक को उसके शत्रु युद्ध की चुनौती देते हैं, तब वे अभिमान से अपने शरीर के बढ़ाते हुए शत्रु को नाश करने वाला श्रेष्ठ आयुध देते हैं। वे मनुष्यों का नेतृत्व करने वाले हैं। जब उन्होंने राक्षस का वध किया तब उनकी अनेक नगरियों को तोड़ डाला ।७। तृण से युक्त पृथिवी पर इन्द्र मेघों से जल वृष्टि करते हैं। उन्होंने अपने देह के सब अवयवों को सोम से सींचा है। वे हमारे घर का मार्ग जानते हैं। बाज के समान वे तीक्ष्ण और दृढ़ पृष्ठ के द्वारा राक्षसों को मारते हैं ।८। वे अपने दृढ़ आयुध से विकराल शत्रुओं को भी भगाते हैं। कुत्स की स्तुति सुनकर उन्होंने शुष्णासुर को विदीर्ण किया था। स्तुति करने वाले कवि उशना के वैरियों को भी उन्होंने वशीभूत किया। वही इन्द्र उशना तथा अन्य उपासकों को ऐश्वर्य करते प्रदान करते हैं ।९। इन्द्र ने मनुष्यों का हित करने वाले मरुद्गण के साथ धन प्रेरित किया था। वे

अपने तेज से तेजस्वी और वरुण के समान श्रेष्ठ महिमा वाले हैं। समय आने पर सभी उपासक उन्हें रक्षकरूप से मानते हैं। उन्होंने ही चतुष्पाद शत्रु का वध किया ।१०। उशिज-पुत्र ऋजिश्वा ने इन्द्र की स्तुति द्वारा ही वज्र से विप्रु के गोष्ठ का उद्घाटन किया । जब ऋजिश्वा ने सोम अर्पित कर स्तुति की तभी इन्द्र प्रसन्न हुए और उन्होंने शत्रुओं के नगरों को तोड़ डाला ।११। हे इन्द्र अनेक हवियाँ देने की कामना करता हुआ मैं वभ्र तुम्हारी सेवा में पैदल चलकर उपस्थित हुआ हूं। तुम मेरा कल्याण करो तथा श्रेष्ठ अन्न, सुन्दर गृह, सब पदार्थ और बल आदि मुझे दो ।१२। [१५]

सूक्त १०० (छटवाँ अनुवाक]

(ऋषि—दुवस्युर्वान्दन । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्र दृह्य मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।१
भराय मु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।२
आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजयते यजमानाय सुन्वते ।
यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।३
इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः ।
यथायथा मित्रधितानि सं दधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।४
इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः ।
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमादिति वृणीमहे ।।५
इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः ।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।५।१६

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। अपने समान बल शाली शत्रु-सेना का संहार करो और हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाओ । तुम हमारी स्तुति स्वीकार कर सोम पान करो। हमारी रक्षा के लिये आओ। सविता देव भी अन्य

देवताओं सहित आकर हमारे यज्ञ की रक्षा करें । हम अदिति की भी स्तुति करते हैं ।१। हे ऋत्विज ! युद्ध के समय वायु को यज्ञ-भाग प्रदान करो । ये मधुर सोम रस के पीने वाले हैं । जब वे जाते हैं तब शब्द होता है । वे उज्ज्वल दूध का पान करते हैं हम माता अदिति की भी स्तुति करते हैं ।२। यह अभिषवकारी यजमान सरल मार्ग का याचक है । सविता उन्हें अन्न प्रदान करें । उस अन्न के द्वारा हम देवताओं का पूजन करेंगे । हम अदिति की भी स्तुति करते हैं ।३। इन्द्र हम पर सदा प्रसन्न रहें । हमारे यज्ञ में सोम अवस्थित हो । मित्रों की योजना के अनुसार ही हमारा यज्ञानुष्ठान पूर्ण हो । हम अदिति की स्तुति करते हैं ।४। इन्द्र की महिमा प्रशंसनीय है उस महिमा से ही वे हमारे यज्ञ का पालन करते हैं । हे बृहस्पते ! तुम दीर्घ आयु देने में प्रसिद्ध हो । यह यज्ञ हमारी गति और बुद्धि है । उसी के द्वारा कल्याण सम्भव है । वही हमारी रक्षा करने वाला है । हम अदिति की भी स्तुति करते हैं ।५। इन्द्र ने ही देवताओं को बल दिया है । घर में विराजमान अग्नि, देवताओं के कार्य का निर्वाह करते हैं । वही यज्ञ करते हैं और वही स्तुति करते हैं । यज्ञ के समय वे दर्शनीय होते हैं । सबको ग्रहण करने वाली अदिति की हम स्तुति करते हैं ।६। (१६)

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेलनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।७
अपामीवां सविता साविषन्न्य ग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।८
ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।९
ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।१०
क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ।।११

चिक्षस्ते भानु क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोस्तूतूर्षति पर्यग्र दुवस्युः ।१२।७

हे वसुगण ! हमने ऐसा कोई अपराध नहीं किया, जो तुमसे छिपा हुआ हो । तुम्हारे समक्ष भी हमने ऐसा कोई कार्य नहा किया है, जिससे देवगण हम पर क्रोध करें । हे देवताओ ? तुम हमारा अनिष्ट मत करना । हम अदिति से प्रार्थना करते हैं ।७। जहाँ सोमाभिषव होने पर पाषाण की भी भले प्रकार स्तुति करते हैं, वहाँ उपस्थित होने वाले सब रोगों को सविता दूर करते हैं । पर्वत भी वहाँ की भीषण व्याधियों को मिटाते हैं। हम अदिति की भी स्तुति करते हैं ।८। हे वसुगण ! जब तक सोमाभिषवण-पाषाण ऊँचा उठे, तब तक तुम शत्रुओं को पृथक्-पृथक् करो । सवितादेव सदा ही रक्षा करते हैं । उनकी हम स्तुति करते हैं । सबको ग्रहण करने वाली देवमाता अदिति की भी स्तुति करते हैं ।९। हे गौओ ! तुम तृण-युक्त-भूभाग पर घास खाती हुई घूम । यज्ञ में तुम दूध प्रदान करती हो । तुम्हारा दूध सोमरस के गुणों के समान हितकारी है । हम अदिति की स्तुति करते हैं ।१०। इन्द्र को परिपूर्ण करते हैं । वे सोम-याग करने वाले यजमान के रक्षक हैं । वे श्रेष्ठ स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं । उनके पान के निमित्त सोमरस से भरे द्रोण-कलश उपस्थित हैं सबके ग्रहण करने वाली अदिति की हम स्तुति करते हैं ।११। हे इन्द्र ! तुम अद्भुत तेज वाले हो । तुम्हारे तेज से ही सब कर्म सम्पन्न होते हैं । हम तुम्हारे तेज की स्तुति करते हैं । तुम्हारे महान् कर्मों की स्तुति करने वालों की इच्छा पूर्ण करते हैं । दुवस्यु ऋषि गौ की रस्सी का अगला भाग तुम्हारी कृपा से ही खींचते हैं ।१२। (१७)

सूक्त १०१

(ऋषि–वृधः सौम्यः । देवता–विश्वेदेवा ऋत्विजो वा । छन्द–त्रिष्टुप् गायत्री, बृहती, जगती)

उदबुध्यध्वं समनसः सखायः समाग्निमिन्ध्वं बहवः सनीलाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥१
मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वं मायुधार कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्रणयता सखायः ॥२
युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥३
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥४
निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥५
इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम् ।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥६॥१७

हे मित्र भूत ऋत्विजो ! तुम एक मन वाले होकर सावधान हो जाओ । तुम सब एक स्थान पर बैठकर अग्नि को प्रज्वलित करो । मैं दधिक्रा, उषा, अग्नि और इन्द्र की रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूं ।१। हे सखाओ ! हर्षप्रदायक स्तुतियाँ करो फिर कृषि—कर्म को बढ़ाओ । हल दण्डरूपी नौका ही पार करने वाली है, इसे ग्रहण कर हल के फल को तीक्ष्ण करो । फिर श्रेष्ठ यज्ञ का आरम्भ करो ।२। हे ऋत्विजो ! हल को जोतो । गौओं को उठाओ । इस खेत में बीज वपन करो । हमारी स्तुतियों के द्वारा प्रचुर परिमाण में अन्न उत्पन्न हो । फिर पके हुए धान्य के खेत पर हँसुए गिरने लगें ।३। हलों को जोतते हैं । कृषि कर्म में कुशल व्यक्ति जुओं को पृथक् करते हैं । उस समय मेधावी जन उत्तम स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ।४। पशुओं के जल पीने का स्थान बनाओ । रस्सी को प्रस्तुत करो । हम गम्भीर, स्वच्छ जलाशय से जल लेकर खेत को सींचते हैं ।५। पशुओं का जल पीने का स्थान बन गया । गम्भीर जल वाले गढ़े में श्रेष्ठ चर्मरज्जु डालकर जल खींचा जाता है । अतः इससे जल लेकर अपने खेत को सींचो ।६।　　　(१०)

प्रीणीताश्वान्हित जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥७
ब्रजं कृणुध्वं सहि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥८
आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मिह गोः ॥९
आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रतिवह्निं युनक्त ॥१०
उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥११
कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥१२।१६

बैलों को भोजन देकर तृप्त करो । खेत में कट कर एकत्र हुए धान्य को ग्रहण करो । फिर वहनशील रथ के द्वारा धान्य को ढोओ । पशुओं के जल से सम्पन्न जलाधार में एक द्रोण जल होगा । इसमें पाषाण निर्मित्त चक्र होगा । मनुष्यों के लिए कूपवन जलाधार बनाया गया है । इसे जल से भर दो ।७। गोष्ठ बनाओ । इसमें जाकर मनुष्य भी जल पी सकते हैं । अनेक मोटे कवच सीं डालो । लोहे के दृढ़ पात्र उपस्थित करो और चमस को ऐसा बनाओ जिससे जल की बूँद भी न गिरे ।८। हे देवगण ! मैं तुम्हारे ध्यान यज्ञ की ओर खींचता हूँ क्योंकि यज्ञ ही तुम्हें हव्य भाग देता है । गौऐं जैसे तृण भक्षण कर सहस्र धार वाला दुग्ध प्रदान करते हैं, वैसे ही तुम्हारा ध्यान हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ।९। काष्ठ पात्र में अवस्थित सोम रस को सींचो । पाषाण के बने आयुधों से पात्र बनाओ । दश उँगलियों में पात्र को पकड़ो । रथ के दोनों धुरों में वहनशील पशुओं को योजित करो ।१०। रथ के दोनों धुरों

में शब्द उत्पन्न करता हुआ पशु रथ का वहन करता है । काष्ठ शकट को काष्ठ निर्मित आधार पर टिकाओ ।११। हे कर्मवान् पुरुषो ! इन्द्र सुख प्रदान करने वाले हैं । इन्हें मङ्गलमय सोम समर्पित करो । इन्हें अन्न दान के लिए प्रसन्न करो । यह अदिति के पुत्र हैं । तुम सबको विपत्तियों का भय है । अतः रक्षा के निमित्त उनका आह्वान करो, जिससे वे यहाँ आकर सोम पीवें ।१२। (१९)

सूक्त १०२

(ऋषि—मुद्गलो भार्म्यश्वः । देवता—द्रुघण इन्द्रो वा ।

छन्द – बृहती, त्रिष्टुप्)

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवत धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनुर्भक्षेषु नोऽव ।।१
उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ।।२
अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ।।३
उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ।।४
न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ।।५
ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्यद्रवतः सहानसऋच्छन्तिष्मानिष्पदोमुद्गलानीम् ।।६।२०

संग्राम भूमि में जब तुम्हारा रथ अरक्षित हो, उस समय दुर्धर्ष इन्द्र उसके रक्षक हों । हे इन्द्र ! तुम इस रणक्षेत्र में धन लाभ के समय हमारे रक्षक होना ।१। जब रथारोहण करती हुई मुद्गल की पत्नी ने सहस्र संख्यक गौओं पर विजय प्राप्त की, तब वायु ने उनके वस्त्रों को उठाया ।

मुद्गल पत्नी ने इन्द्र सेना में रथी होकर शत्रुओं से संग्राम किया और उनके पास से उनके गौ धन को छीन कर ले आई ।१। हे इन्द्र ! जो हमारी हिंसा करना चाहते हैं अथवा हमारा अनिष्ट चिन्तन करते हैं, उनके ऊपर अपने वज्र को गिराओ, शत्रु किसी भी जाति का हो, उसका अपने दुर्धर्ष बल के द्वारा संहार कर डालो ।२। इस बैल ने जल पीकर तृप्ति को प्राप्त किया । इसने अपने सींग के द्वारा मिट्टी का ढेर खोद डाला और तब वह शत्रु पर झपट पड़ा । वह भोजन की कामना करता हुआ अपने सींग को तीक्ष्ण कर इधर आ रहा है ।४। मनुष्यों ने इस वृषभ को चैतन्य किया । उसे संग्राम भूमि में ले जाकर खड़ा किया । इसके द्वारा ही मुद्गल ने सहस्र संख्यक श्रेष्ठ गौओं को वश में कर लिया ।५। शत्रु को मारने के लिए बैल को जोता गया । उसकी रस्सी को पकड़ने वाली मुद्गल-पत्नी ने गर्जन किया । वह वृषभ भी शकट को लेकर संग्राम भूमि की ओर दौड़ पड़ा । सभी सेना मुद्गल की पत्नी-की अनुगामिनी हुई ।६।

(२०)

उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वानपायुनग्वंसगमन्त शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥७
शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।
नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ॥८
इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥९
आरे अघा को न्वित्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥१०
परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥११
त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा ॥१२॥२१

कुशल मुद्गल ने रथ के पहियों को चारों ओर से बाँधा । फिर उन्होंने रथ में बैल को योजित किया । उस बैल की इन्द्र ने रक्षा की तब वह बैल द्रुतगति से युद्ध मार्ग पर चल पड़ा ।७। जब रथ के अवयव चर्म रज्जु द्वारा बँध गये तब वह भले प्रकार गमन करने लगा । उसने अनेकों का उपकार किया । वह अनेकों गौओं को लेकर घर लौटा ।८। रणभूमि में गिरे इस मुद्गल ने बैल का साथ दिया । उस बैल के द्वारा ही मुद्गल ने हजारों गौओं को जीतकर अपने अधीन कर लिया ।९। कहीं दूर या समीप के देश में भी किसी ने यह देखा है कि जो रथ में जोता जाता है, वही उसका संचालन करने के लिए रथ पर बैठाया जाता है । यह तृण और जल का भक्षण नहीं कर सका है, फिर भी रथ-धुरा के बोझ को वहन कर रहा है । इसी के द्वारा स्वामी को विजय प्राप्त हुई है ।१०। पति-विहीन नारी के समान ही मुद्गल की पत्नी ने अपनी शक्ति के प्रयोग द्वारा पति के लिए धन पाया । हम ऐसे सारथि की अनुकूलता से विजय पावें और अन्न-धन आदि भी प्राप्त कर सकें ।११। हे इन्द्र ! तुम सम्पूर्ण जगत् के चक्षु हो । जिनके नेत्र हैं, उनके नेत्र भी तुम्हारे द्वारा ही ज्योति वाले हैं । तुम अपने दोनों अश्वों को रस्सी से बांध कर चलते हुए जल-वृष्टि करते और धन भी देते हो ।१२। (१२)

सूक्त १०३

(ऋषि—अप्रतिरथ ऐन्द्रः । देवता—इन्द्रः, बृहस्पतिः, अप्वा, इन्द्रो मरुतो वा । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरःशतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१
सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रां अपवाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेना प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥५
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥६।२२

शत्रुओं के लिए तीक्ष्ण इन्द्र साँड़ के समान विकराल, मनुष्यों को सशंक करने वाले और वैरियों के नाशक हैं। वे सबको देखते और शत्रुओं को विभिन्न त्रास देते हैं। वे अपनी महिमा से ही बड़ी-बड़ी सेनाओं को जीत लेते हैं ।१। हे वीरो ! तुम इन्द्र की सहायता से संग्राम को जीतो। विपक्षियों को हरा कर भगाओ । इन्द्र सब पर दृष्टि रखते और शत्रुओं को रुलाते हैं। वे संग्राम में सदा विजय प्राप्त करते है। वे बाण-धारी और दुर्धर्ष हैं। उन्हें उनके स्थान से कोई नहीं हटा सकता। वे जल वृष्टि करने वाले हैं ।२। उनके साथ बाण और तूणीर धारण करने वाले वीर रहते हैं। वे संग्राम भूमि में भयङ्कर शत्रुओं को भी जीत लेते और सबको वश में कर लेते हैं। उनसे सामना करने वाला सदा हारता है। उनका धनुष भयोत्पादक है। वे उसी से शर सन्धान कर शत्रुओं को पतित करते हैं। वे सोमपायी हैं ।३। हे बृहस्पति ! राक्षसों को मारो और शत्रुओं को पीड़ित करो। तुम शत्रुओं की सेनाओं को नष्ट करते हुए रथारूढ़ होकर आगमन करो। तुम हमारे रथों की रक्षा करो और शत्रुओं को जीतो ।४। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के बल को जानने वाले हो। तुम प्रचण्ड बली, तेजस्वी, विकराल कर्मा, प्राचीनकालीन और शत्रु पक्ष पर विजय पाने वाले हो । तुम बल के पुत्र रूप हो। गौओं को प्राप्त करने के लिए जय-लाभ कराने वाले रथ पर आरूढ़ होकर शत्रुओं की ओर दौड़ो ।५। मेघों को विदीर्ण करने वाले इन्द्र ही गौऐं प्राप्त कराते हैं।

हे वीरो ! इनके नेतृत्व में आगे बढ़ो और अपने वीर कर्म का प्रदर्शन करो । हे मित्रो ! इन्हें अनुकूल बनाकर अपना पराक्रम प्रकट करो ।६।

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृत्तनाषालयुध्या स्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ।।७
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानाम भभ जतीनां ञ्जयन्तीनां मरुता यन्त्वग्रम् ।।८
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शध उग्रम्
महामनसांभुवनच्यवानां घोषो देवानां जयदामुदस्थात् ।।९
उद्धषय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृ त्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ।।१०
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माक या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माक वीरा उत्तरे भावत्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ।।११
अमीषां चित प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शौकंरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ।।१२
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्सं यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।।१३।२३

शतकर्मा इन्द्र मेघों की तरफ दौड़ते हैं । वे अपने स्थान से कभी नहीं गिरते । वे अपने हाथों में वज्र ग्रहण कर शत्रु सेना पर विजय पाते हैं । उन इन्द्र से संग्राम करने का साहस किसी में नहीं होता । वे इन्द्र रणक्षेत्र में हमारी सेनाओं की रक्षा करने वाले हों ।७। जिन सेनाओं की अध्यक्षता इन्द्र कर रहे हैं, उन सेनाओं के दक्षिण ओर बृहस्पति रहें । यज्ञ में उपयुक्त सोम उनके साथी हों । शत्रुओं को डालने वाली विजय-वाहिनी देव सेनाओं के आगे विकरालकर्मा मरुद्गण चलें ।८। इन्द्र ! जल वर्षक हैं । इनके साथ ही वरुण, आदित्यगण और मरुद्गण भी विकराल कर्म वाले हैं । जब सब देवता लोक को कम्पायमान कर उसे जीतने

लगे तब सर्वत्र घोर कोलाहल होने लगा ।९। हे इन्द्र ! अपने आयुधों को उठाओ । हमारे वीरों के मनों को उत्साह से पूर्ण कर दो, हमारे अश्व वेग वाले हों । विजयशील रथ से जब ध्वनि प्रकट हो ।१०। जब हम संग्राम के लिए पताका फहराते हैं, उस समय इन्द्र हमारा पक्ष लेते हैं । हमारे बाण हमको विजयी करें । हमारे वीर विकराल कर्म वाले हैं । हे देवगण ! संग्राम में हमारे रक्षक होओ ।११। हे पाप के अभिमानी देवताओ ! तुम यहाँ से चले जाओ । उन शत्रुओं के पास जाकर उन्हीं के हृदय को लुभाओ । उनके शरीर में वास करो और उन्हें शोक के द्वारा दग्ध करो । वे घोर अन्धकार से भरी हुई रात्रि को प्राप्त हों ।१२। हे मनुष्यो ! आगे बढ़ो । तुम विजय प्राप्त करो । तुम जैसे विकराल वीर हो, वैसे ही विकरालकर्मा तुम्हारी भुजाएँ हों । इन्द्र तुम्हारी रक्षा करें ।१३। (२२)

सूक्त १०४

(ऋषि—रेणुः । देवता—इन्द्रः इन्द्रसोमौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम् ।
तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधिन्वरः इन्द्र पिबा सुतस्य ।।१
अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ।।२
प्रोगां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिहि मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ।।३
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ।।४
प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ।।५।२४

हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा बुलाये जा चुके हो । हमारे यहाँ यह सोम संस्कृत हुआ है । तुम अपने दोनों अश्वों के द्वारा यहाँ शीघ्र ही

आगमन करो । मुख्य स्तोताओं ने स्तुति करते हुए यह सोम प्रस्तुत किया है, तुम इसे पियो ।१। हे इन्द्र ! तुम अपने हर्यश्वों के अधिपति हो । जिस सोम को जल में मिश्रित करके यह यज्ञकर्त्ता यहाँ लाये हैं, तुम उसे पीकर अपने जठर को परिपूर्ण करो । तुम्हारे निमित्त जिस मधुर रस को पाषाणों ने सींचा है, उनके द्वारा हर्ष प्राप्त करते हुए अपनी श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होओ ।२। हे इन्द्र ! तुम हर्यस्व स्वामी हो । हे वर्षक इन्द्र ! यह सोम निष्पन्न हुआ है । यह में तुम्हारे आगमन को जानकर हमने तुम्हारे लिए यह सोम रखा है । तुम उत्कृष्ट स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न होओ । यह स्तोत्र तुम्हारी विविध प्रकार वृद्धि करने वाला हो ।३। हे इन्द्र ! तुम सामर्थ्यवान् हो । यह उशिज् वंशज तुम्हारे यज्ञ में प्रवृत्त हुए हैं । जो तुम्हारी शरण में गये उन्होंने तुम्हारी कृपा से अन्न प्राप्त किया और अपत्यवान् होकर यजमान के दिये हुए गृह में निवास करने लगे । वे सब सुखी हुए और सदा तुम्हारी स्तुति करने वाले हुए ।४। हे हर्यश्व स्वामी इन्द्र ! तुम्हारा यश अत्यन्त श्रेष्ठ है । तुम्हारा धन अद्भुत है और तुतुम हर प्रकार से तेजस्वी हो । तुमने स्तोता को जो धन दिया है उससे सुखी होकर तुम्हारी स्तुति करते हुए स्तोता ने अपनी और अपने मित्रों की रक्षा की है ।।५।। [४]

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वां अस्यध्वरस्य प्रकेतः ।।६
सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितु पनन्तः ।।७
सप्तापो दवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ।।८
अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः ।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ।।९
वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।

आर्दयद्वृत्रमकुणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना इभिष्टः । १०।२५
शुनं हुवेम मधवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतम वाजसातौ ।
शृण्वन्मुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणिसञ्जितंधनानाम् ।।११।२५

हे हर्यश्ववान् इन्द्र ! जो सोम तुम्हारे लिए निष्पन्न हुआ है, तुम उसका पान करके अपने दोनों अश्वों के सहित यज्ञों में गमन करते हो। हे इन्द्र ! यह यज्ञ तुम्हें ही प्राप्त होते हैं। तुम यज्ञ को देखकर धन देते हो, तुम अत्यन्त शक्ति वाले हो ।६। शत्रुओं का पराभव करने वाले महान् अन्न वाले, सोम से हर्षित होने वाले इन्द्र की स्तुति करने पर सुख प्राप्त होता है। उन इन्द्र का विरोध कोई नहीं कर सकता। वे स्तोत्रों से अलंकृत होते हैं। नमस्कारों द्वारा उनकी पूजा होती है ।७। हे इन्द्र ! तुमने देवताओं और मनुष्यों के हित के लिये निन्यानवे नदियोंके प्रवाहित होने का मार्ग बनाया। सङ्गा आदि सप्त नदियों के द्वारा तुमने शत्रु के नगरों को नष्ट किया और समुद्र को जल से परिपूर्ण किया ।८। तुम जल लाने के लिए एकाकी ही चले। तुमने जलों के आवरक मेघ को विदीर्ण किया। तुमने अपने वृत्र हनन कार्य के द्वारा सब प्राणियों का पालन किया ।९। इन्द्र की स्तुति करने पर कल्याण होता है, क्योंकि वे अत्यन्त बली और कर्मवान् हैं। श्रेष्ठ स्तोत्र रचे जाकर उन्हें पूजा जाता है। उन्होंने शत्रुओं को हराकर वृत्र का हनन किया। इससे विश्व का पोषण हुआ ।१०। इन्द्र अपने उपासक की रक्षा के लिये विकराल रूप बनाकर संग्राम में पशुओं का बध करते और धन प्राप्त करते हैं। वे ऐश्वर्यवान् और स्थूल देह वाले हैं। संग्राम भूमि में जब धन वितरित किया जायगा तब इन्द्र की अध्यक्षता में ही यह कार्य सम्पन्न होगा। हम उन्हीं इन्द्र का आह्वान करते हैं ।।११।। [२५]

सूक्त ५०१

(ऋषि—सुमित्रो दुर्मित्रो वा कौत्सः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुत वातप्याय ।१
हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा ।
उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ।।२
आप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्र माणो विभीवान् ।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ।।३
सचयोरिन्द्रश्चकृष आँ उपानसः सपर्यन् ।
नदयोर्विव्रततो शूरः शूर इन्द्र ।।४
अधि यस्तस्थौ केववन्ता व्यचस्वन्ता न युष्ट्चे ।
वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ।।५।२६

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों की कामना करते हो, यह स्तुति तुम्हारी ही है । यह मधुर सोम रस तुम्हारे लिये अर्पित है । हम वृष्टि कामना वाले मनुष्यों के खेत को तुम जल से परिपूर्ण करोगे ।१। अनेककर्मा इन्द्र के दोनों अश्व चतुर हैं । उनके केश उज्वल हैं । उन अश्वों के स्वामी इन्द्र धनदान के निमित्त यहाँ आगमन करें ।२। बलवान् इन्द्र ने जब अपने अश्वों को पथ में योजित किया तब सभी प्राणी सुखी हुए और उनके पाप फल नष्ट हो गये ।३। इन्द्र ने मनुष्यों की पूजा को स्वीकार कर सब धनों को इकट्ठा किया । फिर उन्होंने अपने विभिन्न कर्म वाले और चलने में शब्द करने वाले अश्वों को चलाया ।४। इन्द्र अपने दोनों अश्वों पर आरूढ़ हुए । उन्होंने यज्ञ में जाकर शरीर की पुष्टि के लिए अपने श्रेष्ठ जबड़ों को कम्पत् कर हव्य प्रस्तुत करने का आदेश दिया ।।५।। (५)

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा ।
ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ।।२
वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीशमो हिरीमान् ।

अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥७
अव नो वृजिना शिशीह्यृचा वनेमानृचः ।
नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ॥८
ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनी भूद्यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् ।
सजूर्नाव स्वयशसं सचायोः ॥९
श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विरेपाः ।
यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥१०
शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥११।२७

इन्द्र सौन्दर्य सम्पन्न हैं उनकी शक्ति महान् है। वे मरुद्गण के सहित यजमान के कर्म की प्रशंसा करते हैं। ऋभुओं ने जैसे अपने कर्म द्वारा रथादि की रचना की, वैसे ही इन्द्र ने अनेकों वीर-कर्मों को किया है।६। इन्द्र की दाढ़ी-मूँछ हरे वर्ण की है। उनके अश्व भी हरित वर्ण वाले हैं। उनकी हनु शोभा सम्पन्न है। वे आकाश के समान विस्तारयुक्त है। उन्होंने राक्षसों का नाश करने के लिए अपने हाथों में वज्र ग्रहण किया था।७ हे इन्द्र! हमारे सब पापों को मिटाओ। वेद विमुख पुरुषों को ऋचाओं द्वारा नष्ट करने में हम समर्थ हों। जिस यज्ञ में स्तोत्र नहीं किये जाते, उस यज्ञ के प्रति भी स्तुतियों वाले यज्ञ के समान तुम प्रीति नहीं करते।८। यज्ञ का भार वहन करने वाले ऋत्विजों ने जब यज्ञ कर्म का आरम्भ किया, उस समय हे इन्द्र! तुम यजमान की नौका पर चढ़कर उसे पार लगाओ।९। पयस्विनी गौ तुम्हारा कल्याण करे। जिस दर्वी पात्र से तुम अपने पात्र को मधु से पूर्ण करते हो, वह पात्र पवित्र और मङ्गलकारी हो।१०। हे इन्द्र! सुमित्र ने तुम्हें प्रसन्न करने को सौ स्तोत्रों का उच्चारण किया और दुर्मित्र ने भी तुम्हारी स्तुति की थी। तुमने राक्षसों का वध करते समय कुत्स के पुत्र को बचाया था।११। (२७)

सूक्त १०६

(ऋषि—भूतांशा कश्यपः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप,)

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाये धियो वस्त्रापसेव ।
सध्री चीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तमयेते ॥१
उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥२
साकंयुजा सकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥३
आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्यै ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥४
वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शयरा शतपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा धर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या पुरीषा ॥५॥१

जैसे वस्त्र बुनने वाला वस्त्र को बढ़ाता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र की वृद्धि करते हो । तुम दोनों एक साथ आगमन करते हो । इसका उल्लेख करते हुए यह यजमान तुम्हारी स्तुति करता है । तुमने सूर्य चन्द्र के समान ही खाद्यान्न को तेज से परिपूर्ण किया है ।१। दो बैल जिस प्रकार तृणयुक्त भूमि में तृण-भक्षण करते हुए घूमते हैं, वैसे ही तुम यज्ञ में दान करने वाले पुरुषों के साथ गमन करते हो । रथ में जुते दो अश्वों के समान धन देने के लिए तुम स्तुति करने वाले के पास पहुँचते हो । दो भैंसे जैसे जल पीने के स्थान से दूर नहीं हटते, वैसे ही तुम सोम पीने के स्थान से मत हटाना । तुम तेजस्वी दूत के समान उपासकों के पास जाओ ।२। पक्षी के दोनों पंख जैसे परस्पर मिले रहते हैं, वैसे ही तुम दोनों भी संयुक्त रहते हो । इस यज्ञ में तुम्हारा आगमन दो विचित्र पशुओं के समान हुआ है । तुम सब जगत् निवास करने वाले ऋत्विजों के समान विभिन्न यज्ञों में देवताओं का पूजन करते हो । यज्ञ-सम्पादन अग्नि के

समान तुम अत्यन्त, तेजस्वी हो ।३। माता-पिता का पुत्र के प्रति जो स्नेह होता है, वही स्नेह तुम हम पर करो । तुम अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी होओ । ऐश्वर्यवान् पुरुषों के समान उपकार करने वाले बनो । तुम सूर्य की किरणों के समान प्रकाश दो और उपासकों को कल्याण देने वाले बनो । हमारे इस यज्ञ में कल्याणकारी जन के समान आगमन करो ।४। हे अश्विद्वय ! श्रेष्ठ चाल वाले दो बैलों के समान आगमन करो ।४। हे अश्विद्वय ! श्रेष्ठ चाल वाले दो बैलों के समान तुम श्रेष्ठ एवं दर्शनीय हो । मित्रावरुण के समान तुम श्रेष्ठ एवं दर्शनीय हो । मित्रावरुण के समान तुम सत्यदर्शी हो और दुःख को हटाते हुए स्तुत हो । जैसे दो अश्व पेट भरने पर हृष्ट-पुष्ट होते हैं, वैसे ही तुम हव्य पाकर पुष्ट होते हो । तुम आलोकमय आकाश के वासी हो । तुम्हारे शारीरिक अंग सुगठित और दृढ़ हैं ।।५।। [५]

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोसेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ।।६

पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत्खरमज्रा खरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रीणाम् ।।७

घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चंद्रनिर्णिङ् मनऋङ्गामनन्या न जग्मी ।।८

बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्माराथोऽशेब नो भजतं चित्रमप्नः ।।९

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सापघेवगवि नीचीनबारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ।।१०

ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधुगोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ।।११।२

हाथी पर शासन करने वाले अंकुश के समान तुम भी सब जीवों के लिए अंकुश रूप हो । अधिकारी के समान शत्रुओं के नाशक और यजमानों के पालनकर्त्ता हो । तुम दोष रहित,लोक विजयी एवं बलवान् हो । तुम मेरी मरणधर्मा देह के गए हुए यौवन को पुनः प्राप्त कराओ ।६। हे अश्विनीकुमारो ! तुम अत्यन्त बल वाले हो जैसे लम्बे पैर वाला मनुष्य जल से शीघ्र पार होता है, वैसे ही तुम मनुष्य के शरीर को संकट से दूर करो । तुमने ऋभुओं के समान अत्यन्त श्रेष्ठ रथ प्राप्त किया है । वह रथ द्रुतगामी तथा शत्रुओं के धन को जीतकर लाने वाला है ।७। हे अश्द्विय ! जैसे पहलवान अपने देह में पुष्टि के घृत सींचते हैं, वैसे ही तुम अपनी देह को घृत से पुष्ट करो । तुम पक्षी के समान मनोहर और सब स्थानों पर विहार करने वाले हो । तुम शत्रुओं का संहार करते और धनों की रक्षा करते हो तुम इच्छा मात्र से ही अलंकृत होते और स्तुतियों की कामना करते हुए यज्ञ में आगमन करते हो ।८। लम्बे पाँव वाला व्यक्ति पार लगाता हुआ जैसे शरण देता है वैसे ही तुम हमें शरण दो । स्तुति करने वाले के स्तोत्र को तुम ध्यान से श्रवण करते हो । तुम यज्ञ के दो अंगों के समान हमारे इस अद्भुत यज्ञ में आगमन करो ।६। जैसे दो मधु मक्खियां गूँजती हुई, छत्ते में मधु को एकत्र करती हैं, वैसे ही तुम गौओं के थनों में मधु के समान दूध को भर दो । जैसे श्रम से जीविकोपार्जन करने वाला पुरुष श्रम करके श्रमविन्दुओं में भीग जाता है, वैसे ही तुम पसीने से भीगकर जल सींचो । जैसे गौ तृण-सम्पन्न भूमि में जाकर अपना पेट भरती है, वैसे ही तुम भी यज्ञ में हव्य रूप अन्न प्राप्त कर अपने उदर को भरते हो ।१०। हम स्तुतियों को बढ़ाते और हविरत्न को विभाजित करते हैं । तुम रथ पर आरूढ़ होकर हमारे यज्ञ स्थान में पधारो । गौ के स्तन में अत्यन्त मधुर अन्न के समान दूध भरा है । भूतांश ऋषि ने स्तोत्र का उच्चारण कर अश्विनीकुमारों की कामनापूर्ण की है ।११। [२]

———

सूक्त १०७

(ऋषि—दिव्य दक्षिणा वा प्रजापत्या । देवता—दक्षिणा तद्दातारो वा । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ।।१
उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ।।२
दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति ।।३
शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सङ्गमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ।।४
दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ।।५।३

यजमानों का पालन करने के लिये ही सूर्यात्मक इन्द्र का महान् तेज उत्पन्न हुआ । तब सभी प्राणी अन्धकार से मुक्त हुए । पितरों द्वारा प्रदत्त ज्योति प्रकट हुई और दक्षिणा देने का मार्ग खुल गया ।१। दक्षिणा देने वाले यजमान स्वर्ग के श्रेष्ठ स्थान पर वास करते हैं । अश्व-दान करने वाले पुरुष सूर्य में मिल जाते हैं । वस्त्र देने वाले सोम के पास गमन करते हैं और सुवर्ण देने वाले अमृतत्व को प्राप्त होते हैं ।२। दक्षिणा पुण्य कर्मों को सम्पूर्ण करने वाली है । देवताओं के अनुष्ठान का यह प्रमुख अङ्ग है । मिथ्याचरण वाले पुरुषों के कार्यों को देवगण पूर्ण नहीं करते । निन्दा भयभीत होने वाले और दक्षिणा-दाता यजमानों का कर्म ही पूर्णता को प्राप्त होता है ।३। सैकड़ों प्रकार से प्रवाहित होने वाले वायु के लिये, सूर्य द्वारा मनुष्यों को उपकार करने वाले अन्य

देवताओं के लिए यज्ञ में हविरत्न प्रदान किया जाता है । जो दानशील व्यक्ति देवताओं को तृप्त करते हैं, दक्षिणा द्वारा उनका अभीष्ट सिद्ध होता है । दक्षिणा को ग्रहण करने में समर्थ सात पुरोहित इस यज्ञ स्थान में उपस्थित हैं ।४। दानशील व्यक्ति ही गाँव में प्रमुख व्यक्ति होता है । उसे प्रत्येक शुभ कर्म में प्रथम आमन्त्रित किया जाता है । जो लोग सर्व प्रथम दक्षिणा आदि प्रदान करते हैं उन्हें मैं राजा के समान श्रद्धा के योग्य समझता हूं ।५। (३)

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ।।६
दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ।।७
न भोजा मम्रु र्नन्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ।।८
भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ।।९
भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ।।१०
भोजमश्वाः सुष्ठु वाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ।।११।४

जो दक्षिणा द्वारा पुरोहित को सर्व प्रथम सन्तुष्ट करते हैं, वे ऋषि ब्रह्मा कहे जाने योग्य हैं । वही सामगाता, स्तोता माने जाते हैं और प्रमुख आसन उन्हीं को दिया जाता है । क्योंकि वे अग्नि के तीनों रूपों के भी जानने वाले हैं ।६। दक्षिणा के रूप में मन को प्रसन्न करने वाला सुवर्ण, गौ, अश्व और आत्मा-रूप आहार भी प्राप्त किया जा सकता है । देह की रक्षा करने वाले कवच के समान ही मेधावीजन

दक्षिणा को भी रक्षा करने वाली मानते हैं ।७। दानशील पुरुष देवत्व प्राप्त करते हैं । वे अकाल मृत्यु को प्राप्त नहीं होते । वे दुःख, क्लेश से बचते हैं तथा दारिद्रय उनके पास नहीं आता । उनके द्वारा दी गई दक्षिणा उन्हें सभी पार्थिव या दिव्य पदार्थ प्रदान करती है ।८। दानदाता व्यक्तियों को सर्व प्रथम घृत-दुग्ध प्रदात्री गौ मिलती है । फिर वे सुन्दरी, सुशीला, नवोढ़ा पत्नी को प्राप्त करते हैं । वे हर्ष प्राप्त करते और वही आक्रमणकारी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं ।९। दानदाता पुरुष द्रुतगामी और अलंकृत अश्व तथा सुन्दरी नारी को प्राप्त करता है । पुष्करणी के समान स्वच्छ और देव मन्दिर के समान रमणीय घर भी उसे मिलता है ।१०। दानदाता पुरुष को द्रुतगामी अश्व वहन करते हैं । श्रेष्ठ रथ में उसके अश्व योजित किये जाते हैं । युद्ध-काल उपस्थित होने पर देवगण रक्षा करते हैं तब रणक्षेत्र में दाता शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ।११। (४)

सूक्त १०८

(ऋषि—पणयोऽसुराः, सरमा देवशुनी । देवता—सरमा)

पणयः । छन्द—त्रिष्टुप्

किमिच्छन्ती सरमा प्र प्र दमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथ रसाया अतरः पयाँसि ॥१
इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ति पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदा भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२
कीदृङ् इन्द्रःसरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३
नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४
इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्न्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥५

हे सरमा ! तुम यहाँ किस कार्य से आई हो ? यह स्थान तो बहुत दूर है । यहाँ आने वाला पीछे की ओर दृष्टि नहीं फेर सकता । तुम यहाँ कितनी रात्रियों में आ सकी हो ? तुम नदी के गहन जल को कैसे पार कर सकी होगी ? हमारे पास की किस वस्तु की तुम इच्छा करती हो ।१। हे पणियो ! मैं इन्द्र की दूती के रूप में तुम्हारे पास आई हूँ । तुम्हारे यहाँ जो गोधन एकत्र है, मैं उसे लेना चाहती हूं । मार्ग में, मैं जल से डरी तो थी, पर मैं जल के द्वारा ही रक्षित होकर उसे पार कर सकी ।२। हे सरमा ! तुम जिन इन्द्र की दूती के रूप में हमारे पास आई हो, वे इन्द्र कैसे हैं ? उनकी सेना किस प्रकार की है ? उनकी शक्ति कैसी है ? वे इन्द्र हमारे पास आगमन करें हम उनसे मित्रता करने को तैयार हैं। वे हमारी गौओं को ले लें ।३। हे पणियो ! मैं जिन इन्द्र की दूती होकर यहाँ आई हूं, वे इन्द्र अजेय हैं । वे सबको हराने में समथ हैं । अत्यन्त जल वाली नदियाँ भी उनका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकतीं। वे तुम्हें मार कर धरांशायी करने में सामर्थ्यवान् हैं ।३। हे सरमा ! तुम स्वर्ग की सीमा से चल कर इतनी दूर यहां आई हो, इसलिए हम तुम्हें. इनमें से जिन-जिन गौओं को तुम लेने की इच्छा करो, वही देदें । वैसे बिना युद्ध के कौन गौऐ दे सकता था । हम भी विभिन्न तीक्ष्ण आयुधों से सम्पन्न हैं ।५। (५)

असेन्या व पणयो वचाँस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिव उभया मृलात् ॥६
अयं निधीः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्व सुभिन्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पण्यो ये मुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥७
एह गगन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एत भूर्व वि भजन्त गानामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥८
एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥९
नहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरं गिरसश्च घोराः ।

गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥१०
दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनती ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूलहाः सोमोग्रावण ऋषयश्च विमः ॥११॥६

हे पणियो ! तुम्हारी उक्ति वीरों के मुख से निकलने योग्य नहीं है । तुम्हारे मन में पाप बसा है । कहीं तुम्हारे देह इन्द्र के बाणों से बिंध न जांय ? तुम्हारे इस मार्ग पर कहीं देवताओं द्वारा आक्रमण न हो जाय । तुम गौऐं न दोगे तो विपत्तियाँ उपस्थित होंगी और बृहस्पति तुम्हें दुःख में डाल देंगे ।६। हे सरमा ! हम पर्वतों द्वारा सुरक्षित हैं । हम गौओं, अश्वों तथा अन्य विविध ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं । रक्षा कार्य में नियुक्त हमारे वीर इस स्थान की भले प्रकार रक्षा करते हैं । तुमने हमारे इस गौओं से युक्त स्थान में निरर्थक ही आगमन किया है ।७। आंगिरस अयास्य ऋषि और नवगुण सोम की शक्ति से सम्पन्न होकर यहाँ आगमन करेंगे । वे तुम्हारी सभी गौओं को ले जाँयगे । उस समय तुम्हारा अहङ्कार नष्ट हो जांयगा ।८। हे सरमा ! भयभीत देवताओं द्वारा प्रेरित होकर तुम यहाँ आई हो तुम्हें हम बहिन के समान मानते हैं और तुम्हें हम गोधन रूप सम्पत्ति का भाग प्रदान करते हैं । तुम अब यहाँ लौटकर न जाना ।९। हे पणियो ! मैं भाई-बहिन की गाथा को नहीं जानती । इन्द्र और आंगिरस यह भले प्रकार जानते हैं कि उन्होंने तुम्हारी गौओं को प्राप्त करने के लिए रक्षित करके यहाँ भेजा है । मैं उन्हीं की सुरक्षा में यहाँ आ सकी हूँ । अतः तुम अब यहाँ से कहीं दूर चले जाओ ।१०। हे पणियो ! यहाँ से कहीं दूर चले जाओ कष्ट पाने वाली गौऐं इस पर्वत से निकल कर धर्म के आश्रय को प्राप्त हों । सोम का अभिषव करने वाले पाषाण, ऋषिगण, सोम; बृहस्पति तथा अन्य सब विद्वान् इन छिपी हुई गौओं के सम्बन्ध में भले प्रकार जान गये हैं ।११।

(६)

सूक्त १०६

(ऋषि--जुहूर्ब्रह्मनाभा उर्ध्वनाभा वा ब्राह्मः । देवता--विश्वेदेवाः । छन्द-अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४
ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥६
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥७ ७

जब बृहस्पति ने अपनी पत्नी जुहू को छोड़ दिया तब उन्होंने ब्रह्म-किल्विष पाया । उस समय द्रुतवेग वायु, प्रदीप्त, अग्नि, तेजस्वी सूर्य, सुखकारी सोम, जल के अधिष्ठाता वरुण और सत्यरूप प्रजापति की सन्तानों ने उन्हें प्रायश्चित कराया । १ । राजा सोम ने उज्ज्वल चरित्र वाली नारी सर्व प्रथम बृहस्पति को दी । मित्रावरुण ने इसमें सहमति प्रकट की और यज्ञ को सम्पन्न करने वाले अग्नि उसे हाथ पकड़ कर ले गये ।२। यह पत्नी विधिवत् विवाहित है, सबने यही कहा । इनकी खोज में जो दूत गया था, उस पर इन्हें आशक्ति नहीं हुई । बलवान्

राजा का राज्य जैसे रक्षित होता है, उसी प्रकार इनका सतीत्व भी सुरक्षित रहा । ३ । तपस्वी सप्तर्षियों ने और सनातन देवताओं ने इनके सम्बन्ध में कहा कि यह अत्यन्त पवित्र चरित्र वाली है । उन्होंने वृहस्पति को पति बनाया है । तप के प्रभाव से निम्न-स्तर वाला मनुष्य भी उच्च स्थान में बैठ सकता है । ४ । बिना स्त्री के वृहस्पति ने ब्रह्मचर्य पालन किया । वे सब देवताओं में मिलकर उन्हीं के अवयवरूप हो गये । जैसे उन्होंने सोम की पत्नी को प्राप्त किया था, इसी प्रकार उन्होंने जुहू नाम की पत्नी को भी पाया । ५ । देवताओं ने भी शुद्ध आचरण की शपथ के सहित उनकी पत्नी उन्हें दी । ६ । देवताओं ने उनकी पत्नी को शुद्ध चरित्र वाली और निष्पाप बताया । फिर उन्होंने सर्वश्रेष्ठ पार्थिव सम्पत्ति को बांटकर सुखपूर्वक निवास किया । ७ ।

सूक्त ९८

(ऋषि—जमदग्नी रामो वा । देवता—आप्रियः । छन्द—त्रिष्टुप्)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्व दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१
तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवता च कृणुह्यध्वरं नः ॥२
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥३
प्राचीन बर्हि प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्राप्रणाः ॥५।८

हे मेधावी अग्ने ! तुम मनुष्यों के घर में प्रवृद्ध होकर सब देवताओं का पूजन करो । तुम्हारा मित्र उपासक तुम्हारा यज्ञ करता है, यह जान कर सब देवताओं को यहाँ लाओ । तुम श्रेष्ठ बुद्धि वाले और दौत्यकर्म में

चतुर हो । १ । हे अग्ने ! यज्ञ के साधनरूप जो पदार्थ हैं, उन्हें मधु-युक्त करके अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं से आस्वादन करो । श्रेष्ठ भावना के सहित हमारी स्तुति और यज्ञ को समृद्ध करो । हमारे यज्ञ को देवताओं के लिए ग्रहणाय करो । २ । हे अग्ने ! तुम स्तुत्य, नमस्कार योग्य और देवताओं का आह्वान करने वाले हो । हे देवहोता महान्देव ! तुम वसुगण के सहित आगमन करो । तुम्हारे समान यज्ञकर्त्ता अन्य कोई नहीं है, इसलिए हम तुम्हें प्रेरित करते हैं । तुम समस्त देवताओं के निमित्त यज्ञ करो । ३ । प्रारम्भ में कुश विस्तृत कर वेदी को आच्छादित किया जाता है । उनके लिए श्रेष्ठ कुश को विस्तृत करते हैं । उस कुश पर सब देवताओं सहित अदिति सुखपूर्वक विराजमान होते हैं । ४ । सुन्दर वेशभूषा से सज्जित हुई नारियां जैसे पति के समीप जातीं हैं, वैसे ही इन सब द्वारों की अभिमानिनो देवियाँ विस्तृत हों । हे द्वार देवियों!] तुम इस प्रकार खुल जाओ जिससे देवगण उसमें सरलता पूर्वक प्रविष्ट हो सकें । ५ ।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषसानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारु प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७
आ नो यज्ञं भारती तुयमेत्विला मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥८
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९
उपावसृज त्मन्या समञ्जदेवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुःप्रदिश्यृतस्यवाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥९

रात्रि में निद्रा का जो सुख है, उसे रात्रि और उषा प्रकट करें। वे यज्ञ-भाग पाने में समर्थ हैं। अतः परस्पर युक्त होकर विराजें। वे दोनों दिव्य लोक में निवास करने वाली नारी के समान शोभावती और तेज धारण करने वाली हों। ६। देवताओं द्वारा नियुक्त दो होता ही श्रेष्ठ स्तोत्र उच्चारित करते हैं। वही यज्ञ-कार्य का सम्पादन करते हैं। वहीं ऋत्विजों को कर्म की प्रेरणा देते हैं। वे प्रकाश को प्रकट करने वाले और कर्म में चतुर हैं। ७। भारती हमारे यज्ञ में शीघ्र आगमन करें। इला भी इस यज्ञ को जानकर यहाँ आवें। यह दोनों और तीसरी सरस्वती अद्भुत कर्म वाली है। यह तीनों देवता हमारे अभिमुख श्रेष्ठ आसन पर प्रतिष्ठित हों। ८। देवताओं की मातृ रूपिणी आकाश पृथिवी है। उन दोनों को जिन देवता ने प्रकट किया और सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों की रचना की है, उन त्वष्टादेव का, हे होता! पूजन करो। तुम अन्नवान् एवं मेधावी हो, अतः यज्ञ-कर्म में कोई अन्य तुम्हारी समानता करने में समर्थ नहीं है। ९। हे यूप! देवताओं के लिए यथा समय तुम स्वयं यज्ञीय द्रव्य लाकर अर्पित करो। वनस्पति, शमिता और अग्नि इस मधु-घृत-सम्पन्न यज्ञीय पदार्थ का सेवन करें। १०। अग्नि ने उत्पन्न होते ही यज्ञ की रचना की। वही देवताओं के लिए अग्रगण्य दूत हुए। अग्नि-रूप होता मन्त्र का उच्चारण करें। जो यज्ञीय द्रव्य स्वाहा के साथ प्रदान किया जाता है, उसे देवगण स्वीकार करें। ११।

सूक्त ८६

(ऋषि--अष्टादंष्ट्रो वैरूपाः। देवता—इन्द्रः। छन्द – त्रिष्टुप्)

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषा यथायथा मतयः सन्ति नृणाम्।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः ॥१
ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट्।
उदतिष्ठत्तविषेणा रवेण महान्ति चित्सं विव्याचा रजांसि ॥२
इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ॥३

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्र तामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजांसि दाधार यो स्णं स यताता ॥४
इन्द्रो दिविः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
महींचिद्द्यामातनोत्मूर्येणचास्कम्भचित्कम्भनेनस्कभीयान् ॥५॥१०

हे स्तोताओ ! ज्यों-ज्यों तुम्हारी बुद्धि का विकास हो त्योंही विकसित स्तोत्रों का उच्चारण करो । सत्य कर्म के द्वारा इन्द्र को आहूत करो । वे इन्द्र वीरकर्मा हैं और स्तुतियों को जानकर स्तोताओं पर अनुग्रह करते हैं ।१। जल के आश्रय के भी आश्रय रूप इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी हैं । जैसे अल्प वयस्क गौ का बछड़ा मिलता है, वैसे ही इन्द्र सबसे मिलने वाले हैं । यह इन्द्र कोलाहल करते हुए उत्पन्न होते हैं वे बहुत-से जल का निर्माण करते हैं ।२। इन्द्र इस स्तोत्र को सुनाते हैं । वे विजय प्राप्त करने वाले हैं । उन्होंने सूर्य का पथ निर्मित किया है । उन्होंने सेना को उत्पन्न किया । वे गौओं के अधिपति और स्वर्गलोक के भी स्वामी हैं । उनका विरोध करने में कोई समर्थ नहीं है ।३। अंगिराओं ने जब स्तुति की, तब इन्द्र ने अपने बल से मेघ के आवरण को विदीर्ण किया । उन्होंने सत्य रूप में शक्ति धारण की और अधिक जल की रचना की ।४। एक ओर आकाश-पृथिवी और दूसरी ओर इन्द्र हैं । वे सब सोम-यागों के ज्ञाता हैं । वे दुःखों के नष्ट करने वाले हैं । सूर्य को प्रकाशित कर उन्होंने आकाश को सुशोभित किया है । वे धारण कर्म में कुशल हैं, इसीलिए उन्होंने आकाश को अधर में धारण किया है ।५। (१०)

वज्रेण हि वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥६
सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दत् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पूनर्यं तो नकिरद्धा नु वेद ॥७
दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रु रापः ।

क्व स्विदग्रं क्व बुघ्न आसमापो मध्यं क्व वो नूनमन्त ॥८
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रं जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुचेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥९
सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१०॥११

हे इन्द्र ! तुमने वृत्र का संहार किया । यज्ञ-विमुख वृत्र जब वृद्धि को प्राप्त हो रहा था, तब तुमने अपने पराक्रम से उसकी समस्त माया को दूर कर दिया । फिर हे इन्द्र ! तुम बल से पूर्ण होकर विकराल बन गये थे ।६। जब उषाऐं सूर्य से मिलीं, तब सूर्य की रश्मियों ने विभिन्न रूप धारण किये । फिर जब नक्षत्र को आकाश में देखा, तब मार्ग चलने वाला कोई मनुष्य सूर्य के दर्शन न कर सका ।७। जो जल इन्द्र की आज्ञा से प्रभावित हुआ, यह जल बहुत दूर चला गया । उस जल का मस्तक और अग्रभाग कहाँ है ? हे जल ! तुम्हारा मध्य और अन्त कहां है ।८। हे इन्द्र वृत्रासुर ने जब जल को रोक लिया था, उस समय तुमने जल का उद्धार किया । तभी वह जल वेग से धावित हुआ । इन्द्र ने जब अपनी इच्छा से जल को छोड़ा तब वह जल किसी प्रकार न रुक सका ।९। समस्त जल मिलकर समुद्र की ओर गमन करते हैं । शत्रुओं को क्षीण करने वाले और शत्रु-नगरी को तोड़ने वाले इन्द्र सब जलों के अधिपति हैं । हे इन्द्र ! पृथिवी पर स्थित समस्त यज्ञीय पदार्थ और कल्याणकारी स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करें ॥१०॥ (११)

सूक्त ११२

(ऋषि–नभ, प्रभेदनो वैरूपः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातः सातस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम ॥१

यस्ते रथा मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमतेयाय यहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्द मानः ॥२
हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥३
यस्य त्यत्ते महिमानं मदेस्विमे मही रोदसी माविविक्ताम् ।
तदोक आ हपिभिरन्द्रः युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ॥४
यस्य शश्वत्पपिवाँ इन्द्र शत्रूननानुकृत्या रण्या चकर्थ ।
स ते पुरन्धिं तविषीमियर्ति स ते मदाय तसु इन्द्र सोमः ॥५।१२

हे इन्द्र ! यह संस्कृत सोम प्रस्तुत है । जितना चाहो पान करो । जो सोम प्रातः सवन में तुम्हारे पीने के योग्य है, तुम उसे पीकर शत्रु का संहार करने को उत्साहित होओ । हम श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा तुम्हारा पूजन करते हैं ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारा रथ मन से द्रुत गति वाला है । अपने उसी रथ पर आरूढ़ होकर आगमन करो । जिन अश्वों द्वारा तुम सुख-पूर्वक गमन करते हो, वे हर्यश्व वेगवान् हों ।२। हे इन्द्र ! तुम अपने हरित् तेज और सूर्य से भी अधिक आभा वाले होकर अपने देह को अलंकृत करो । हम तुम्हें बंधुभाव से आहूत करते हैं । तुम हमारे साथ बैठकर सोम-पान द्वारा हर्ष को प्राप्त होओ ।३। सोम-पान द्वारा उत्पन्न हर्ष से तुम अत्यन्त महिमावान् होते हो । तुम्हारी उस महिमा को धारण करने में आकाश-पृथिवी असमर्थ हैं । हे इन्द्र ! तुम अपने प्रीतिमय अश्वों को योजित कर यजमान के घर में हविरत्न की ओर आगमन करो ।४। हे इन्द्र ! जिस यजमान के सोम को पीकर तुमने अपने पराक्रम को प्रदर्शित कर शत्रु का नाश किया है, वही यजमान आज तुम्हारे लिए श्रेष्ठ स्तुतियाँ प्रस्तुत कर रहा है । तुम्हारे हर्ष के लिए यह मधुर सोम अर्पित है ।५। (१)

इदं ते पात्रं समवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिर्यंण्ति देवाः ॥६
वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा ज नासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माक ते मधुमत्त मानोमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥७
प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र ननं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥८
नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवाञ्चित्रमर्क ॥९
अभिख्या नो मघवन्नाधमानान्त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणंकृधि रणकृत्सत्यशुष्माभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् ॥ ०।१३

हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम इस सोम पात्र को प्राप्त करते हो । इसका पान करो । जिस सोम की कामना देवता करते हैं, वही मधुर और हर्ष-कारी सोम पात्र में भरा है ।६। हे इन्द्र ! अन्न एकत्र करके स्तोतागण तुम्हें विभिन्न स्थानों में आहूत करते हैं । परन्तु हमारे द्वारा अर्पित सोम अत्यन्त मधुर है, तुम इसी का आस्वादन करो ।७। हे इन्द्र ! प्राचीन काल में तुमने जो पराक्रम प्रदर्शित किया था, मैं उसका कीर्त्तन करता हूं । तुमने जल के लिए मेघ को विदीर्ण किया था और स्तुति करने वाले को सरलता से गौ प्राप्त कराईं थीं ।८। हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों के स्वामी हो । तुम स्तोताओं के मध्य सुशोभित होओ । कर्म—कुशल व्यक्तियों में तुम सबसे अधिक बुद्धिमान् हो । पास या दूर कहीं भी कोई तुमसे अधिक अनुष्ठित नहीं होता । हे इन्द्र ! हमारी ऋचाओं को बढ़ाकर विभिन्न फल वाली करो ।९। हे इन्द्र ! हम तुम्हारी याचना करते हैं । हमें तेजस्विता प्रदान करो हम तुम्हारे बन्धु के समान हैं । तुम्हारी शक्ति महान् है । तुम संग्राम में तत्पर होने वाले हो । जहाँ धन प्राप्ति की आशा नहीं वहाँ भी तुम हमें धन-प्राप्त कराने वाले बनो ।१०। (१३)

सूक्त ११३ [दसवाँ अनुवाक]

(ऋषि—शयप्रभेदनों वैरूपः। देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वे भिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदंत्कृण्वानो महिमानभिन्द्रियं पीत्वा सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत ॥१
तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिवृत्रं जघन्व अभवद्वरेण्यः ॥२
वृत्रेण यदहिना विभ्रदायुधा समस्थिता युधये शसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सहात्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥३
जज्ञान एव व्यवाधत स्पृधः प्रापश्वद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नकं स्वपस्यया पृथुम् ॥४
आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यतः वीरयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायस शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥५।१४

सब देवताओं के सहित आकाश और पृथिवी इन्द्र को पुष्ट और बलवान् बनावें। जब उन्होंने सोमपान किया, तब वे वीरकर्मा होकर श्रेष्ठ महिमा वाले हुए और उन्होंने अनेक श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन किया ।१। मधुर सोमलता के टुकड़ों को विष्णु ने भेजा,तब इन्द्र की उस महिमा का उद्घोष किया गया। हे धनवान् इन्द्र ! तुम सहकारी देवताओं के साथ मिलकर वृत्र के हनन द्वारा सर्वोत्कृष्ट हो गये । २ । हे इन्द्र ! तुम विकराल तेज वाले हो। जब तुम स्तुति की कामना करते हुए शस्त्रास्त्र धारण कर वृत्र के संग्राम करने को अग्रसर हुए तब सब मरुतों ने तुम्हारी स्तुति की। इससे तुम्हारी महिमा बढ़ी और वे भी मेधावी हुए । ३ । इन्द्र ने उत्पन्न होते ही शत्रु को मार डाला। उन्होंने संग्राम की इच्छा से अपने बल की वृद्धि की। उन्होंने वृत्र को विदीर्ण किया, मनुष्य की रक्षा की और अपने यत्न से ही स्वर्ग को उन्नत लोक किया। ४। विकराल् शत्रु सेनाओं की ओर इन्द्र अकस्मात् धावित हुए। अपनी महिमा से उन्होंने आकाश-पृथिवी को अपने बश में किया। जो वज्र दानशील वरुण

और मित्र के लिए कल्याणकारी हैं, उसी लौह रूप वज्र को इन्द्र ने धारण किया । ५ । (१४)

इन्द्रस्य तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसापो विभ्रत तमसा परीवृतम् ॥६
या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥७
विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि तेऽवर्धन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रुद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मनाग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ॥८
भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्यानि प्र श्रोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ॥९
त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसे निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य ॥१०।१५

विभिन्न प्रकार के शब्द करते हुए इन्द्र शत्रु का संहार करने लगे । उनके पराक्रम का उद्घोष करता हुआ जल निकला। अन्धकार में निवास करने वाले वृत्र ने जल को रोक रखा था । इन्द्र ने अपनी शक्ति से उसे विदीर्ण किया । ६ । परस्पर स्पर्द्धा करते हुए इन्द्र ने और वृत्र ने भी अपने-अपने पराक्रम का आरम्भ में प्रदर्शन किया और फिर अत्यन्त कुपित होकर संग्राम करने लगे । जब वृत्र का वध हुआ तभी अन्धकार नष्ट हो गया । इन्द्र की महिमा इतनी महान् है कि उनके नाम का उच्चारण सर्वप्रथम किया जाता है । ७ । हे इन्द्र ! स्तुतियों और मधुर सोम रस के अर्पण द्वारा देवताओं ने तुमको प्रहृष्ट किया । तब तुमने विकराल वृत्र का हनन किया । इससे मनुष्यों ने शीघ्र ही अन्न प्राप्त किया । भस्म करने योग्य पदार्थ को जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वाला से दग्ध कर डालते हैं उसी प्रकार मनुष्य उस अन्न का दाँतों से चर्वण करते हैं । ८ । हे स्तोताओ ! इन्द्र ने जो मित्रता के कार्य किए हैं, उनका गुण गान अपने बन्धुत्वपूर्ण स्तोत्रों द्वारा करो । इन्द्र ने ही धुनि और चुमुरि नामक दैत्यों

का संहार किया और राजा दभीति की स्तुति को सुना । ९ । हे इन्द्र ! स्तुति करते समय मैंने जिस ऐश्वर्य और श्रेष्ठ अश्वादि को तुमसे माँगा था, वह सब मुझे प्रदान करो। मैं पापों से पार होकर सुख-मार्ग को प्राप्त होऊँ । मैं जिस स्तोत्र की रचना कर रहा हूँ, उस पर ध्यान देने की पूर्णतः कृपा करो । १० । (१५)

सूक्त ११४

(ऋषि—सध्रिर्वैरूपो धर्मो वा तापसः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द— त्रिष्टुप् जगती)

धर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाण अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥१
तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निषान परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥२
चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥३
एकः सुपर्ण स समुद्रमा विवेश स इदं वश्व भुवनं वि चष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेलिह मातरम् ॥४
सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्त यहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दासि च दधतो अध्वरेषुः ग्राहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥५।१५

सूर्य अग्नि दोनों ही तेजस्वी हैं । यह सब ओर विचरण करते हुए तीनों लोकों में व्याप्त हो गये । मातरिश्वा ने अपने कर्म से उन्हें प्रसन्न किया । जल देवताओं ने मन्त्रों के साथ सूर्य को पाया, अब उन दोनों ने समान भाव से दिव्य जल की रचना की । २ । यज्ञकर्त्ता विद्वान यज्ञ के अवसर पर तीन विभूतियों का यज्ञ करते हैं । उस यज्ञ में ही अग्नियों का परिचय अन्य देवताओं से होता है । मेधावी जन इन अग्नियों के उत्पत्ति

स्थान के ज्ञाता हैं। वे अग्नि अत्यन्त गोपनीय स्थान में निवास करते हैं।२। एक वेदी चार कोण वाली है। उसका रूप श्रेष्ठ और स्निग्ध है। वह श्रेष्ठ सामग्री द्वारा आच्छादित होती है जहाँ दो पक्षी विराजमान होते हैं, वहाँ उस वेदी पर सभी देवता अपना यज्ञ भाग प्राप्त करते हैं। ३। प्राण रूप पक्षी ब्रह्माण्ड रूप समुद्र में स्थित हुआ। वह सम्पूर्ण जगत् के देखने वाला है। मैंने भी उसे अपनी उत्कृष्ट बुद्धि से देखा है। वह अपनी समीपस्थ वाणी का सेवन करता है और माता रूपी वाणी उसका पोषण करती है।४। ईश्वर रूप पक्षी एक है,परन्तु मेधावीजन उसे अपने अपने दृष्टिकोण से विभिन्न रूप वाला बताते हैं। यज्ञानुष्ठान में वे उसकी विभिन्न छन्दों से उपासना करते और द्वादश सोम-पात्रों को स्थापित करते हैं। ५। (१६)

षट त्रिंशांश्च चतुर, कल्पयन्त छन्दांसि च दधत आद्वादशम् ।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ।।६
चतुर्दशान्य महिमानो अस्य त धीरा वाचा प्रणयन्वि सप्त ।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ।।७
सहस्रधा पंचदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी यावदित्तत् ।
सहस्रधा महिनानः सहस्र यावद् ब्रह्म विदितं तावती वाक् ।।८
कश्चन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाच पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकायः कः स्वित् ।।९
भूम्या अन्तं पयके चरन्ति रथस्यव धूषु युक्तासो अस्थु ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्ये भ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ।१०।१७

मेधावीजन चालीस सोम-पात्रों की स्थापना करते हुए स्तोत्र पाठ करते हैं। वही द्वादश छन्दों का उच्चारण करते हैं। वे अपनी बुद्धि से अनुष्ठान कर्म करते हुए ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्रों द्वारा यज्ञरूप रथ

का वहन करते हैं ।६। यज्ञ रूप ईश्वर की चौदह महिमाऐं भुवन रूप से स्थापित हैं । सप्त होता स्तोत्रों से यज्ञ कार्य का सम्पादन करते हैं तब यज्ञ में आने वाले देवगण सोम पीते हैं । वह यज्ञ मार्ग संसार व्यापी हैं, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ है ? ।७। उक्थ मंत्र पन्द्रह हजार हैं। वे भी आकाश पृथिवी के समान महान् हैं। जैसे सहस्र महिमा के स्तोत्र का पार नहीं पाया जाता, वैसे ही वाणी का पार नहीं पाया जाता।८।सबके जानने वाले मेधावी कौन हैं ? मूल्य वाक्य को किस विद्वान ने समझा है? सात ऋत्विजों पर आठवें ब्रह्मा हो सकें ऐसे प्रधान पुरुष कौन से हैं ? इन्द्र के हर्यश्व को किस उपासक ने देखा है ? ।९। कुछ अश्व रथ के धुरे में योजित किये जाते हैं और कुछ सवारी देते हुए पृथिवी पर घूमते हैं । जब सारथि रथयुक्त अश्व का वहन करता है, तब थकान दूर करने के लिए उन्हें पौष्टिक पदार्थ दिया जाता है ।१०।

सूक्त ११५

(ऋषि—उपस्तोता वार्ष्टिहव्य। देवता-अग्नि:। छन्द-जगती, त्रिष्टुत्, शक्वरी)

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन् ।।१
अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ।।२
तं वो वि न द्रुषदं देवमन्धस इन्दु प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिसा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ।।
वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ।।
स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखार्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीनग्निर्ददातु तेषामवो नः ।।५।१८

इस बाल रूप अग्नि का प्रभाव विचित्र है। इसे दुग्धपान के निमित्त अपने माता-पिता के पास नहीं जाना पड़ता। इस उत्पन्न हुए बालक के लिए स्तन का दुग्ध नहीं मिलता। उत्पन्न होते ही इस बालक में अत्यन्त दौत्य कर्म वाले अग्नि का बीज बोया जाता है। वह अपने ज्वाला रूप दाँतों से बल का भक्षण करते हैं। जुहू पात्र में स्थित यज्ञ-भाग इन्द्र को प्रदान किया। जैसे बलवान् बैल तृण भक्षण करता है, वैसे ही इन्द्र यज्ञ-भाग का सेवन करते हैं ।२। जैसे पक्षी वृक्ष पर आश्रय लेते हैं, वैसे ही अरणि रूप वृक्ष पर अग्नि आश्रित होते हैं। वे अन्न के देने वाले, वन को भस्मीभूत करने वाले और जल धारण करने वाले हैं। अपने तेज से महान् होकर मुख से हव्य ग्रहण करते हैं। वे महान्कर्मा अग्नि अपने मार्ग को लाल-रंग का करते हैं। हे स्तोतागण ! ऐसे गुण वाले महान् अग्नि की तुम स्तुति करो ।३। हे अग्ने ! तुम जरा-रहित हो। जब तुम भस्म करने लगते हो, तब तुम्हारे सहायक वायु आकर तुम्हारे चारों ओर हो जाते हैं। यज्ञानुष्ठान में ऋत्विजगण भी तुम्हें सब ओरसे घेर कर स्तुति करते हैं। उस समय तुम तीन रूप वाले होते हो तब तुम्हारा बल प्रदर्शित होता और ऋत्विग्गण युद्ध को प्राप्त वीरों के समान शब्द करते हैं ।४। हे अग्ने ! स्तोत्र उच्चारण द्वारा स्तुति करने वालों के तुम मित्र हो। तुम्हीं सबसे-सबसे शब्द करते हो। अग्नि ही हमारे स्वामी हैं। वह निकटस्थ शत्रु को नष्ट करते हैं। वही मेधावी स्तोताओं का पालन करते हैं। वह सबके आश्रयभूत हैं ।५।

वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे ।
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविष्यते ॥६

एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभिर्वसुः ष्टवे सहसः सूनरो नृभिः ।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान् ॥७

ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्य वदन्ते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥८

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
तांश्च पाहि गृणतश्च सूरीन्वषडवषलित्यूर्ध्वासो ।
अनक्षन्नमो नभ इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥६॥१६

हे अग्ने ! कोई भी अन्नवान् देवता तुम्हारी समता नहीं कर सकता । तुम सबमें श्रेष्ठ और बलवान् हो । सङ्कटकाल में धनुर्धारण पूर्वक तुम ही अपने उपासकों की रक्षा करते हो । हे स्तोतागण ! वे अग्नि मेधावी हैं । तुम उनकी शीघ्र स्तुति करो और सोत्साह उन्हें हविरन्न अर्पित करो ।६। कर्मरत और मेधावी पुरुष अग्नि को बल का पुत्र और वैभवशाली कहते हुए उनकी स्तुति करते हैं । उन पर अग्नि की कृपा होती है और वे सन्तुष्ट होते हैं। आकाश में चमकते हुए ग्रह और नक्षत्र आदि के समान प्रकाशमान अग्नि अपने तेज से शत्रुओं को पराभूत करते हैं ।७। हे अग्ने ! तुम बल के पुत्र एवं समर्थ हो । मैं उपस्तुत अपने स्तोत्र द्वारा पूजन करता हूं । हम स्तोता तुम्हारी कृपा को प्राप्त करते हुए धन,सन्तान और दीर्घजीवन प्राप्त करें ।८। हे अग्ने ! वृष्टिहव्य ऋषि के पुत्र उपस्तुत तथा अन्य स्तोताओं ने तुम्हारी स्तुति की है । तुम उन सबका पालन करने वाले होओ । उन्होंने नमस्कार युक्त वषट्मन्त्र द्वारा तुम्हारी स्तुति की है ।।९।।

सूक्त ११६

(ऋषि—अग्नियुत स्थौरोग्नियूपो वा स्थौरः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

पिबा सोम मसत इन्द्रियाय पिवा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिव राटे शवसे हूयमानः पिव मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥१
अस्य पिव क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥२
समत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र यमत्तु यः सूयते पथिवेषू ।

ममत्तुयेन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरणासि शत्रून् ॥३
आ विवर्हा अभिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥४
नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरः तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बल ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ॥५।२०

हे इन्द्र ! तुम बलवानों में श्रेष्ठ हो । तुमको हम अन्न-धन की प्राप्ति के लिए आहूत करते हैं । तुम शक्ति प्राप्त करने को और वृत्र का हनन करने को इस मधुर सोमरस का पान करो । तुम इस मधुर सोम में तृप्त होकर जलवृष्टि करो ।१। हे इन्द्र ! खाद्यान युक्त वह सोमरस उपस्थित है । यह क्षरित होकर पात्र में स्थित हुआ है । तुम इससे श्रेष्ठ रस का सेवन कर हर्षित मन से हमें कल्याण प्रदान करो । तुम हमें ऐश्वर्य देकर भाग्यशाली बनाने को आओ ।२। हे इन्द्र ! दिव्य सोम तुम्हारे लिए हर्षकारी हो । मनुष्य के मध्य उत्पन्न होने वाला पार्थिव सोम भी तुम्हें हर्षयुक्त करे । जिस सोम को पीकर तुम धन देने वाले होओ, वह सोम तथा जिसे पीकर शत्रु का नाश करो वह सोम भी तुम्हें हर्षयुक्त बनावे ।३। इहलोक और परलोक में इन्द्र ही सर्वत्र गमनशील, दृढ़ कर्त्तव्यशील और वृष्टि के करने वाले हैं । हमने उनके लिए इस सेवनीय सोमरस को सब ओर सींचा है । अपने अश्वों द्वारा वे इसके पास आवें । हे इन्द्र ! तुम शत्रु का नाश करने वाले हो मधु के समान सोम पूर्ण गुण वाला है । उसे मानकर अपने बल को प्रदर्शित करने के लिए संग्राम भूमि में शत्रुओं का हनन करो ।४। हे इन्द्र ! अपने तीक्ष्ण आयुधों द्वारा राक्षसों को पृथिवी पर गिराओ । तुम विकराल रूप वाले के निमित्त बल और उत्साह-वर्द्धक सोमरस हम प्रदान करते हैं । तुम संग्राम भूमि में शत्रुओं का सामना करो और कोलाहल पूर्ण स्थिति में डटे हुए शत्रुओं के अवयवों को छिन्न-भिन्न करदो ॥५॥

व्यर्यं इन्द्र तनुहि श्रवांस्योजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्रयग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥६
इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वोद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥७
अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८
प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरय नावमर्कैः ।
अयाइव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्य धनदा उद्भिद्रश्च ॥९।२१

हे इन्द्र ! हे स्वामिन् ! तुम यज्ञ-कर्म की वृद्धि करो। दुष्ट शत्रुओं पर अपने धनुष को प्रयुक्त करो। शत्रुओं को जीतते हुए बल से ही शरीर की वृष्टि करो। तुम हमारे प्रति अनुकूल होते हुए ही महानता को प्राप्त होओ।६। हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हम इस यज्ञीय द्रव्य को तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत करते हैं। तुम हम पर क्रोधित न होते हुए इसे स्वीकार करो। यह सोमरस और पुरोडाश आदि तुम्हारे लिये ही सस्कृत हुआ है। इन सम्पूर्ण पदार्थों का सेवन करो।७। हे इन्द्र ! यह यज्ञाय द्रव्य तुम्हारी ओर गमन करते हैं। जिस आहार-योग्य अन्न का पाक हुआ है तथा सोम रखा है, उस सबका तुम सेवन करो। हम तुम्हें इसके सेवनार्थ ही आहुत करते हैं। फिर यजमान का अभीष्ट पूर्ण हो।८। भले प्रकार रचे गये स्तोत्रों को मैं इन्द्र और अग्नि के निमित्त करता हूं। जैसे नदी में नाव चलती है, वैसे ही श्रेष्ठ मन्त्र वाली स्तुति भी गमनशील है। ऋत्विजों के समान देवगण भी हमारी परिचर्या करते हैं। वे हमें शत्रु-नाश के निमित्त धन प्रदान करते हैं।।९।।

सूक्त ११७

(ऋषि—भिक्षुः । देवता—धनान्नदानप्रशंसा ।

छन्द — जगती, त्रिष्टुप्)

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतोनोप दस्यत्युतापृणन्मडितारं न विदन्ते ॥१
य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मडितारं न विदन्ते ॥२
स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३
न स सखा यो न ददाति सख्ते सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं विदिच्छेत् ॥४
पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्रीधीयाँसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५।२२

देवगण ने प्राण का नाश करने वाली भूख बनाई है । परन्तु भोजन कर लेने पर भी मृत्यु से छुटकारा नहीं मिलता । इस पर भी दानशील पुरुष के धन में न्यूनता नहीं आती और अदानशील व्यक्ति का कल्याण करने में कोई समर्थ नहीं होता ।१। जिस मनुष्य के यहाँ क्षुधार्त मनुष्य अन्न की याचना करता है तब वह धन और अन्न से सम्पन्न पुरुष अपने हृदय को कठोर बना कर उसे भोजन नहीं देता और स्वयं भोजन कर लेता है उसे सुख देने में कोई समर्थ नहीं है ।२। अग्नि की कामना मे याचना करने वाले को जो अन्न दे, वही दानी कहाता है । उसे यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है । उसके लिए शत्रु भी मित्र होने लगते हैं ।३। जो अपना मित्र अन्न की कामना से पास आता है और उसे भी जो अन्नवान् व्यक्ति अन्न नहीं देता, वह मित्र कहलाने योग्य कदापि नहीं है । ऐसे मित्र के पास नहीं ठहरना चाहिए । उनके घर को घर ही न समझे और किसी दानशील अन्नवान् के पास ही याचना करे ।४। दाता को दीर्घ पुण्य मार्ग प्राप्त होता है इसलिये अन्नयाचक को अन्न अवश्य प्रदान करे जैसे रथ का पहिया विभिन्न दिशाओं में घुमाया जाता है, वैसे ही धन भी विभिन्न व्यक्तियों के पास आता-जाता रहता

है । वह कभी किसी एक व्यक्ति के पास अथवा एक ही स्थान पर नहीं टिकता ॥५॥ [२२]

मोघमन्नं विंदन्ते अप्रचेताः सत्यं ब्रवोमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति वृो सखायं केवलाघौ भववि केवलादो ॥६
कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
बदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥७
एकपादभूयो द्विपदा विचक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८
समौ चिद्धस्तौ न ममं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहात ।
यमयोश्चिन्न सभा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ
म समं प्रणीतः ॥९ २३

अनुदार मन वाले व्यक्ति के यहाँ भोजन न करे । क्योकि उदारता-रहित अन्न विष के समान है । जो मित्र और देवता को न देता हुआ स्वयं ही भोजन करता है, वह मूर्ख पुरुष साक्षात् पाप का ही भक्षग करता है ।६। कृषि-कर्म वाला हल अन्न का उत्पादक है । वह अपने मार्ग पर चल कर अन्न प्रकट करने वाला होता है । जैसे विद्वान् व्यक्ति मूर्ख की अपेक्षा श्रेष्ठ है, वैसे ही दानशील व्यक्ति प्रभावशील दानहीन से श्रेष्ठ होता है ।७। जिसके पाप संपत्ति का एक भाग है, वह दो भाग वाले से सम्पत्ति माँगता है । दो वाला, तीन भाग वाले के पास और तीन भाग वाला चार भाग वाले के पास गमन करता है । इस प्रकार न्यून धन वाला व्यक्ति अपने से अधिक धन वाले से धन मांगता है । ऐसे ही संसार का क्रम चलता है ।८। हमारे दोनों हाथ एक से हैं, परन्तु उनकी शक्ति एक-सी नहीं है । एक गौ की दो बछिया भी बढ़कर एक बराबर दूध नहीं देती । एक साथ उत्पन्न दो भ्राता भी समान बल वाले नहीं होते । एक वंश वाले दो व्यक्तियों में भी कोई अदानशील होता है और कोई दानशील होता है ॥९॥ (२३)

सूक्त ११८

(ऋषि—उरुक्षय आमहीयवः । देवता—अग्नि रक्षोहा । छन्द – गायत्री)

अग्ने हंसि न्य त्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा ।
स्वे क्षये शुचिव्रतं ॥१
उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मादसे ।
यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२
स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीलेन्यो गिरा ।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः ।
रोचमानो विभावसुः ॥४
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
त त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५।२४

हे अग्ने तुम श्रेष्ठ प्रतिज्ञा वाले हो । तुम अपने स्थान में मनुष्यों के मध्य प्रज्वलित होकर बढ़ो और शत्रु का नाश करने वाले होओ ।१। हे अग्ने ! यह स्रुक तुम्हारे निमित्त ही ग्रहण किया है । तुम्हारे लिये श्रेष्ठ आहुति प्रदान की गई है । तुम इस घृताहुति से प्रसन्न होओ ।२। अग्नि का आह्वान किया गया । वाणी द्वारा उनकी स्तुति की गई । सभी देवताओं के आह्वान से पूर्व उन्हें स्रुक द्वारा स्निग्ध किया जाता है,तब वे प्रदीप्त होते हैं ।३। अग्नि में जब आहुति दी जाती है तब उनका शरीर घृत से स्निग्ध होता है । वे घृत से सींचे जाने पर अत्यन्त दीप्ति वाले और प्रकाशवान् होते हैं ।४। हे अग्ने ! तुम देवताओं के लिये हवि वाहक होते हो । जब उपासकगण तुम्हारा आह्वान करते हैं, तब स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए तुम वृद्धि को प्राप्त होते हो ॥५॥ [२४]

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत ।

अदाभ्यं गृहपतिम् ॥६
अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह ।
गोपा ऋतस्य द दिहि ॥७
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः ।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥८
तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधरे ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥९।२५

हे मनुष्यो ! अग्नि अविनाशी, दुर्धर्ष और गृहपति हैं । तुम घृताहुतियों से उनका पूजन करो ।६। हे अग्ने ! तुम अपने प्रचण्ड तेज से असुरों को भस्म करो और यज्ञ की रक्षा के लिए दीप्ति को प्राप्त होओ ।७। हे अग्ने ! अपने विस्तृत स्थान पर प्रतिष्ठित होते हुए दीप्तिमय होओ और अपने स्वाभाविक तेज से राक्षसियों को भस्म करो ।८। हे अग्ने ! हम तुम्हारी स्तुति करते हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं. क्योंकि तुम मनुष्यों के साथ रह कर यज्ञ-कर्म को भले प्रकार सम्पन्न करते हो । तुम हवियों को हवन करने वाला हो । तुम्हारा निवास-स्थान विचित्र है ।९। (२५)

सूक्त ११९

(ऋषि—लब ऐन्द्रः । देवता—आत्मस्तुतिः । छन्द—गायत्री)

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१
प्र वाताइव दोधत उन्मा पीता असंतय ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥२
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वाः इवाशवः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥३
उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥४

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥५
नहि मे अक्षिपञ्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।
कवित्सोमस्यापामिति ॥६।२६

मैं इन्द्र गौ, अश्व आदि धनों को देने की इच्छा कर रहा हूं क्योंकि मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूं।१। वायु जैसे वृक्ष को कम्पित कर ऊपर को उठता है, वैसे ही पान किये जाने पर सोम-रस मुझे उन्नत करता है। मैंने अनेक बार सोम पान किया है।२। जैसे द्रुतगामी अश्व रथ को ऊपर रखता है, वैसे ही पान किये जाने पर सोम ने भी मुझे उन्नत किया है। मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ।३। जैसे हुंकार करती हुई गौ अपने बछड़े कीं ओर जाती है, वैसे ही स्तुतियाँ मेरी और गमन करती हैं। मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूं।४। त्वष्टा जैसे रथ के ऊपर के स्थान का निर्माण करते हैं, वैसे ही मैं स्तुति करने वाले के मन में स्तोत्र का निर्माण करता हूँ। अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ।५। पंचजन मेरी दृष्टि से छिप नहीं सकते। मैं अनेक बार सोम-पान कर चुका हूँ।६। (२६)

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥७
अभिद्यां महिना भुवमभी मां पृथिवीं महीम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥८
हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥९
आषमित्पृथिवीमसं जङ्घनानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१०
दिवि मे अन्यः पक्षो धो अन्यमचीकृषम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥११

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१२
गृहो याम्यरङ्कृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१३।२७

आकाश पृथिवी रूप दोनों लोक मेरे एक पार्श्व की भी समता नहीं कर सकते । मैं अनेक बार सोम-रस का पान कर चुका हूं ।७। स्वयं और विस्तीर्ण पृथिवी को मेरी महिमा ही व्याप्त करती है । मैंने अनेक बार सोम-पान किया है ।८। यदि मैं चाहूं तो इस पृथिवी को अपनी शक्ति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर रख दूं । मैं अनेक बार सोम पान कर चुका हूं ।९। जिस स्थान को चाहूं, उसे ही नष्ट कर डालूं । मैं इस विस्तीर्ण पृथिवी को भी भस्म करने में समर्थ हूँ । मैं अनेक बार सोम पान कर चुका हूं ।१०। मेरा एक पार्श्व स्वर्ग में और एक पृथिवी पर है । मैं अनेक बार सोमपान कर चुका हूं ।११। मैं आकाश के समान उन्नत और महान् से भी महान् हूँ । मैंने अनेक बार सोमरस का पान किया है ।१२। जब मेरी स्तुति होती है, तब मैं देव-गण के लिए हव्य हवन करता हूं और अपना भाग पाकर चला जाता हूं । मैंने अनेक बार सोमरस का पान किया ।१३। (२७)

सूक्त १२०

(ऋषि—बृहद्दिव आथर्वणः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उयस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यमाः ॥१
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं वधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि स ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिभवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्यादीयः स्वादुनासृजा समदः सुमधु मधुताभि योधीः ॥३

इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजोयो घृष्णो स्थिरमातनुष्व मात्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥४
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामितिआयुधावचोभिःसते शिशामि ब्रह्मणा वयांसिः ॥५॥१

जिनसे प्रकाशमान सूर्य उत्पन्न हुए, वे इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं । उनसे पूर्व कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ वे जन्म लेते ही शत्रु का नाश करने में समर्थ होते हैं । उस समय देवगण भी उनकी स्तुति करते हैं ।१। इन्द्र शत्रुओं के हननकर्ता, अत्यन्त तेजस्वी और महान् बल से सम्पन्न हैं । वे दस्युओं के हृदयों को भयभीत करते हैं । हे इन्द्र ! तुम विश्व के सब प्राणियों का कल्याण करते और उन्हें पवित्र करते हुए सुख देते हो, तब वे सब प्राणी तुम्हारी श्रेष्ठ स्तुति करते हैं ।२। जब देवताओं को तृप्त करने वाले यजमान विवाह करके गृहस्थ धर्म का पालन करते हैं, तब वे अपत्यवान् होकर तुम्हारे द्वारा समस्त यज्ञ कार्यों को सम्पन्न करते हैं । हे इन्द्र ! तुम स्वादु युक्त से भी अधिक सुस्वादु पदार्थ प्रदान करो इस विचित्र मधु से दिव्य मधु का मिश्रण करो ।३। हे इन्द्र ! जब तुम सोमपान से हृष्ट होकर धनी पर विजय पाते हो, तब स्तुति करने वाले ऋषिगण भी तुम्हारे साथ सोम पीकर हर्ष प्राप्त करते हैं । हे इन्द्र ! तुम अजेय हो । अपने महान् बल को प्रदर्शित करो । तुम्हें विकरालकर्मा राक्षस भी पराभूत न कर पावें ।४। हे इन्द्र ! संग्राम क्षेत्र में तुम्हारी सहायता से ही हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं उस समय अनेक शत्रुओं से हमारा सामना होता है । मैं स्तुतियों द्वारा तुम्हारे आयुधों को तीक्ष्ण कर तुम्हें उत्साहित करता हूं ।५। (१)

स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वमिनतममाप्त्यामाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्प्रसाक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥६
नि तद्दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥७

इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महा गोत्रस्य क्षयति स्वराजो भुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥८
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तव मिन्द्रमेव ।
स्वसारोमातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्तिचशवसा वर्धयन्ति च ॥९।२

मैं उन इन्द्र की स्तुति करता हूं जो विलक्षण तेज वाले, विभिन्न रूप वाले, हमारे आत्मीय और श्रेष्ठ स्वामी हैं । उन्होंने ही अपने बल से वृत्र नमुचि, कुयव आदि असुरों को हराया और उनका संहार किया ।६। हे इन्द्र ! जिस घर में तुम हविरत्न द्वारा तृप्त किये जाते हो, उस घर को दिव्य और पार्थिव धनों से सम्पन्न करते हो । जब सब जीवों को उत्पन्न करने वाली आकाश-पृथिवी कम्पित होती हैं, तब ही उन्हें स्थिर करते हो । उस समय तुम अनेक कार्यों को सम्पन्न करते हो ।७। ऋषियों में श्रेष्ठ बृहद्दिव स्वर्ग की कामना से इन्द्र को स्तुति कर रहे हैं । वे इन्द्र पर्वत को हटा कर शत्रु-पुरों के सब द्वारों का उद्घाटन करने में समर्थ हैं ।८। बृहद्दिव ऋषि अथर्वा के पुत्र हैं । इन्होंने इन्द्र के निमित्त अपनी स्तुतियाँ उच्चारित कीं । पृथिवी पर बहने वाली नदियाँ निर्मल जल को प्रवाहित करती हुई मनुष्यों का कल्याण-सम्पादन करने वाली होती हैं ।९। (२)

सूक्त १२१

(ऋषि—हिरण्यगर्भः प्रजापत्यः । देवता—कः । छन्द—त्रिष्टुप्)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च द्दलहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रससा विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥३

सर्व प्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए । वे उत्पन्न होते ही सब प्राणियों के स्वामी हुए । इन्होंने ही इस आकाश और पृथिवी को अपने-अपने स्थान पर स्थित किया । उन प्रजापति का हम हव्य द्वारा पूजन करेंगे ।१। जिन प्रजापति ने प्राणी को शरीर और बल प्रदान किया है, उनकी आज्ञा में सभी देवता चलते हैं । जिनकी छाया ही मधुर स्पर्श वाली है और मृत्यु भी जिनके अधीन रहती है, उन प्रजापति के 'क' आदि अनेक नाम हैं ।२। जो अपनी महिमा से ही चलने और देखने वाले प्राणियों के भी ईश्वर हैं, उनके 'क' आदि अनेक नाम हैं ।३। सब हिमाच्छादित पर्वत जिनकी महिमा से उत्पन्न हुए और समुद्र से युक्त पृथिवी भी जिनकी कृति समझी जाती है तथा यह समस्त दिशाएँ जिनकी भुजाओं के समान हैं, वे प्रजापति 'क' आदि अनेक नाम वाले हैं ।४। इस पृथिवी और ऊँचे आकाश को जिन्होंने अपनी महिमा से दृढ़ किया है, जिन्होंने अन्तरिक्ष में जल की रचना की है और जिन्होंने सूर्य मण्डल में स्थापना की है, वे प्रजापति 'क' आदि अनेक नाम वाले हैं ।५। (३)

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६
आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्ष दधाना जनयन्तीर्यज्ञम ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मैः देवाय हविषा विधेम ॥८
मानो हिंसीज्जानिया यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा ज जान ।
यश्चापश्चान्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता वभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्ते वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०।४

शब्दायमान पृथिवी और आकाश जिनके द्वारा और परिपूर्ण हुए, आकाश पृथिवी ने जिन्हें महिमामय किया, उन 'क' आदि नाम वाले प्रजापति के आश्रित हुए सूर्य नित्य प्रति उदित और प्रकाशित होते हैं ।६। जिस महान् जल से समस्त भुवन को आच्छादित कर लिया था, उसी जल से अग्नि और आकाश की उत्पत्ति हुई । इसी से देवताओं का प्राण-वायु भी उत्पन्न हुआ । प्रजापति, 'क' आदि अनेक नाम वाले हैं ।७। जल ने अपने बल से जब अग्नि को प्रकट किया तब जिन प्रजापति ने अपनी महिमा से उस जल को सब ओर से देखा और जो देवताओं में प्रमुख हैं, उन प्रजापति के 'क' आदि अनेक नाम हैं ।८। जो प्रजापति पृथिवी को उत्पन्न करते हैं, जो धारण करने में यथार्थ क्षमतावान् हैं, जिन्होंने आकाश की रचना की और सुखदाता जल को यथेष्ट रूप में प्रकट किया, वे 'क' आदि नाम वाले प्रजापति हमें हिंसित न करें ।९। हे प्रजापति ! उत्पन्न पदार्थों को तुम्हारे सिवा अन्य कोई अपने वश में नहीं कर सकता । हम जिस कामना से तुम्हारा यज्ञ कर रहे हैं, हमारी वह कामना सिद्ध हो और हम महान् ऐश्वर्य के स्वामी हों ।१०। (४)

सूक्त १२२

(ऋषि—चित्रमहा वासिष्ठः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधो विश्वधायसोऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् ॥१
जुषाणो अग्ने प्रति हर्यमेवचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् ॥२

सप्त धामानि परियन्नतर्त्यो दाशद्दाशुषे सुकृते मामहस्व ।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वभुवा यस्त आनट् समिधा तं जुषस्व ॥३

यज्ञस्य केतुं प्रथम पुरोहितं हविष्मन्त ईलते सप्त वाजिनम् ।
श्रृण्वन्तमग्नि घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देव पृणते सुवीर्यम् ॥४

त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वा मर्जयन्मरुतो दाशुषो गृहेत्वां स्तामेभिर्भृगवोविरुरुचुः ॥५॥५

अद्भुत रूप वाले अग्नि सूर्य के समान तेजस्वी हैं। वे कल्याणकारी अतिथि के समान प्रीति करने के योग्य हैं। जो अग्नि संसार के धारण करने वाले और विपत्तियों के दूर करने वाले हैं, वे होता और गृहस्वामी होते हुए हमको श्रेष्ठ बल और गौ प्रदान करते हैं। मैं उन्हीं अग्नि की स्तुति करता हूं।१। हे अग्ने ! मेरे स्तोत्र पर ध्यान देकर प्रसन्न होओ। तुम श्रेष्ठ कर्म वाले और सभी ज्ञातव्य बातों को जानने वाले हो। तुम घृताहुति को प्राप्त होकर स्तोता को सोम गान का आदेश दो। देवगण जब तुम्हारा कार्य देखते हैं तब वे अपने-अपने कर्म में लगते हैं।२। हे अग्ने ! तुम सर्वत्र गमनशील और अविनाशी हो। श्रेष्ठ कर्म वाले पुरुषों को धन-दान की इच्छा करो। समिधाओं द्वारा जो तुम्हें प्रदीप्त करे, तुम उसे श्रेष्ठ सम्पत्ति और सन्तानादि प्राप्त कराओ। तुम पूजन को स्वीकार करो।३। यज्ञ द्रव्यों से सम्पन्न यजमान सब लोकों के अधीश्वर अग्नि की स्तुति करते हैं। वे अग्नि ध्वजा रूप और सर्व श्रेष्ठ होता हैं। वे घृत-युक्त आहूत ग्रहण कर अभीष्ट फल प्रदान करते और दानी को श्रेष्ठ बल से सम्पन्न करते हैं।४। हे अग्ने ! तुम सबसे आगे जाने वाले को दानशील पुरुष के घर में प्रतिष्ठित करते हैं। हे आनन्द देने वाले अग्निदेव ! भृगुवंशी ऋषि तुम्हें स्तुतियों से प्रदीप्त करते हैं।५। (५)

इष दुहन्त्सुदुघां विश्वाधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिऋतानि दीद्यद्वार्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥६
त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥७
नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिन गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८।६

हे अग्ने ! तुम विचित्रकर्मा हो । यज्ञानुष्ठान में लगे हुए यजमान के लिए तुम यज्ञ रूपी पयस्विनी गौ का दोहन करो । तुम घृताहुति को पाकर पृथिवी आदि तीनों लोकों को प्रकाश से भरते हो । तुमसे शुभ कर्म वाला आवरण दृष्टिगोचर होता है । तुम सर्वत्र गमनशील हो ।६। हे अग्ने ! उषाकाल प्राप्त होते हो तुम्हें दूत मानकर यजमान आहुति देते हैं । देवगण भी तुम्हें घृत द्वारा प्रदीप्त करते हुए पूजन निमित्त प्रवृद्ध करते हैं ।७। हे अग्ने ! वसिष्ठ वंशज ऋषियों ने अपने यज्ञानुष्ठान में तुम्हारा आह्वान किया । तुम यजमानों के घर को ऐश्वर्य से सम्पन्न करो । तुम अपनी कल्याण-कारिणी रक्षाओं के द्वारा हम उपासकों की रक्षा करो ।।८।। (६)

सूक्त १२३

(ऋषिः—वेपः । देवता—वनः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभि रिहन्ति ॥१
समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥२
समानं पूर्वीरभि वावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीलाः ।
ऋतस्य सोमावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥३
जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोष महिषस्य हिग्मन् ।

ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥४
अप्सरा जारनुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन् ।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥५।७

वेन देवता ज्योतिर्मान् हैं। वे जल के उत्पादक अन्तरिक्ष में सूर्य के पुत्र जल रूप की वृष्टि करते हैं। जब सूर्य से जल मिलता है तब मेधावी स्तोता उन वेन नामक देवता को मधुर स्तुतियों से सन्तुष्ट करते हैं ।१। वेन अन्तरिक्ष से जलों का प्रेरण करते हैं। उन उज्ज्वल रूप वाले वेनकी पीठ दिखाई देती है। वे जल के उन्नत स्थान में ही तेजस्वी होते हैं। सब के जन्म स्थान स्वर्ग को उनके परिवदों ने गुंजायमान किया ।२। अन्तरिक्ष का जल वेन के साथ रहता है। वह शिशुरूपिणी विद्युत की माता के समान है। जल अपने साथी वेन से मिल कर शब्दवान् हुआ। तब अन्तरिक्ष में मधुर जल की वृष्टि का शब्द उत्पन्न होकर वेन की स्तुति करने लगा ।३। मेधावी स्तोताओं ने भैंसे के समान वेन के लिये यज्ञ किया और नदी को भरने वाला जल पाया। वे गधर्व रूप वेन जल के स्वामी हैं ।४। विद्युत रूपी अप्सरा वेन की पत्नी के समान है। उन्होंने मन्द मुस्कान करते हुए मेघ में निवास किया ॥५॥ (७)

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम ॥६
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभि दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥७
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥८।८

हे वेन ! तुम अन्तरिक्ष में उड़ने वाले पक्षी के समान हो। तुम्हारे पंख स्वर्णिम हैं। सब लोकों का शासन करने वरुण के तुम दूत हो। पक्षी जैसे अपने शिशु का भरण पोषण करता है, वैसे ही तुम

सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण करते हो। सब प्राणी तुम्हारा दर्शन करते और तुम से स्नेह करते हैं।६। वेन स्वर्ग के उन्नत प्रदेश में वास करते हैं। उनके पास अद्भुत शस्त्रास्त्र हैं वे श्रेष्ठ रूप से आच्छादन किये हुए हैं। वे भीतर से इच्छित जल वृष्टि करते हैं।७। वेन जल से सम्पन्न हैं वे अपने कर्म के लिये दूरदर्शी नेत्रों से देखते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं। वे उज्ज्वल आलोक से तेजस्वी होते हैं और तृतीय स्वर्ग लोक के अग्र भाग में सब लोकों द्वारा चाहे हुए जल को उत्पन्न करते हैं।।८।। [८]

सूक्त १२४

(ऋषि—अग्नि, वरुण, सोमानां निहः। देवता—अग्निः।
छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्।
असो हव्यवालुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः।।१
अदेवाद्देवः प्रचता गुहा यप्रपश्यमाना अमृतत्वमेमि।
शिवं यत्सन्तमशिमो जहामि स्वात्सख्यादरणीं नाभिमेमि।।२
पश्यन्नन्यस्य अतिथिं वयाया ऋतस्य धाम वि मिमे पुरूणि।
शसामि पित्रे असुराय शेवमयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि।।३
बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि।
अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावर्द्राष्ट्रं तदवाम्यायन्।।४
निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि।।५।६

हे अग्ने! यह ऋत्विज, यजमान आदि पाँच जन हमारे इस यज्ञ क संचालन करते हैं। यह यज्ञ तीन सवनों वाला है। इसमें अनुष्ठान कर वाले सात होता हैं। तुम हमारे इस यज्ञ में आकर हवि-वाहक दू बनो।१। हे स्तोताओ! देवगण मुझ अग्नि से निवेदन करते हैं, इसलि

में प्रकाश-हीन अव्यक्त रूप से प्रकाशयुक्त अव्यक्त रूप में आता हुआ, सब ओर देखता और अमृतत्व प्राप्त करता हूं। जब यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण होता है तब मैं यज्ञ स्थान को छोड़कर अव्यक्त रूप से ही अपने उत्पत्ति स्थान अरणि में निवास करता हूँ ।२। पृथिवी से अन्यत्र जो आकाश का गमन मार्ग है उस पर चलने वाले सूर्य की वार्षिक गति के अनुसार विभिन्न ऋषियों का मैं अनुष्ठाता हूँ। मैं पिता रूप बलवान् देवताओं को प्रसन्नता के निमित्त स्तुति करता हूं। यज्ञ के लिये त्याज्य और अपवित्र स्थान को छोड़ कर मैं यज्ञ योग्य पवित्र स्थान को ओर गमन करता हूं ।३। मैंने इस यज्ञ स्थान में अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं। मैंसे अपने पिता रूप अरणि से उत्पन्न होकर इन्द्र का वरण किया है। मेरा दर्शन न होने पर चन्द्रमा वरुण आदि गिर पड़ते हैं और राष्ट्र में विप्लव फैल जाता है। तब मैं रक्षा के लिये प्रकट होता हूं ।४। मेरे आगमन को देखते ही राक्षस निर्बल होते हैं। हे वरुण! तुम भी मेरे स्तोता बनो। ईश्वर! तुम भी सत्य से असत्य को पृथक् कर मेरे राज्य के स्वामी होओ ।।५।। ६}

इदं स्वरिदमिदास वाममय प्रकाश उर्वन्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ।।६
कविः कवित्वा दिवि रूपमासजदप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।
क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवस्ता अस्यवर्णं शुचयो भरिभ्रति ।।७
ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते न ईमा क्षेति स्वधया मदन्तोः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ।।८
बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं न चिक्युः कवयो मनीषा ।।९।।१०

हे सोम! यह स्वर्ग अत्यन्त रमणीक है। यह दिव्य प्रकाश से प्रकाशित है; यह विस्तृत अन्तरिक्ष है। हे सोम! तुम प्रकट होओ, तब तुम्हारे यज्ञीय द्रव्य होने पर वृत्र वध के कार्य में । हम विभिन्न

यज्ञीय पदार्थों के द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ।६। मित्र देवता ने अपने कर्म चातुर्थ द्वारा आकाश में अपना तेज स्थापित किया । वरुण ने स्वल्प उद्योगों से ही मेघ जल का उद्घाटन किया । सभी जल विश्व के कल्याणार्थ नदी के रूप में प्रवाहित होते हैं । वे सभी नदियाँ वरुण के उज्ज्वल तेज से सुसज्जित होती हैं ।७। सभी जल वरुण का तेज पाते हैं उन्हीं के समान यज्ञीय द्रव्य ग्रहण कर प्रसन्न होते हैं और वरुण उनके पास गमन करते हैं । भयभीत प्रजा जैसे राजाश्रय में जाती है, वैसे ही भयभीत जल वृत्र के पास से भागते हुए वरुण के आश्रय में जाते हैं ।८। जो उन भयभीत जलों के सहायक होते हैं, वे इन्द्र या सूर्य कहाते हैं । वे स्तुति योग्य देवता जल के पीछे-पीछे गमन करते हैं । विद्वानों ने उन्हें इन्द्र कह कर ही प्रवृद्ध किया है ।९। (१९)

सूक्त १२५

(ऋषि—वागाम्भृणी । देवता—वाघाम्भृणी । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५।११

मैं वाग्देवी रुद्रगण और वसुगण के साथ घूमती हूं । मैं आदित्यगण तथा अन्य देवताओं के साथ निवास करती हूं । मैं मित्रावरुण को धारण करने वाली और इन्द्र, अग्नि, अश्विद्वय का आश्रय करने वाली हूं ।१। पाषाण द्वारा पिस कर जो सोम प्रकट होते हैं, मैं उन्हें धारण करने वाली हूं । त्वष्ट, पूषा और भग भी मेरे द्वारा ही घृत हैं । जो अनुष्ठाता यजमान सोम रस निष्पन्न करके देवताओं को तृप्त करता है, उसे मैं धन प्रदान करती हूं ।२। मैं राज्यों का अधिष्ठात्री और धन प्रदात्री हूं । मैं ज्ञान से सम्पन्न और यज्ञों में प्रयुक्त साधनों में श्रेष्ठ हूं । मैं प्राणियों में वास करता हूं । देवताओं ने मुझे अनेक स्थानों में स्थापित किया है ।३। प्राण-धारण, श्रवण, दर्शन, भोजन आदि सब कर्म मेरी सहायता द्वारा ही किये जाते हैं । मुझे न मानने वाले क्षीणता को प्राप्त होते हैं । हे विज्ञ ! मैं जो कहती हूं यह यथार्थ है ।४। जिसके आश्रय को देवता और मनुष्य प्राप्त होते हैं उसकी उपदेशिका हूं । जिसे मैं चाहूँ, वही मेरी कृपा से बलवान्, मेधावी, स्तोता और कवि हो सकता है ।५। (११)

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।।६
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ।।७
अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ।।८।१२

स्तुतियों से विमुख पुरुषों का संहार करने की इच्छा से इन्द्र जब धनुष ग्रहण करते हैं, तब मैं उनके धनुष को दृढ़ करती हूं । मैं ही आकाश-पृथिवी से व्याप्त होकर मनुष्य के लिए संग्राम करती हूँ ।६। मैंने आकाश को प्रकट किया है, इसलिए मैं उसके पिता के समान हूँ । इस जगत् का मस्तक वही आकाश है । मैं समुद्र जल में निवास करती हूँ और वहीं से बढ़ती हूँ । मैं अपने ऊँचे शरीर से स्वर्ग का स्पर्श करती

हूँ ।७। मैं जब लोकों को रचती हूँ, तब वायु के समान विचरण करती हूँ। मैं अपनी महिमा से महिमामयी होकर आकाश पृथिवी का उल्लंघन कर चुकी हूँ ।८। (१२)

सूक्त १२६

(ऋषि—कुल्सलबर्हिषः शैलूषिः, अहोमुरवा बामदेव्यः ।
देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—वृहती, त्रिष्टुप्)

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमयमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ।।१
तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः ।।२
ते नूनं नोऽयभूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विष ।।३
यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युस्माक शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः ।।४
आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भो रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ।।५
नेतार ऊ षु णस्तिरो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरित राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ।।६
शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ।।७
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षितामुमुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ।।८

हे देवगण ! अर्यमा, मित्र, वरुण जिसकी शत्रु से रक्षा करते हैं, उसका अमङ्गल नहीं होता और पाप भी उसे नहीं सताता ।१। हे

वरुण, मित्र और अर्यमा ! पाप और शत्रु के पाश से हमारी रक्षा करो ।२। वरुण, मित्र और अर्यमा हमारी अवश्य रक्षा करेंगे । हे देवगण ! हमें शत्रु से बचाओ और पापों के पार ले चलो ।३। हे वरुण, मित्र और अर्यमा ! तुम नेता का कार्य करने में कुशल हो । तुम विश्व के पालन करने वाले हो । हम शत्रु से मुक्त होते हुए तुम्हारे आश्रय में सुखी हों ।४। मित्रावरुण, आदित्य और अर्यमा हमें शत्रु के पाश से रक्षित करें । हम शत्रु के पाश से छूट कर मङ्गल के लिए रुद्र, मरुद्गण और इन्द्राग्नि का आह्वान करते हैं ।५। वरुण, मित्र और अर्यमा हमारे मार्ग-दर्शक हैं । वही हमें पार लगाते हैं । वे पापों को नष्ट करने में समर्थ हैं । यह सब प्राणियों के अधिपति हमें शत्रुओं से रक्षित करें ।६। वरुण, मित्र और अर्यमा अपनी रक्षाओं से हमारा कल्याण करें । हम जिस सुख की कामना करते हैं, वह सुख हमें प्रदान करते हुए शत्रु के हाथ से हमारी रक्षा करें ।७। जब उज्ज्वल वर्षा गी का पाँव बन्धन में डाला गया, तब यज्ञ-भाग के अधिकारी वसुगण ने उसे मुक्त किया । हे अग्ने ! हमें दीर्घायु दो और पाप से बचाओ ।८। (१३)

सूक्त १२७

(ऋषि:—कुशिक: सौभरो, रात्रिर्वा भारद्वाजो । देवता—रात्रस्तव: । छन्द—गायत्री,)

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य क्षभिः ।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ।।१
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु द्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ।।२
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तमः ।।३
सा नो अद्य यस्या वयं नि तेयामन्नविक्ष्महि ।
वृक्षे न वसतिं वयः ।।४

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्धन्तो नि पक्षिणः ।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥५
यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथा नः सुतरा भव ॥६
उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेव यातय ॥७
उप ते गाइवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥१४

आगमन करने वाली रात्रि ने अन्धकार को विस्तृत किया है । वह नक्षत्रों द्वारा अलंकृत सुशोभित हुई है ।१। दीप्तिमती रात्रि अत्यन्त विस्तार वाली हो गई । स्वर्ग स्थित देवताओं और पार्थिव प्राणियों को इस रात्रि ने ही आच्छादित किया । फिर आकाश के उत्पन्न होने पर अन्धकार का नाश होगया ।२। आने वाली उषा को उस रात्रि ने अपनी बहिन के समान संस्कृत किया और प्रकाश के उत्पन्न होने पर अन्धकार का नाश हो गया ।३। चिड़ियाँ जैसे वृक्ष पर रैन बसेरा करती हैं, वैसे ही जिस रात्रि के आगमन पर हम सुषुप्ति को प्राप्त हुए, वह रात्रिदेवी हमारा मङ्गल करने वाली हो ।४। रात्रि के आगमन पर सब ग्राम निस्तब्ध होगए । पक्षी, पशु, मनुष्यादि सब प्राणी और द्रुतवेग वाला बाज पक्षी भी शान्त होकर सो गए ।५। हे रात्रिदेवी ! बृकी हमारे पास न आवें, चोर भी हमारे घर से बहुत दूर रहें । इस प्रकार तुम हमारे लिए कल्याणकारिणी होओ ।६। रात्रि का काला अन्धकार छा गया है । उस अन्धकार में मेरे पास की सब वस्तुऐं ढक गई हैं । उषा ! तुम ऋण का परिशोध करने और उससे मुक्त करने वाली हो । उसी प्रकार तुम घोर अन्धकार से भी मुक्त करती हो ।७। हे रात्रि ! तुम आकाश की पुत्री हो । तुम्हारे गमनकाल में, मैं इस गौ के समान स्तुति को तुम्हारे निमित्त ही कर रहा हूं, इसे स्वीकार करो ।८। (१४)

सूक्त १२८

(ऋषिः- विहव्यः । देवताः-विश्वेदेवाः । छन्द-त्रिष्टुप् जगती)

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णु रग्निः ।
ममान्तरिमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥२
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीरा ॥३
मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥४
देवीः षलुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास एह वीरयध्वम् ।
माहास्महि प्रजया मातनूभिर्मा रधामद्विषते सोम राजन् ॥५

हे अग्ने ! संग्राम के उपस्थित होने पर मुझे तेजस्वी करो । हम तुम्हें प्रदीप्त करके देह को बलवान् बनाते हैं । मेरे सामने सब दिशाओं के जीव झुकें । तुम जिसके स्वामी हो, वह हम अपने शत्रुओं को जीतने हों ।१। विष्णु, मरुद्गण, इन्द्र, अग्नि, और अन्य सब देवता संग्राम भूमि में मेरा पक्ष ग्रहण करें । आकाश के समान प्रशस्त पृथिवी मेरे अनुकूल हो । मेरी इच्छा के अनुसार ही शत्रु भी मेरे सामने झुक जाँय ।२। मेरे यज्ञ में आकर तृप्त होने वाले देवता मुझे धन प्रदान करें । मैं आशीर्वाद प्राप्त करता हुआ देवताओं का आह्वाता होऊँ । प्राचीन काल में जिन ऋषियों ने देवयाग किये वे ऋषिगण मुझ पर कृपा करें । मेरा शरीर स्वस्थ रहे और मैं सुन्दर अपत्यादि से सम्पन्न होऊँ ।३। मेरे यज्ञीय पदार्थ देवताओं के लिए ग्रहणीय हों मैं किसी पाप के वश में न पड़ूँ । सभी देवता प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दें, जिससे मैं अपने अभिलषित ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकूं ।४। आकाश पृथिवी, दिन, रात्रि, जल, औषधि यह छः देवियाँ हमे समृद्ध करें हे देवगण ! मुझे

बलवान् बनाओ । हमारी सन्तान का और हमारी भी शरीर विघ्नों में बचे । हे सोम ! शत्रु हमारा नाश न कर सके ।५। (१४)

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥६
धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥७
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृलयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८
ये न सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं
चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥९॥१६

हे अग्ने ! दुर्धर्ष होकर सब प्रकार हमारे रक्षक होओ । तुम पशुओं के आक्रमण को व्यर्थ कर हमें बचाओ । हमारे शत्रु अपनी इच्छा-पूर्ति में विफल हों और यहाँ से भाग जावें । शत्रुओं की बुद्धि नष्ट हो जाय ।६। जो इन्द्र सृष्टि रचने वालों के भी सृष्टा हैं, जो लोकों के स्वामी, शत्रुओं के जीतने वाले और हमारी रक्षा करने वाले हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूं । दोनों अश्विनी कुमार, बृहस्पति और अन्य सब देवगण मेरे इस यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें । यजमान का कर्म न हो ।७। जो महान् तेज को प्राप्त होकर महिमायुक्त हुए जो विभिन्न स्थानों में निवास करते हैं । जिन्हें सर्व प्रथम आहून किया जाता है, वे इन्द्र हमारा कल्याण करें । हे इन्द्र ! तुम हर्यश्वों के स्वामी हो । हमको सुख-सन्तान से सौभाग्यशाली बनाओ । तुम हमारे प्रतिकूल मत होना तथा किसी प्रकार भी हमारा अनिष्ट न करना ।८। हमारे शत्रू इन्द्र के प्रभाव से पलायन करें । हम उन्हीं इन्द्राग्नि को अनुकूलता प्राप्त कर जीत लें । आदित्य-गण, वसुगण और रुद्रगण मुझे समान पुरुषों में श्रेष्ठ बनावें । वे हमें बली, मेधावी और धनवान् करें ।९। (१६)

सूक्त १२९

(ऋषि:—प्रजापति: परमेष्ठी: । देवता—भाववृत्तम् । छन्द-त्रिष्टुप्)

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीव: कुह कस्य शर्मन्नम्भ: किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१
न मृत्युराशीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेत: ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर: किं चनास ॥२
तम आसीत्तमसा गूलहमग्रेऽप्रकेत सलिल सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहित यदासीत्त पसस्तन्महिनाजायतै म् ॥३
काभस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतिष्या कवयो मनीषा ॥४
तिरश्चोनो विततो रश्मिरेषामध: स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयति: परस्तात् ॥५
को अद्धा वेद न इह प्रवोचत्कुत आजाता कुल इयं विसृष्टि: ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो आस्याध्यक्ष: परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७।१७

प्रलयकाल में असत् नहीं था । सत्य भी उस समय नहीं था । पृथिवी आकाश भी नहीं थे । आकाश में स्थित सप्तलोक भी नहीं थे । तब कौन यहाँ रहता था ? ब्रह्माण्ड कहाँ था ? गम्भीर जल भी कहाँ था ? उस समय अमरत्व और मृतत्व भी नहीं था । रात्रि और दिवस भी नहीं थे । वायु से शून्य और आत्मा के अवलम्ब से श्वास प्रश्वास वाले एक ब्रह्ममात्र ही थे । उनके अतिरिक्त सब शून्य थे ।२। सृष्टिरचना से पूर्व अन्धकार ने अन्धकार को आवृत्त किया हुआ था । सब कुछ अज्ञात था । सब ओर जल ही जल था । वह पूर्व व्याप्त ब्रह्म भी अविद्यमान पदार्थ से ढका था । वही एक तत्व तप के प्रभाव से विद्यमान था ।३। उस ब्रह्म ने सर्व प्रथम

सृष्टि-रचना की इच्छा की। उससे सर्व प्रथम बीज का प्राकट्य हुआ। धाव जनों ने अपनी बुद्धि के द्वारा विचार करके अप्रकट वस्तु को उत्पत्ति कल्पित की। ४। फिर बीज धारण कर्त्ता पुरुष की उत्पत्ति हुई। फिर महिमाएँ प्रकट हुईं। उन महिमाओं का कार्य दोनों पार्श्वों तक प्रशस्त हुआ। नीचे स्वधा और ऊपर प्रयति का स्थान हुआ।५। प्रकृति के तत्व को कोई नहीं जानता तो उनका वर्णन कौन कर सकता है? इस सृष्टि का उत्पत्ति-कारण क्या है? विभिन्न सृष्टियाँ किस उपादान कारण से प्रकटीं? देवगण भी इन सृष्टियों के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं, तब कौन जानता है कि यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई? ।६। यह विभिन्न सृष्टियाँ किस प्रकार हुईं? इन्हें किसने रचा? इन सृष्टियों के जो स्वामीहैं दिव्यधाम में निवास करते है, वही इनकी रचना के विषय में जानते हैं। यह भी सम्भव है कि उन्हें भी यह सब बातें ज्ञात न हों।७। (१७)

सूक्त १३०

(ऋषि—यज्ञः प्रजापत्यः। देवता—भाववृत्तम्। छन्द·जगती त्रिष्टुप्)

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१
पुमां एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन्।
इमे मयूचा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रु स्तसराण्तोतवे ॥२
कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमसीत्परिधिः क आसीत्।
छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३
अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव।
ननूष्टु भा सोम उक्थैर्महस्वान्बृ हयी वाचमावत् ॥४
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः।

विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥५

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इम यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥६

सहस्तामाः सहछदस आवृतः महप्रभा ऋषय सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥७।८

सब ओर सूत्र को विस्तृत कर यज्ञ रूप वस्त्र को बुनते हैं देवताओं के किये गये अनेकों अनुष्ठानों द्वारा इसे विस्तृत किया गया। जो पितरगण यज्ञ में पधारे हैं, वही इस वस्त्र को बुनते हुये कहते हैं–'लम्बा बुनों चौड़ा बुनो ।१। एक वस्त्र को लम्बा करते और दूसरे पितर उसे चौड़ाई के लिये विस्तृय करते हैं। सब ज्योतिर्मान देवगण इस यज्ञ मण्डप में विराजमान हैं। इस बुनाई के कार्य में साम-मन्त्रों का ही ताना बना डाला जाता है ।२। देवताओं ने जब प्रजापति का यज्ञ किया तब उस यज्ञ की सीमा क्या थी ? देवताओं की मूर्ति कैसी थी ? यज्ञ की परिधियाँ क्या थी ? छन्द और उक्थ कौन से थे ? संकल्प कौन-से होते थे ? ।३। उष्णिक् छन्द सविता का सहायक था, गायत्री, छन्द अग्नि का सहायक हुआ, अनुष्टुप् छन्द साम के अनुकूल हुआ, उक्थ छन्द सूर्य का साथी हुआ और वृहती छन्द वृहस्पति का आश्रित हुआ ।४। विराट् छन्द मित्रावरुण के साथ हुआ, त्रिष्टुप् छन्द, दिवस और सोम का साथी बना, जगती छन्द अन्य देवताओं का आश्रित हुआ। इस प्रकारऋषियों ने यज्ञ-कार्य किया ।५। प्राचीन काल में जब यज्ञ का आरम्भ हुआ तब हमारे पूर्वज ऋषि और मनुष्यों ने विधि पूर्वक यज्ञ को सम्पन्न किया ।जो प्राचीन काल में यज्ञानुष्ठाता हुए, मैं उन्हें अपने हृदयरूप चक्षु से उस समय देख रहा हूं ।६। दिव्य रूप वाले स्तोत्रों और छन्द को एकत्र कर बारम्बार यज्ञानुष्ठान किया और तभी यज्ञ का काल निश्चित किया। सारथि जैसे अश्व के लगाम का ग्रहण करता है, उसी प्रकार मेधावी ऋषियों ने पूर्वजों के अनुसार ही अनुष्ठान सम्पन्न किया ।७।

सूक्त १३०

(ऋषिः - सुकीर्तिः काक्षीवतः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

आप प्राच ईन्द्र विश्वाँ अमित्रानपपाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदम् ।।१
कुविदंग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैंषाँ कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ।।२
नहि स्थूर्यंतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषण वाजयन्तः ।।३
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ।।४
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैदसनाभि ।
यत्सुरामं व्यपिवः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ।।५
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृलीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।।६
तस्य वतं सुमतौ यज्ञियस्थापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुयर्युं योतु ।।७।१९

हे इन्द्र! तुम शत्रुओं के जीतने वाले हो। हमारे चारों ओर जो शत्रु अवस्थित हैं, तुम उन्हें दूर भगाओ। हम तुम्हारे द्वारा विशिष्ट कल्याण को प्राप्त करें और सदा सुखी रहें ।१। जिन कृषकों की खेती में जो उत्पन्न होता है, वे अपने उस जौ को पृथक् पृथक् कर अनेक बार काटते हैं। उसी प्रकार हे इन्द्र! जो अनुष्ठाता यज्ञ में नमस्कार नहीं करते अथवा जो पुरुष यज्ञ-विमुख हैं, उन पापियों के खाद्यान्न को बारम्बार कष्ट करने वाले होओ ।२। जिस शंकट में एक चक्र ही है, वह शंकट कभी अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त नहीं हो सकता। उस शंकट के संग्राम के अवसर

पर अन्न लाभ की आशा नहीं की जा सकती । गौ, अश्व, अन्न और धनादि की कामना करने वाले मेधावी पुरुष इन्द्र की मैत्री के लिये यत्न करते हैं ।३। अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों मंगलमय हो । जब इन्द्र ने नमुचि के साथ संग्राम किया था, तब तुम दोनों ने इन्द्र से मिलकर सोम पान किया और रणक्षेत्र में उसके सहायक हुए ।४। हे अश्विनी-कुमारो ! माता-पिता जैसे अपने पुत्र का पालन करते हैं, वैसे ही तुमने श्रेष्ठ सोम-रस को पीकर अपने बल से इन्द्र की रक्षा की । हे इन्द्र ! उस समय बुद्धि को देने वाली सरस्वती भी तुम्हारे अनुकूल थी ।५।इन्द्र सर्वज्ञ हैं । वे ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ रक्षक हैं वे हमारी रक्षा करें और सुख प्रदान करें, वे शत्रुओं को दूर भगाकर हमारे भय को नष्ट करें । हम श्रेष्ठ बल को प्राप्त करें । यज्ञ का भाग करने वाले इन्द्र की प्रसन्नता को हम पावें । वे हम से हर प्रकार सन्तुष्ट रहें । वे हमारे निकटस्थ और दूर देशीय शत्रु को हमारी दृष्टि से करे । ६ । (१९)

सूक्त १३२

ऋषि—शकपूता नार्मेध: । देवता—लिंगोक्ता मित्रावरुणौ,
छन्द—बृहती, पंक्तिः)

ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसुरीनां भूमिरभि प्रभूषणि ।
इजानं देवावश्विनावभि सुम्नरवधताम् ।।१
ता वां मित्रावरुणा धारयैत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि ।
युवोः क्राणाय संख्यैरभिष्याम रक्षसः ।।२
अधा चिन्नु यद्दिविषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।
दद्वाँ वः यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ।।३
असावन्या असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।
मूर्धा रथस्य चाकन्नै तावतैनसान्तकध्रुक् ।।४

अस्मिन्त्स्वे तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान्हन्ति वीरान् ।
अवोर्वा यद्धात्तनूष्वः प्रियासु यज्ञियास्वर्वा ॥५

युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः ॥६

युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधयस्त्रे सुमेधस्तत्रे अहसः ॥७।२०

यज्ञानुष्ठान करने वाले के लिए ही दिव्य धनों की प्राप्त होती है वही पार्थिव धनों को प्राप्त करता है। अश्विनीकुमार उसे विभिन्न सुखों से सम्पन्न करते हैं।१। हे मित्राबरुण! तुमने पृथिवी को धारण किया है। हम श्रेष्ठ ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए पूजन करते हैं। यजमान से तुमने जो मैत्रीभाव स्थापित किया है उसके द्वारा हम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।२। हे मित्र और वरुण देवता! तुम्हारे निमित्त जब हम यज्ञ सामग्री जुटाते हैं, तभी हम अपने इच्छित धन को अपने पास उपस्थित रखते हैं। यह दान करने वाला यजमान जब धन प्राप्त करता है, तब कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता। ३। हे बलवान् मित्र देवता! सूर्यमंडल स्थित सूर्य का तेज तुमसे भिन्न है। हे सबके राजा वरुण! तुम्हारे रथ का तीर्थस्थान इधर ही आता दिखाई दे रहा है। यह हिंसक राक्षसों का नाश करने वाला है। अतः अकल्याण इसका स्पर्श भी नहीं कर सकता।४। मुझ शकपूत का पाप दुष्ट प्रकृति वाले राक्षसों का नाश करे। मित्र देवता मेरा हित करने वाले हों। वही मेरे शरीर की रक्षा करने वाले हों। हमारे श्रेष्ठ से श्रेष्ठ यज्ञीय पदार्थों की भी मित्र रक्षा करें।५। हे मित्रावरुण तुम अदिति के पुत्र हो। तुम अत्यन्त मेधावी हो। आकाश-पृथिवी को जल से शोधित करो। नीचे के इस लोक

को श्रेष्ठ पदार्थों से पूर्ण करो। सूर्य को रश्मियों के द्वारा संपूर्ण लोक को सुख आरोग्य प्रदान करो ।६। तुम अपने कर्म बल से ही सबके अधीश्वर हुए हो। तुम्हारा जो रथ वन में विचरण करता है, वह रथ अश्वों के वहन करने योग्य बने। जब सब शत्रु-क्रोध से कोलाहल करें, तब नृमेध, ऋषि विपत्ति से मुक्त हों ।७।

सूक्त १३३

(ऋषि-सुदः पैजवनः । देवता-इन्द्रः । छन्द-शक्वरी, पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभी के चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१
त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परिष्वजामहे ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२
विषु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३
यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिः ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४
यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर मही व द्यौरध त्मना ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥५
वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता ।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥६

अस्मभ्यं सु त्व मिन्द्र तां शिक्षया दोहते प्रतिवरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोऽध्नी पीपयद्यथा न सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥७।२१

इन्द्र के रथ के आगे उनकी सेना उपस्थित है । तुम सेना का भले प्रकार पूजन करो । संग्राम भूमि में शत्रु जब समीप आकर युद्ध करता है तब इन्द्र पीछे नहीं हटते और वृत्र को मार डालते हैं । वही इन्द्र हमारे स्वामी है । वे हमारी ओर ध्यान दें । उनके प्रभाव के शत्रुओं का ज्या टूट जावे ।१। निम्न स्थान में जाती हुई जल राशि को हे इन्द्र ! तुमने ही प्रवाहित किया है । तुमने ही मेघ को विदार्ण किया । शत्रु तुम्हें हिंसित नहीं कर सकता, क्योंकि तुम किसी के द्वारा जीते नहीं जा सकते । तुम संसार का पालन करने वाले हो । हम तुम्हें सब से अधिक मानकर तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुए हैं । तुम्हारे प्रभाव से शत्रुओं की ज्या टूट जाय ।२। अदानशील शत्रु हमारी दृष्टि से ओझल हो जांय । हमारी हिंसा कामना करने वाले शत्रुओं का संहार करो । जब तुम देने की इच्छा करो, तब हम धन प्राप्त करें । शत्रुओं की ज्या टूट जाय ।३। हे इन्द्र ! जो भेड़िया के समान हिंसा वृत्ति वाले प्राणी हमारे सब ओर विचरण करते हैं, उन्हें मारकर पृथिवी पर गिरादो । क्योंकि तुम शत्रुओं को संकटग्रस्त करते और उन्हें हराते हो । उन शत्रुओं की ज्या टूट जाय ।४। हे इन्द्र ! हमसे निम्न श्रेणी के समान जन्म वाले जो शत्रु हमारा अनिष्ट चिंतन करें, उनको वैसे ही अधोगति दो जैसे आकाश से सभी पदार्थ नीचे रहते हैं । इन्द्र ! हमारे शत्रुओं की ज्या छिन्न हो जाय ।५। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे आज्ञानुवर्ती हैं । हम तुम्हारी मैत्री के लिए सदा यत्नशील रहते हैं । तुम हमें पुण्य मार्ग पर चलने वाला करो । हम सभी पापों से मुक्त हों । हमारे शत्रुओं की ज्या टूट जाय । हे इन्द्र ! तुम हमको वह यत्न बताओ, जिससे स्तुति करने वाले की कामना सिद्ध हो । पृथिवीरूपिणी यह सुविस्तीर्ण गौ महान् स्तन वाली होकर सहस्र-धाराओं से दूध सींचे और हमें तृप्ति प्रदान करे ।७। (२१)

सूक्त १३४

(ऋषि--मान्धाता यौवनाश्वः, गोधा । देवता--इन्द्रः ।

छन्द--पंक्ति)

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइव: ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।१
अव स्म दुर्हणायता मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति
देवी जनीत्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।२
अब त्या बृहतीरियो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभि
र्देवो जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।३
अव यत्त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभि
र्देवो जनत्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।४
अव स्वेदा इवाभितो विष्वक् पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वायाइव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मति
र्देवो जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।५
दीर्घं ह्यङ्कुशं यथाशक्ति बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथायमो
देवो जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।६
नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभावहे ।।७।२२

हे इन्द्र ! उषा के समान तुम भी आकाश-पृथिवी को अपने तेज से भर देते हो । तुम मनुष्यों के ईश्वर और महान् से भी महान् हो । तुम अपनी कल्याणमयी माता अदिति की कोख से उत्पन्न हुए हो ।१। हे इन्द्र ! जो दुष्ट स्वभाव वाला व्यक्ति हमारे वध की इच्छा करता है, वह महाबली हो तो भी तुम उसे बलहीन कर देते हो । तुम हमारे अनिष्ट चिंतक शत्रु को पृथिवी पर गिराते हो । तुम अपनी कल्याणमयी माता द्वारा उत्पन्न हुए हो ।२। हे इन्द्र ! तुम शत्रूओं का नाश करने वाले एवं अत्यन्त बली हो । सबको सुखी करने वाले अपने महान् अन्न को अपने बल से हमारी ओर भेजो और हमारी रक्षा भी करो । तुम अपनी मङ्गलमयी माता द्वारा उत्पन्न हुए हो ।३। हे इन्द्र ! तुमने सैकड़ों कर्म किये हैं । तुम जब विभिन्न प्रकार के अन्नों को प्रेरित करते हो, तब सोम-याग करने वाले यजमान का अपनी असीम महिमा से पालन करते हो । तुम ही उसे धन प्रदान करते हो । तुम अपनी मङ्गलमयी माता द्वारा उत्पन्न हुए हो ।४। जैसे स्वेद सब ओर गिरता हैं, वैसे ही इन्द्र के आयुध सब ओर गिरें । वे आयुध सबको व्याप्त करने वाले हों । हम कुबुद्धि से मुक्ति पावें । तुम अपनी मङ्गलमयी माता अदिति की कोख से उत्पन्न हुए हो ।५। हे इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्य वाले और मेधावी हो । अंकुश जैसे हाथी को वश में रखता है, वैसे ही वश में रखने वाले 'शक्ति' नामक आयुध को तुम धारण करते हो । अपने पाँवों से छाग जैसे वृक्ष की शाखा को खींचता है, उसी प्रकार तुम आयुध से खींच कर शत्रु को धराशायी करते हो । तम अपनी मङ्गलमयी माता की कोख से उत्पन्न हुए हो ।६। हे देवगण तुम्हारे कर्म में हम त्रुटि नहीं करते । हमारे कार्य में शिथिलता या उदासीनता का पुट नहीं है । हम विधिपूर्वक और मंत्रों द्वारा अनुष्ठान कर्म करते हैं । हम यज्ञीय पदार्थों को एकत्र कर अनुष्ठान का सम्पन्न करते हैं ।७। (२२)

———

सूक्त १३५

(ऋषि—कुमारो यामायनः । देवता—यमः । छन्द—अनुष्टुप्)

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः सम्पबते यमः ।
अत्रो नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥१

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।
असूयन्नभ्य चाकाशं तस्मा अस्पृ हयं पुनः ॥२

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसोकृणोः ।
एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥३

यं कुमार प्रावतयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् । ४

कः कुमारभजनयद्रथं को निवर्तयत् ।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयो यथाभवत् ॥५

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत् ।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयण कृतम् ॥६

इमं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयतस्य धम्यते नालीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥७।२३

सुन्दर पत्तों से सुशोभित जिस वृक्ष पर देवताओं के साथ बैठे हुए यम सोमपान करते हैं, मैं उसी वृक्ष पर जाकर बैठूँ और अपने पूर्वजों का साथी होऊँ। इससे हमारे पिता की कामना पूर्ण होगी ।१। मैंने अपने पिता की दयारहित 'पूर्व पुरुषों का साथी' होने वाली बात के प्रति विरक्ति प्रकट की थी । परन्तु अब मैंने उस विरक्ति को त्याग कर अनुरक्ति को ग्रहण किया है ।२। हे नचिकेतकुमार ! तुमने बिना चक्र के नवीन रथ की कामना की थी । तुम उस रथ में ईर्ष्या भी नहीं चाहते

थे। तुम्हारी इच्छा थी कि वह रथ सर्वत्र गमनशील हो। परन्तु तुम बिना समझे ही उस रथ पर सवार हो गये हो।३। हे कुमार! तुमने अपने बन्धु-बाँधवों का त्याग कर उस रथ को हाँक दिया। उस रथ में तुम्हारे पिता के सांत्वनापूर्ण वचनों ने गति उत्पन्न की है। उनका यह वचन नौका रूप आश्रय हुआ है। उस नौका पर अवस्थित होकर वह रथ यहाँ से दूर चला गया।४। इस बालक को किसने उत्पन्न किया? किसने इस रथ को भेजा? यह बालक प्राणियों के लोक में किस प्रकार पहुँचेगा, उस बात को कौन कहने वाला है?।५। प्राणियों के लोक मे यह बालक जिसके द्वारा पहुंचेगा यह बात प्रथम ही बता दी गई है। पहले पिता का उपदेश और फिर प्रत्यागमन की बात प्रकट हुई।६। यह यजमान का धाम है यह देवताओं द्वारा निर्मित बताया जाता है। यहाँ यजमान को सुख देने के लिये वेणु-वादन होता और तब स्तुतियों के द्वारा यजमान अलङ्कृत होते हैं।७। (२३)

सूक्त १४६

(ऋषि-मुनयो वातरशनाः । देवता—केशिनः । छन्द—अनुष्टुप्)

केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥१

मुनयो वातरशनः पिशङ्गा वसते मला।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षतः ॥२

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम्।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥३

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत्।
मुनिर्देवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥४

वातस्याश्वो वायाः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्वं उतापरः ॥५

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदित्तमः ॥६

वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणीपिबत्सह ॥७।२४

अग्नि और सूर्य जल तथा आकाश-पृथिवी के धारण कर्त्ता हैं । वही सम्पूर्ण जगत् को अपने प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं । यही ज्योति केशी रूप से वर्णित हैं ।१। बातरसन वंशज ऋषि पीत वल्कल धारण करते हैं और देवत्व को प्राप्त होकर वायु वेग से गमन करने में समर्थ हुए हैं ।२। हमने सब लौकि व्यवहारों का त्याग कर दिया । अब हम उन्मुक्त हो गए । हम वायु से भी ऊँचे चढ़ गए । हमारी आत्मा वायु में मिल गई । तुम हमारे देह को ही देखते हो ।३। वे ऋषिगण आकाश में उड़ कर सब पदार्थों को देखने में समर्थ हैं । जहां जितने देवता निवास करते हैं, वे सबसे स्नेह करने वाले एवं बन्धु के समान हैं वे सत्याचरण करते हुए ही अमृतत्व को प्राप्त हुये हैं ।४। वे ऋषिगण अश्व रूप होकर वायु मार्ग पर विचरण करते हैं । वे वायु के सहगामी हुये हैं । देवगण उनसे मिलने की कामना करते हैं । वे पूर्व-पश्चिम स्थित समुद्रों में निवास करने वाले हैं ।५। अप्सराओं, गन्धर्वों और हरिणों में विचरण-शील केशी देव सभी जानने योग्य विषयों के ज्ञाता हैं । वे रस के उत्पन्न करने वाले, सबके मित्र और सुख प्रदान करने वाले हैं । जब केशी देवता रुद्र के साथ जल पीते हैं, तब वायु उस जल को कम्पित करते हैं और कठिन माध्यमिकी वाक् को क्षीण करते हैं ।७। (२४)

सूक्त १३७

(ऋषि—सप्तऋषय ऐकर्चाः । देवता—विश्वदेवा । छन्द—अनुष्टुप्)

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुष देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धारा परावतः ।
दक्षं ते अन्य वा वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥२
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥३
आ त्वागमं शन्तातिभिरथा अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं ते भद्रमाभार्ष परा यक्ष्म सुवामि ते ॥४
त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥५
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु मेषजम् ॥६
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥७।२५

हे देवगण ! मुझ गिरे हुए को उन्नत करो। मुझ अपराधी को अपराध मुक्त करो। हे देवताओ ! मुझ उपासक की आयु को दीर्घ करो ।१। समुद्र के स्थान तक दो वायु प्रवाहमान हैं। हे स्तोता ! एक वायु तुम में बल भरदे और दूसरी वायु तुम्हारे पापों को नष्ट कर दे ।२। हे वायो ! तुम इस ओर प्रवाहित होकर औषधि को यहाँ लाओ और जो हमारे लिये अमङ्गल का कारण है उसे यहाँ से दूर ले जाओ। हे वायो ! तुम भोषज रूप हो और देवताओं के दूत रूप में सर्वत्र गमन करते हो ।३। हे यजमान। तुम्हें हिंसा से बचाने वाली राक्षसों के साथ कल्याण करने के लिये यहाँ आया हूँ। मैंने तुम में श्रेष्ठ वल स्थापित करने का कार्य भी किया है। मैं तुम्हारे रोगों को भी दूर कर रहा हूँ

।४। देवगण, मरुद्गुण और संसार के सब प्राणी इनके अनुकूल हों। यह पुरुष आरोग्य-लाभ करें ।५। जल औषधि रूप है, यह सभी रोगों को दूर करने वाली औषधि के समान गुणकारी है। यही जल तुम में औषधि के सब गुण स्थापित करें ।६। वाणी के साथ जिह्वा गति करती है। दोनों हाथ दस उँगलियों से युक्त हैं। तुम्हारे रोग को दूर करने के लिये अपने दोनों हाथों से तुम्हारा स्पर्श करता हूँ ।७। [२५]

सूक्त १३८

(ऋषि-अङ्ग औरवः। देवता-इन्द्र। छन्द—जगतीः।

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥१
अवासृजः प्रस्व श्वञ्चो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम्।
अवधयो वनिनो अस्य दंससा शुशोचसूर्य ऋतजातया गिरा ॥२
वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विददृदासाय प्रतिमानमार्यः।
दृलहानि पिप्रारसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवां ऋजिश्वना ॥३
अनाधृष्टानि घृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवां अमृणदयास्यः।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरश्रृणाद्विरुक्मता ॥४
अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥५
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम्।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरित प्रधिंपिता॥६।२६

हे इन्द्र तुम्हारा बन्धुत्व प्राप्त करने के लिये अनुष्ठाताओं ने यज्ञीय द्रव्य एकत्र कर बलासुर का बध किया। उस समय तुम्हारी स्तुति की गई। तुमने कुत्स को सूर्योदय के दर्शन कराए और जल को प्रवाहित कर वृत्र के सब कर्मों को व्यर्थ कर दिया।१। हे इन्द्र! तुमने माता के समान जल को छोड़ा और पर्वतों में उसे मार्ग दिखा दिया। तुमने ही पर्वत स्थित गौओं को हांका और मधुर सोम-रस का पान किया। तुमने

वृष्टि प्रदान द्वारा वृक्षों को पुष्ट किया। तुम्हारे ही कर्म से सूर्य तेजस्वी हुए और श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति की गई ।२। सूर्य ने अपने रथ को आकाश-मार्ग पर अग्रसर किया। उन्होंने देखा कि उपासक दस्युओं को हराने में समर्थ नहीं है। इन्द्र ने ऋजिश्वा से मैत्री स्थापित की और पिप्रु नामक राक्षस की माया का नाश कर दिया।३। इन्द्र ने शत्रुओं की विकराल सेनाओं का सहार कर डाला। जैसे-सूर्य भूमि से रस को खींचते हैं, वैसे ही उन्होंने शत्रुओं के नगरों से धन को खींच लिया। इन्द्र ने उपासकों की स्तुतियों को स्वीकार कर अपने तेजस्वी आयुध से शत्रु को भूमि पर गिराया ।४। इन्द्र की सेना से युद्ध करने में समर्थ कोई नहीं है। उसने सब ओर गमन करने और शत्रुओं को चीरने वाले वज्र से वृत्र को पतित किया। इन्द्र के उस वज्र से शत्रु भयभीत हों। जब इन्द्र चलने को प्रस्तुत हुए तब उषा ने अपने शकट को चलाया ।५। हे इन्द्र! सब वीर कर्म तुम्हारे ही कहे जाते हैं। तुमने ही यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षस का हनन किया था। तुमने ही अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के गमन-मार्ग को बनाया। जब वृत्र सूर्य के रथ के पहिये को पृथक् करता है, तब सबके पिता स्वर्गलोक तुम्हारे द्वारा ही उस चक्र को व्यवस्थित कराते हैं ॥६॥ (२६)

सूक्त १३९

(ऋषि -- विश्वावसुर्देवगन्धर्वः। देवता—सविता। छन्द—त्रिष्टुप्)

सूर्य रश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयां अजस्रम्।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥१
नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्।
स विश्वाचीरभि चष्टे धृताचीरन्तरा पवमपरं च केतुम् ॥२
रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः।
देवइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥३
विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन्।
तदन्ववैदिन्द्रो रारहण आसाँ परि सूर्यस्य परिधींरपश्यत् ॥४

विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।
यद्वा घा सत्यमत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ।५
सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ॥६।७

सविता देवता रश्मियों से सम्पन्न और तेजस्वी हैं। उनके केश स्वर्णिम हैं। वे पूर्व की ओर आकर प्रकाश को प्रकट करते हैं उन मेधावी के उत्पन्न होने पर ही पूषा देवता आगे जाते हैं। वे सम्पूर्ण जगत् के द्रष्टा हैं वही सब प्राणियों की रक्षा करते हैं।१। सविता देव मनुष्यों पर अनुग्रह करते हुए सूर्य मण्डल में निवास करते और द्यावा पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं। वही सब दिशाओं और कोणों को प्रदर्शित करते और पूर्व पर मध्य और प्रान्त आदि भागों को भी प्रकाश देते हैं।२। सूर्य धन के कारण रूप है। सम्पत्तियाँ उन्हीं के आश्रय में एकत्र होती हैं। देखने योग्य पदार्थ को वे अपनी महिमा से प्रकाशित करते हैं। वे जिस कार्य को करते हैं वह सिद्ध होता है। जहाँ समस्त धन एकत्र होता है, वहाँ वे इन्द्र के समान, दण्ड के समान होते हैं।३। हे सोम ! जब स्मित जल ने विश्ववसु को देखा तब यह पुण्य कर्मों के प्रभाव से अद्भुत रूप में वह निकला। जल को प्रेरित करने वाले इन्द्र ने जब उक्त बात को जाना तब उन्होंने सूर्य मंडल का सब ओर से निरीक्षण किया।४। जल के रचने वाले विश्वावसु दिव्यलोक में निवास करते हैं। वे हमें सब बतावें। जो बात ज्ञात नहीं है अथवा सत्य है, उसे जानने वाली हमारी बुद्धि की भी वे रक्षा करें।५। इनको नदियों के निम्न भाग में स्थित एक मेघ दिखाई दिया। उन्होंने पोषणमय द्वार को खोला। विश्वावसु ने उन्हें सब नदियों की बात बताई। वे इन्द्र मेघों के चल के भले प्रकार ज्ञाता हैं।६। (२७)

सूक्त १४०

(ऋषि—अग्निः पावकः। देवता—अग्नि। छन्द-पंक्तिः त्रिष्टुप्)

अग्ने तव श्रवो वयो भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि कवे ॥१
पावकवर्चा शक्रवर्चा अनूनवर्चा उदर्यषि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥४
इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतस क्षयन्त राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५
ऋतावानं महिष विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६।२८

हे अग्ने ! तुम्हारा अन्न प्रशंसा के योग्य है। तुम्हारी ज्वालाऐं अद्भुत तेज वाली हैं। प्रकाश ही तुम्हारा धन है । तुम कर्म करने में चतुर हो और दानशील व्यक्ति को श्रेष्ठ धन देने वाले हो ।१। हे अग्ने ! जब तुम अपने तेज के साथ उदय को प्राप्त होते हो, तब तुम्हारा तेज सभी को पवित्र करता है । तुम आकाश-पृथिवी को स्पर्श करते । तुम उनके पुत्र हो और वे तुम्हारी माता हैं । अतः तुम उनके सामने क्रीड़ा करो ।२। हे अग्ने ! तुम मेधावी और तेज से उत्पन्न हुए हो । तुम्हें श्रेष्ठ स्तुतियों के द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है। हमने विभिन्न प्रकार की यज्ञ-सामग्री तुम में आहुत की है ।३। हे अग्ने ! तुम विनाश-रहित हो । तुम अपनी नवोदित रश्मियों से अलंकृत होकर हमारे धन की वृद्धि करो। तुम श्रेष्ठ रूप वाले होकर सर्व फलदाता यज्ञ में विराजमान होते हो ।४। हे अग्ने ! तुम यज्ञ को सुशोभित करने वाले, मेधावी, अन्न प्रदान करने वाले और श्रेष्ठ पदार्थ समर्पित करने वाले हो । तुम हमें श्रेष्ठ अन्न और सब फल उत्पन्न करने वाला धन प्रदान करो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ।५। सुख की प्राप्ति के लिए यज्ञ-योग्य, सर्वदर्शक और प्रवृद्ध अग्नि को मनुष्यों ने उत्पन्न किया है । हे अग्ने ! तुम दिव्यलोक में निवास करने

वाले हो । तुम्हारा कान सब बातें सुनने में समर्थ है, इसलिये सब यजमान तुम्हारा स्तवन करते हैं ।६। (२८)

सूक्त १४१

(ऋषि—अग्निस्तापसः । देवता—विश्वेदेवताः । छन्द—अनुष्टुप्)

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥१
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः स बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥२
सोम राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥३
इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ॥४
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥५
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥६।२९

हे अग्ने ! तुम हम पर प्रसन्न होओ । हमें उचित उपदेश दो । हे धनदाता ! हमें धन दान दो ।१। बृहस्पति, भग, अर्यमा तथा अन्य सब देवता, वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के सहित आकर हमें धन दें ।२। बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, अग्नि, आदित्यगण, प्रजापति और राजा सोम को हम अपनी रक्षा के लिए आहूत करते हैं ।३। इन्द्र, वायु, बृहस्पति का आह्वान करने से सुख की प्राप्ति होती है, इसलिये हम इनका आह्वान करते हैं । धनप्राप्ति के लिये सब हमारे अनुकूल हों ।४। हे स्तोतागण ! तुम बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, अर्यमा, सविता और सरस्वती से दान की याचना करो ।५। हे अग्ने ! तुम समस्त अग्नियों से मिल कर हमारे यज्ञ को सम्पन्न करो और हमारे स्तोता की

वृद्धि करो। हमारे यज्ञ में धन-दाता देवताओं को दान के लिये आहूत करो ।६। (२६)

सूक्त १४२

(ऋषिः—शार्ङ्गा । देवता-अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् अनुष्टूप्)

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्य न्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ।१
प्रवत्ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपाइव त्मना ॥२
उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद्बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चक्रुधाम ॥३
यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम ॥४
प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥५
उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु॥६
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्य कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशां अनू ॥७
आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥८।३०

हे अग्ने ! यह जरिता ऋषि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारे समान अन्य कोई व्यक्ति हमारा स्वजन नहीं है । तुम्हारा निवास स्थान श्रेष्ठ है। हम तुम्हारे उत्ताप से दग्ध न हों, इसलिए अपनी तेजस्वी ज्वालाओं को हमसे दूर रखो ।१। हे अग्ने ! जब तुम अन्न की कामना करते हुए प्रकट होते हो तब तुम्हारी उत्पत्ति अत्यन्त सुन्दर होती है । तुम भाई के

समान सब लोकों को सुशोभित करते हो । तुम्हारी इधर-उधर गमनशील ज्वालाओं को देखकर हमारे स्तोत्र प्रकट हुए हैं । वे ज्वालाएँ पशुओं के स्वामी के समान अग्रगमन वाली होती हैं ।२। हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो । तुम जलाते समय बहुत तृणों को स्वयं ही छोड़ते हो । धन-धान्य सम्पन्न भू-भाग को तुम अन्न-रहित कर देते हो । इस प्रकार कोप करने वाली तुम्हारी ज्वालाओं के हम कोप-भाजन न हों ।३। जब तुम वृक्षों को ऊपर नीचे से दग्ध करते हो, तब लुटेरों के समान पृथक्-पृथक् गमन करते हो । जब तुम्हारे पीछे वायु प्रवाहित होता है, तब तुम उस हरे-भरे भू-भाग को उसी प्रकार अन्न रहित कर देते हो, जिस प्रकार नाई दाढ़ी मूँछों को साफ कर देता है ।४। अग्नि की ज्वालाऐं अनेक हैं, पर यह एक स्थान को ही गमन करती हैं । हे अग्ने ! तुम इनके द्वारा सम्पूर्ण जङ्गल को दग्ध करते हो और झुक-झुक कर ऊँचे स्थानों पर बढ़ जाते हो ।५। हे अग्ने ! तुम्हारे तेज बल और ज्वालाओं का उदय हो । तुम ऊपर नीचे जाओ आओ । सभी देवता तुमसे मिलें । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ।६।

सूक्त १४३

(ऋषि अत्रिः सांख्यः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप ।)

त्यं चिदत्रिमृतजुरमथमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो कवम् ।।१
त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत् ।
दृलहं ग्रन्थिं न विष्यतमत्रिं यविष्टमा रजः ।।२
नरा दयसष्ठवत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरां पुनः स्तोमो न विशसे ।।३
चिते तद्व सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ।।४
युवं भूगयु समुप्र ना रजसः पार ईङ्. खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासातये कृतम् ।।५

आ वां सुम्नैः शंयूइव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरोत्सं व पिप्युषीरिषः ॥६॥१

हे अश्विनीकुमारो ! यज्ञ करते-करते ही महर्षि वृद्ध हो गए, तुम दोनों ने उन्हें अश्व के समान गन्तव्य स्थान पहुंचने वाला बना दिया। कक्षीवान् ऋषि को तुमने जो युवावस्था प्रदान की, वह जीर्ण रथ को नवीन कर देने के समान थी ।१। अत्यन्त बली शत्रुओं ने अत्रि को द्रुतगामी अश्व के समान बांध रखा था। जैसे दृढ़ गांठ को खोलना कठिन होता है, वैसे कठिन बंधन से तुमने अत्रि को छुड़ाथा। तब वे युवा पुरुष के समान अपने स्थान को प्राप्त हुए ।२। हे अश्विद्वय । तुम उज्ज्वल वर्ण वाले और नेता हो। महर्षि अत्रि को बुद्धि देने की कामना करो। जब तुम ऐसा करोगे तब मैं फिर तुम्हारी स्तुति करूंगा ।३। हें अश्विनी-कुमारो ! तुम श्रेष्ठ अन्न वाले हो। हमारे महान् यज्ञ के आरम्भ होने पर जब तुमने उसकी रक्षा की तब हमें यह ज्ञात हुआ कि तुमने हमारे स्तोत्र को स्वीकार कर दिया ।४। समुद्र की तरङ्गों पर डूबते उतरते भुज्यु के लिए तुम पंख वाली नाव लेकर गये और समुद्र से उस पार लगाकर अनुष्ठान करने की सामर्थ्य प्रदान की ।५। हे अश्विद्वय ! तुम सबके जानने वाले और नेता हो। तुम दाता होकर अपने धन के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो। जैसे दूध से धन पूर्ण होता है, वैसे ही तुम हमें धन से पूर्ण करदो ।६॥ (१)

सूक्त १४४

(ऋषि–सुपर्णस्तार्क्ष्यपुत्र ऊर्ध्वकृशनो वा यामायनः। देवता—इन्द्रः।
छन्द–गायत्री, बृहती, पंक्ति)

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते । दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥१
अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥२
घृषुःश्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः । अव दीधेदहि शुवः ॥३
य सुपर्णं परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।

शतचक्रं तो ह्यो वर्तनि ॥४
यं ये श्येनश्चारुमवृकं परा भरदरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस एना जागार बन्धुता ॥५
एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥६।२

हे सृष्टि रचियता इन्द्र ! यह अमृत के समान मधुर सोम तुम्हारी ओर अश्व के समान गमन करता है । यह सोम बल का आश्रय रूप और प्राण के समान है ।१। इन्द्र दानशील हैं । उनका वज्र प्रशंसनीय है । वे इन्द्र उर्द्धवकृशन नामक स्तोता का रक्षक है । ऋभुगण के समान यह भी यज्ञ करने वाले का पालन करते हैं ।२। यह तेजस्वी इन्द्र अपने यजमानों के पास भले प्रकार गमन करते हैं । मुझ सुपर्णश्येन ऋषि के वंश को उन्होंने भली भाँति प्रवृद्ध किया है ।३। श्येन अत्यन्त दूर देश से सोम को ले आये । यह सोम सभी अनुष्ठानों के लिये श्रेष्ठ है । वह वृत्र-वध के लिये उत्साहवर्द्धन करता है ।४। वह लोहित वर्ण वाला श्रेष्ठ दर्शन और देवविमुखों द्वारा अदृश्य है । श्येन उसे अपने पञ्जे में रखकर ले आये । हे इन्द्र ! इस सोम को रस, प्राण और परमायु प्रदान करो और सोम निमित्त हमसे भी मित्रता स्थापित करो ।५। जब इन्द्र सोम-पान कर लेते हैं, तब वे हमारी भले प्रकार रक्षा करते हैं । हे श्रेष्ठकर्म इन्द्र ! हमें यज्ञ के लिये अन्न और आयु प्रदान करो । यह सोम यज्ञानुष्ठान के निमित्त ही निष्पन्न किया गया है ॥६॥ [२]

सूक्त १४५

(ऋषि—इन्द्राणी । देवता—उपनिषत्सपत्नीबाधनम् । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः ।)

इमा खनाम्योषधिं वलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।

सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥२
उत्तराहसुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥३
नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥४
अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहे ॥५
उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधाँ सहीयसा ।
मामनु प्र ते मनो वत्स गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥३

मैं उस अत्यन्त गुणवती, लतारूपिणी ओषधि को खोदता हूँ । इसके द्वारा सपत्नी को क्लेश दिया जाता है और पति को आकर्षित किया जाता है ।१। हे ओषधि ! तुम्हारे पत्तों का मुख ऊँचा है । तुम पति का प्रेम प्राप्त करने में कारणरूप हो । तुम्हें देवताओं ने ही इस योग्य बनाया है । तुम्हारा तेज अत्यन्त तीक्ष्ण है । तुम मेरी सपत्नी (सौत) को यहाँ से दूर करो और मेरे पति को मेरे वश में रहने वाला करो । हे औषधि ! तुम सर्वश्रेष्ठ हो । मैं भी तुम्हारी कृपा से प्रमुखों में प्रमुख होऊँ । मेरी सपत्नी निकृष्ट से निकृष्ट हो जाय ।३। सपत्नी किसी के लिये प्रिय नहीं होती, इसलिये मैं अपनी सपत्नी का नाम तक नहीं लेती । मैं उसे दूर से भी दूर भेज देना चाहती हूँ ।४। हे औषधि ! तुम अद्भुत शक्ति वाली हो । मेरा सामर्थ्य भी अद्भुत है । तुम मेरे पास आगमन करो तब हम और तुम दोनों अपने सम्मलित प्रयत्न से सपत्नी को निर्बल करें ।५। हे स्वामिन् ! यह महान् शक्ति वाली औषधि मेरे द्वारा तुम्हारे सिरहाने स्थापित की गई है । मैंने शक्तिशाली तकिया तुम्हारे सिरहाने को रखा है । जैसे गौ बछड़े की ओर जाती है और जल नीचे की ओर गमन करता हैं, वैसे ही तुम्हारा मन मेरी ओर गमनशील हो ॥६॥

सूक्त १४६

(ऋषि–देवमुनिरैरम्मदः । देवता–अरण्यानी । छन्द–अनुष्टुप्)

अरण्यान्यारण्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती ॥१

वृषारवायवदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानि महीयते ॥२

उत गावइवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानि सायं शकटीरिव सर्जति ॥३

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यानां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥४

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वायां यथाकामं नि पद्यते ॥५
आञ्जनगंधि सुरभि बह्वन्नाम कृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥७।४

हे अरण्यानी ! तुम देखते-देखते ही दृष्टि से ओझल हो जाते हो। तुम गाँव के मार्ग पर क्यों नहीं जाते ? क्या तुम एकाकी रहने में भयभीत नहीं होते ? ।१। कोई जन्तु बैल के समान शब्द करता और कोई 'चीं' करता हुआ ही उसका उत्तर-सा देता है, उस समय लगता है कि वे वीणा के प्रत्येक स्वर को निकालते हुए अरण्यानी का यज्ञ-गान करते हैं ।२। इस जङ्गल में कहीं गौऐं चरती हुई जान पड़ती हैं और कहीं लतागुल्म आदि से निर्मित कुटीर दिखाई पड़ती है। ऐसा भी लगता है कि सायंकाल में वनमार्ग से अनेक शकट निकल रहे हो ।३। अरण्यानी में निवास करने वाला व्यक्ति रात्रि में शब्द सुनता है। एक पुरुष वृक्ष से काष्ठ को काटता है ।४। कस्तूरी के समान ही अरण्यानी सौरभय हैं वह अन्न से परिपूर्ण है। पहले वहाँ कृषी का अभाव था। वह हरिणों की आश्रयदात्री

है । मैं इस प्रकार उस बृहद् अरण्यानी की स्तुति करता हूँ ।५। (४)

सूक्त १४७

(ऋषि—सुवेदाः शैरीषिः । देवता-इन्द्रः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप)

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्द्यवृत्र नर्यं विवेरपः ।
उदे यत्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥१
त्व मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टितु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥२
एषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुमघम् ।
अचन्ति तोके तनये परिष्टियु मेधसता वाजिनमह्वये धने ॥३
स इन्नु राय सुभृतस्य चाकनन्मद यो अस्यरह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥४
त्वं शर्धाय महिना गुणान् उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥५।५

हे इन्द्र ! तुम्हारा क्रोध अत्यन्त भीषण होता है । तुमने वृत्र का संहार कर विश्व का मङ्गल करने के लिए वृष्टि मार्ग की रचना की । यह आकाश-पृथिवी तुम्हारी आश्रिता हैं । हे वज्रिन् ! यह पृथिवी तुम्हारे भय से कम्पित होती है ।१। हे इन्द्र ! तुम प्रसन्नता के पात्र हो । अन्न का उत्पादन कल्पित करके तुमने अपनी महिमा से मायावी वृत्र को सङ्कटग्रस्त किया । गौ की कामना करने वाले उपासक तुमसे याचना करते हैं । सभी यज्ञों में आहुति के समय स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं ।२। हे पुरुहूत इन्द्र ! तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हो । अतः इन मेधावी स्तोताओं के समक्ष प्रकट होने की कृपा करो । यह तुम्हारे अनुग्रह से ही समृद्धशाली और बलवान् हुए हैं । पुत्र पौत्रों और विभिन्न इच्छित सम्पत्तियों और ऐश्वर्यों की प्राप्ति के निमित्त यह यज्ञानुष्ठान का आरम्भ कर अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र का पूजन करते हैं ।३। जो उपासक सोम-पान से उत्पन्न हर्ष इन्द्र को देना जानता है, वह अपने अभीष्ट धन की

याचना करता है। हे बलवान् इन्द्र ! तुम जिस यज्ञ-दान वाले पुरुष को समृद्ध करना चाहते हो, वह उपासक पुरुष शीघ्र ही अन्न धन और भृत्यादि से युक्त होता है ।४। हे इन्द्र ! बल की प्राप्ति के निमित्त विशेष प्रकार से तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। तुम हमें अत्यन्त धन और बल प्रदान करो। तुम रमणीय दर्शन वाले और मित्रावरुण के समान दिव्य ज्ञान के अधीश्वर हो । संसार के सभी दिव्य और भौतिक ऐश्वर्य को तुम ही हमारे लिये बांटते हो ।।५।।

सूक्त १४८

(ऋषि—पृथुर्वैन्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवाँसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवित यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः ।।१
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूलहमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ।।२
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोलह भक्षैः ।।३
इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दानृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ।।४
श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ।।५।६

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! हम अन्न एकत्र कर और सोम का निष्पादन करके तुम जिस स्तुति की कामना करते हो, उसे तुम्हारे निमित्त करेंगे। जो ऐश्वर्य तुम्हारेमनोनुकूल है उसे तुम हमें बहुसंख्यक रूप में प्रदान करने वाले होओ। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त होकर अपने उद्योग द्वारा ही सम्पत्ति-सम्पन्न हो जायेंगे ।१। हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ दर्शन वाले और वीर कर्मा हो । तुम उत्पन्न होते ही शर्य के तेज द्वारा दस्युओं को दूर करते हो। जो शत्रु गुफा में छिप जाता है अथवा जल में वास

करता है, उसे भी पराभूत करने में तुम समर्थ हो। जब वर्षा होगी तब हम सोमाभिषव करेंगे ।२। हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों के स्वामी हो। तुम मेधावी जनों के स्तोत्र प्राप्त करने की सदा अभिलाषा करते हो।तुम हमारी स्तुतियों से सहमति प्रकट करो। सोमाभिषव करके उसके द्वारा हमने तुम्हारी जो प्रीति प्राप्त की है, उसके द्वारा ही हम तुम्हारे आत्मीय बनें। हे इन्द्र ! जब तुम रथारूढ़ होकर आगमन करो, तब हम तुम्हें यह हविरत्न अर्पित करते हैं ।३। हे इन्द्र ! यह सब स्तोत्र प्रमुख हैं । यह तुम्हारे लिये ही उच्चारित किये गये हैं। तुम मुख्य से भी मुख्य पुरुषों को अन्न प्रदान करो। तुम्हारे प्रीति पात्र उपासक तुम्हारे निमित्ति ही यज्ञानुष्ठान करते हैं। तुम हमारे संचित स्तोत्रों की भले प्रकार रक्षा करो ।४। हे इन्द्र ! मैं पृथु तुम्हारा आह्वान करता हूं। तुम मेरे स्तोत्र को श्रवण करो। मैं अपने सुन्दर स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति कर रहा हूँ। हे इन्द्र ! मुझ वेनपुत्र ने इस घृतादि सामग्री वाले यज्ञानुष्ठान में उपस्थित होकर तुम्हारा स्तोत्र किया है। जैसे नदी का प्रवाह निम्नगामी होता है, वैसे ही अन्य सभी स्तोता तुम्हारे समक्ष झुक रहे हैं ।।५।। (६)

सूक्त १४९

(ऋषि—अर्चंहैरण्यस्तूप: । देवता—सविता । छन्द—त्रिष्टुप्)

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२
पश्चेदमन्यदभवद्यजत्र ममर्त्यस्य भुवनस्त भूता ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वोजातः स उ अस्यानु धर्म ॥३
गावइव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वा श्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥४
हरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥५।७

सविता देवता ने अपने विभिन्न कर्मों द्वारा पृथिवी को स्थिर किया है। उन्होंने सहारे के बिना आकाश को दृढ़ता से अधर में स्थापित किया है। उसी आकाश में समुद्र के समान दुर्धर्ष जल भी निवास करता है। कम्पित अश्व के समान यह मेघ राशि भी अपना शरीर भड़काती है। इसका स्थान उपद्रव रहित है। सवितादेव इसी से जल निकालते हैं।१। जिस अन्तरिक्ष में निवास करने वाले मेघ पृथिवी को भिगो देते हैं, उस अन्तरिक्ष को जल के पुत्र सवितादेव जानते हैं। उन्हीं सवितादेव ने पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यावा-पृथिवी को भी विस्तृत किया है।२।स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए अविनाशी सोम के द्वारा जिन देवताओं का यज्ञ किया जाता है, वे देवता सविता के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं। शोभामय पंख वाले गरुड़ ने सवितादेव से प्रथम जन्म लिया था। उन्हीं सविता देव की धारण क्रिया के आश्रय में वे रहते हैं।३। सबकी प्रार्थना के योग्य सवितादेव स्वर्ग को धारण करने वाले हैं। जैसे गौ ग्राम की ओर आने को उत्सुक होती है, वैसे ही सविता हमारे पास आगमन करने को उत्सुक होते हैं। जैसे प्रसूता धेनु दूध पिलाने के अभिप्राय से बछड़े की ओर जाती है,जैसे वीर अश्व की ओर गमन करता है, वैसे ही सविता भी याज्ञिकों की ओर गमन करते हैं।४। हे सवितादेव ! अङ्गिरा वंशज मेरे पिता ने जिस प्रकार अपने यज्ञ में तुम्हारा आह्वान कियाथा,उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी शरण प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता हुआ परिचर्या करता हूं। जैसे यजमान सोम को निष्पन्न करने में उत्साहित होता है वैसे ही तुम्हारे कर्म में उत्साहित हूं।५। (७)

सूक्त १५०

(ऋषि—मृलीको वसिष्ठा । देवता—अग्नि । छन्द—बृहती, जगती)

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
आदित्यै रुद्रै र्वसुभिर्न आ गहि मृलीकाय न आ गहि ॥१
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
मर्तासस्त्वा समिधाम हवामहे ॥२

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृलीकाय प्रियव्रतान् ॥३
अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृलीकं धनसातये ॥४
अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृलीकाय पुरोहितः ॥५।८

हे अग्ने ! तुम देवताओं के निमित्त हव्य वहन करते हो । तुम प्रज्वलित और प्रदीप्त हुए हो । तुम हमारे इस यज्ञानुष्ठान से आदित्यगण, वसुगण और रुद्रगण के सहित आगमन करो और कल्याण उपस्थित करो ।१। हे अग्ने! यह यज्ञभूमि है, यह स्तोत्र है । तुम यहाँ आकर इनका अनुमोदन करो । तुम प्रदीप्त हो गये हो । हम अपने कल्याण के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम मेधावी हो । सभी तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । मैं श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हूँ । जो देवता सदा मङ्गलमल कार्यों को ही करते हैं, उन्हें साथ लेकर हमारे यज्ञ में आगमन करो ।३। अग्नि ही देवताओं के पुरोहित हैं । सब मनुष्य और मेधावी ऋषियों ने अग्नि को प्रदीप्त किया है । महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त मैं अग्नि का आह्वान करता हूँ वे अग्नि मेरा कल्याण करें ।४। इन अग्नि ने संग्राम उपस्थित होने पर भरद्वाज, अत्रि, कण्व, त्रसदस्यु और गविष्ठर की भले प्रकार रक्षा की थी । पुरोहित वसिष्ठ उन्हीं अग्निदेव का आह्वान करते हैं । वे मेरा कल्याण करें ।५। (८)

सूक्त १५१

(ऋषि—श्रद्धा कामायनी । देवता—श्रद्धा । छन्द—अनुष्टुप्)

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एव भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३
श्रद्धाँ देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धा हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५।६

श्रद्धा के बिना अग्नि प्रदीप्त नहीं होते । जिस यज्ञीय पदार्थ का मोह किया जाता है, वह भी श्रद्धा से ही सुफल होता है । सम्पत्ति के मस्तक पर श्रद्धा ही निवास करती है । यह सब बातें यथार्थ ही हैं ।१। हे श्रद्धे ! दानशील को अभीष्ट फल प्रदान करो । जो दान करने की इच्छा करता है (परन्तु धनाभाव से दान नहीं कर पाता) उसे भी इच्छित फल का भागी बनाओ । हे श्रद्धे ! इन याज्ञिकों और यजमानों को अभीष्ट फल दान करो ।२। इन्द्रादि देवताओं ने भीषणकर्मा राक्षसों के प्रति संहार कर्म का निश्चय किया । हे श्रद्धे ! इन याज्ञिकों और यजमानों को अभीष्ट फल प्रदान करो ।३। वायु को अपने रक्षक रूप में प्राप्त करने वाले देवता और मनुष्य श्रद्धा की आराधना करते हैं । मन में जब कोई निश्चय उठता है, तब उपासकगण श्रद्धा का ही आश्रय लेते हैं । श्रद्धा की अनुकूलता से ही वैभव की प्राप्ति होती है ।४। प्रातःकाल, मध्याह्न और सायङ्काल में हम श्रद्धा का ही आह्वान करते हैं । हे श्रद्धे ! हम आराधकों को तुम अपनी महिमा से परिपूर्ण करो ।५। (६)

सूक्त १५२

(ऋषि शासो भरद्वाजः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप्)

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥१
स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।

वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥२
वि रक्षो वि मृधो वि जहि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्मां अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥४
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥५॥१०

हे इन्द्र ! जो तुम्हारा मित्र हो जाता है, उसका पराभव या मृत्यु नहीं होती, क्योंकि तुम विचित्र कर्म वाले, शत्रुओं के नाशक और महान् हो । मैं इस स्तोत्र द्वारा उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूं ।१। प्रजाओं के अधिपति इन्द्र वृत्र का संहार करने वाले, संग्राम करने वाले, शत्रु को अभिभूत करने में समर्थ, कामनाओं के वर्षक, मङ्गलप्रद, अभय प्रदान करने वाले, सोमपान करने वाले हैं । ऐसे इन्द्र हमारे अभिमुख पधारें ।२। हे इन्द्र ! तुम वृत्र के नाशक हो । इन दैत्यों और शत्रुओं का संहार करो । वृत्र के दोनों जबड़ों को छिन्न उकरो और सके क्रोध को व्यर्थ कर दो ।३। हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को मारो । युद्ध की इच्छा करने वाले विरोधियों के बल को क्षीण करो । जो हमें नीचे गिराना चाहता है उसे घोर अन्धकार में पतित करो ।४। हे इन्द्र ! शत्रुओं की बुद्धि का नाश करो । जो हमें क्षीण करने की इच्छा करता है, उसे मारने के लिये अपने आयुध को चलाओ । तुम हमें शत्रु के क्रोध से बचाकर श्रेष्ठ कल्याण दो और शत्रु के भीषण अस्त्र को काट डालो ॥५॥ [१७]

सूक्त १५३

(ऋषि—इन्द्रमातरो देवजामयः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

ईखयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भोजनासः सुवीर्यम् ॥१
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः त्वं बृषन्वृषेदसि ॥२
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥३

त्वमिन्द्र सजाषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसी ॥४
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥५॥११

कर्तव्य में लगी हुई इन्द्र की माताऐं, उत्पन्न हुए इन्द्र के निकट जाकर उनकी परिचर्या करती हैं, तब इन्द्र उन्हें श्रेष्ठ सुख प्राप्त कराते हैं ।१। हे इन्द्र ! तुम उत्पन्न होते ही बल, वीर्य और तेज से सम्पन्न हो गये । तुम प्राणियों को बढ़ाने वाले हो, अतः हमारी कामना पूर्ण करो ।२। हे इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो । तुमने ही अन्तरिक्ष को विस्तृत किया है । तुम्हीं ने अपनी महिमा से स्वर्ग को सबसे ऊपर स्थिर किया है ।३। हे इन्द्र ! सूर्य तुम्हारे कर्म में सहयोगी हैं । तुमने उन्हें अपने हाथों से धारण किया है । तुम अपने वज्र को अपनी महिमा से तीक्ष्ण करते हो ।४। हे इन्द्र ! समस्त प्राणियों को तुम अपने तेज से ही पूर्ण करते हो । उसी के द्वारा तुमने समस्त स्थानों को व्याप्त किया हुआ है ।५। (११)

सूक्त १५४

(ऋषि—यमी । देवता--भाववृतम् । छन्द--अनुष्टुप्)

सौम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१
तपसा ये अमाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो पे चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३
ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।
पितृन्तपस्वतो यम तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥४
सहस्रणीथा कवयो य गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन्तपस्वता यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥५॥१२

कोई पितर घृत-सेवन करते हैं और कोई अभिषुत सोम-रस का पान करते हैं। जिन पितरों के लिए मधुर रस के स्रोत प्रवाहित हैं, हे प्रेत ! तुम उनके पास ही गमन करो ।१। तप के बल से जो दुर्धर्ष हुए हैं, तप के बल से जो स्वर्ग में पहुंचे हैं और जिन्होंने घोर तप किया है, हे प्रेत ! तुम उनके पास ही गमन करो ।२। जो संग्राम भूमि में संग्राम करते हैं, जिन्होंने अपने देह के मोह को त्याग दिया है अथवा जिन्होंने प्रचुर दक्षिणा दी है, हे प्रेत तुम उनके पास गमन करो ।३। जो प्राचीन-कालीन पुरुष पुण्य-कर्मों द्वारा फल के अधिकारी हुए हैं, जो पुण्य के स्रोत को विस्तृत कर चुके हैं और जिन्होंने तपस्या का फल संचय किया है, हे प्रेत ! तुम उनके पास गमन करो ।४। जिन मेधावी जनों ने सहस्रों कर्मों की विधि निश्चित की हैं और जो सूर्य की रक्षा करते हैं, जिन्होंने तप के प्रभाव से उत्पन्न होकर तप किया है, हे यम ! यह प्रेत उन्हीं पितरों के पास निवास करे ।५।

सूक्त १५५

(ऋषिः— शिरिम्बिठो भारद्वाजः । देवता-अलक्ष्मीघ्नम्, ब्रह्मणस्पतिः, विश्वेदेवाः । छन्द——अनुष्टुप्)

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥१
चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥२
अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३
यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुद्याशवः ॥४
परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमां आ दधर्षति ॥५।१३

हे अलक्ष्मी ! तुम सदा दान से विमुखी रहती हो । तुम्हारी आकृति विकराल है, तुम क्रोध पूर्वक कुत्सित शब्द किया करती हो तुम इस पर्वत पर आगमन करो । मैं शिरिम्बिठ तुम्हें जन-सम्पर्क से दूर रहने के लिए दृढ़ उपाय करता हूँ ।१। यह अलक्ष्मा वृक्ष, लता और अन्न आदि नष्ट करने वाली हैं । यही दुर्भिक्ष को उपस्थित करती है । मैं उन लक्ष्मी को इस लोक से और उससे भी दूर भगाता हुँ । हे ब्रह्मणस्पते ! तुम्हारा तेज अत्यन्त तीक्ष्ण है । दान का विरोध करने वाली इस दुष्कर्मा अलक्ष्मी को तुम यहाँ से दूर भगाओ ।३। समुद्र के किनारे के निकट यह जो काष्ठ बह रहा है, उसका स्वामी कोई नहीं है । हे अलक्ष्मी ! तुम्हारी आकृति भयङ्कर हैं, तुम उस पर चढ़कर समुद्र के उस पार चली जाओ ।४। हे अलक्ष्मी ! तुम हिंसामयी और कुत्सित शब्द करने वाली हो । जब तुम जाने को तत्पर होकर यहाँ से चली गईं, तब इन्द्र के सभी शत्रु जल में उठ कर मिटने वाले बुलबुलों के समान ही अदृश्य हो गये ।५। इन्होंने गौओं को मुक्त किया, इन्हीं ने अग्नि की अनेक स्थानों में स्थापना की । इन्हीं ने देवताओं को हवि रूप अन्न प्रदान किया । फिर इन्द्र पर आक्रमण करने में कौन समर्थ होगा ।५। (१३

सूक्त १५६

(ऋषि--केतुराग्नेयः । देवता: अग्निः । छन्द--गायत्री)

अग्निंहिन्वन्तुनोधियः सप्तिमाशुभिवाजिषु । तेन जेष्मधनन्धनम् ॥१
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥२
आग्नेस्थरंरयिंभरपृथु गोमन्तमश्विनम् अङ्ग्धिखवर्तयापणिम् ॥३
अग्ने नक्षत्रजरमा सूर्यं रोहियो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४
अग्ने केतुर्विशामसिःप्रेष्ठश्रेष्ठउपस्थसत् । बोधास्तोत्रेवयोदधत् ॥५

द्रुतगामी अश्व जैसे घुड़दौड़ के स्थान में दौडाये जाते हैं, वैसे ही अग्नि को हमारे स्तोतागण दौड़ा रहे हैं । उन अग्नि की अनुकूलता को प्राप्त हुए हम यजमान सब धनों पर विजय प्राप्त करने वाले हों ।१।

हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से जैसे हम गौओं को प्राप्त करते हैं, वैसे ही तुम सेना के समान सहायता देने वाले अपने रक्षण-साधनों को हमें प्राप्त कराओ। तुम्हारी कृपा से हम धन प्राप्त करने वाले हों।२। हे अग्ने ! तुम असंख्य गौओं और अश्वों के सहित प्रचुर धन हमें प्रदान करो। अन्तरिक्ष से वृष्टि जल का सिंचन करो । और वाणिज्यकर्म का प्रशस्त करो ।३। हे अग्ने ! जो सूर्य जरा रहित हैं, जो सब लोकों को प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं और जो सदा गमन करते रहते हैं,उस सूर्य को तुम्हीं ने अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित किया है ।४। हे अग्ने ! तुम प्राणियों के उत्पन्न करने वाले हो, तुम सब देवताओं में श्रेष्ठ हो और सभी से प्रीति करते हो । तुम हमारी यज्ञ वेदों में विराजमान होकर हमारी स्तुति सुनो और अन्न लेकर आओ ।५। (१४)

सूक्त १५७

(ऋषि—भुवन आप्त्य: साधनो वा भौवन: । देवता—विश्वेदेवा: । छन्द—त्रिष्टुप्)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवा: ।।१
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्र: सह चीक्लृपाति ।।२
आदित्यैरिन्द्र: सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।।३
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणा: ।।४
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।।५।।१५

संसार के सभी प्राणी हमें सुख प्रदान करें और इन्द्रादि सभी समर्थ देवता हमारे लिये कल्याण को उपस्थित करने वाले हों ।१। इन्द्र तथा आदित्यगण हमारे यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें । वे हमारी देह को आरोग्य प्रदान करें । और हमारे पुत्र-पौत्रादि को भी व्याधि से बचावें ।२। आदित्यगण और मरुद्गण को सहायक बनाकर इन्द्र हमारे शरीर की रक्षा करें ।३। जब देवगण वृत्रादि राक्षसों को मार कर आये उस समय उनका अमृतत्व अक्षुण्ण हुआ ।४। विभिन्न प्रकार वाली स्तुतियां

देवताओं के निकट गईं। फिर अन्तरिक्ष से जल-वृष्टि होती दिखाई पड़ी ।५। (१५)

सूक्त १५८

(ऋषि—चक्षुः सौर्यः देवता—सूर्यः । छन्द—गायत्री)

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥१
जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवां अर्हति ।
पाहि नो विद्युतः पतन्त्याः ॥२
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः चक्षुर्धाता दधातु नः ॥३
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । स चेदं वि च पश्येम ॥४
सुसन्दृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षसः ॥५॥१६

दिव्य लोक से उत्पन्न उपद्रव से सूर्य, अन्तरिक्ष के उपद्रव से वायु और पृथिवी के उपद्रव से अग्नि देवता हमारी भले प्रकार रक्षा करें ।१। हे सविता ! तुम हमारे अनुष्ठान को स्वीकार करो । तुम्हारे तेज की प्राप्ति के लिये सौ यज्ञ किये जाते हैं । शत्रुओं के जो तीक्ष्ण आयुध पास आकर पतित हों, उनसे हे सवितादेव हमारी रक्षा करो ।२। सवितादेव हमें चक्षु शक्ति दे पर्वत हमें चक्षु शक्ति दें, विधाता देव हमारे नेत्र में ज्योति प्रदान करें ।३। हे सूर्य । हमें दर्शन शक्ति प्रदान करो । सभी पदार्थों को भले प्रकार देखने के लिए हमारे नेत्रों को ज्योति से पूर्ण कर दो । हम संसार की सभी वस्तुओं को भले प्रकार देखने में समर्थ हों ।४। हे सूर्य ! ऐसा अनुग्रह करो जिससे हम भले प्रकार तुम्हारे दर्शन करते रहें । जिन पदार्थों को मनुष्य-नेत्र देख सकते हैं, उन सब पदार्थों को देखने में समर्थ हों ।५। (१५)

सूक्त १५९

(ऋषि—शची पौलोमी । देवता—शची पौलोमी । छन्द—अनुष्टुप्)

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः ।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥१

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥२
मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥३
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥४
असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ॥५
समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ॥६।१७

सूर्य का उदय होना ही मेरे भाग्य का उदित होना है । मेरी सभी सपत्तियां मुझसे पराभूत हो चुकी है । मैंने अपने पतिदेव को अपने वश में कर लिया है ।१। मैं इस घर के मस्तक के समान मुख्य एवं ध्वजा रूप हूं । मैं अपने पति को आकर्षित कर उनके मधुर वचनों को श्रवण करती हूं । वे मुझे सर्वोपरि मानकर मेरे कार्यों में सहमति प्रकट करते और मेरी इच्छानुसार व्यवहार करते हैं ।२। मेरे पुत्र पराक्रमी हैं। मेरी पुत्री भी अत्यन्त रूपवती और शोभामयी है। मैं सभी को अपने शासन में रखती हूं । पति भी मेरी नाम आदर सहित लेते हैं ।४। जिस यज्ञानुष्ठान द्वारा इन्द्र ने महान् बल और उत्कृष्ठता प्राप्त की, मैंने भी देवताओं का वही यज्ञ किया है । हे देवगण ! अब मेरे सभी शत्रु परास्त हो चुके हैं ।४। मेरा शत्रु विजय प्राप्त नहीं करता, मैं उन्हें हटाने में समर्थ हूँ । मेरा शत्रु जीवित नहीं रहता, क्योंकि मैं उन्हें हराने में समर्थ हूं । मेरा शत्रु जीवित नहीं रहता, क्योंकि मैं उन्हें सामने आते ही मार देती हूँ । जैसे निर्बल पुरुषों का धन अन्य व्यक्ति छीन कर ले जाते हैं, वैसे ही मैं अन्य स्त्रियों के दर्प को चूर्णित कर डालती हूं ।४। मैं सपत्नियों पर विजय पाती हुई उन्हें हराती हूं । मैं अपने प्रभाव से इन वीर इन्द्र पर भी शासन करती और सभी बांधवों को अपने वश में रखती हूं ।६।

सूक्त १६०

(ऋषि—पूरणो वैश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तीव्रवस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥१
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वां इह पाहि सोमम् ॥२
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३
अनुस्पष्टो भवत्येषा अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५।१८

यह सोम रस अत्यन्त तीव्र गुण वाला है। इसमें अन्य रस मिश्रित किये गये हैं। हे इन्द्र ! तुम इसका पान करो। तुम अपने रथ को वहन करने वाले दोनों अश्वों को इधर लाने के लिये प्रेरित करो। तुम्हें अन्य यजमान तृप्त न कर सकें। इसलिए यह मधुर सोम-रस अभिषुत हुआ है।१। हे इन्द्र ! जो सोम अभिषुत हुआ है, वह तुम्हारे निमित्त ही है। यह सभी उच्चारित स्तोत्र तुम्हारा आह्वान करते हैं,अतःहमारे इसयज्ञको स्वीकार करो। हे सब के जानने वाले इन्द्र ! तुम यहाँ आकर इस सोम को पियो।२। जो यजमान निर्लेप भाव से और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक, अपनी हार्दिक भावना द्वारा इन्द्र के निमित्त सोम का निष्पीड़न करता है, उस देवोपासक की गौओं को इन्द्र क्षीण नहीं करते। वे उसे श्रेष्ठ कल्याण प्रदान करते हैं।३। जो इन ऐश्वर्यवान् इन्द्र के निमित्त मधुर सोम का अभिषव करता है, इन्द्र उसे दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। वे उसके अनुष्ठान में आकर उसका कर-स्पर्श करते हैं। जो पुरुष श्रेष्ठ कर्मों से द्वेष करते हैं, उन्हें वे पराक्रमी इन्द्र सर्वथा नष्ट कर डालते हैं।४। हे इन्द्र ! गौ, अश्व और अन्न की कामना करते हुए हम तुम्हारे आगमन

की प्रतीक्षा में हैं। हमने यह अभिषव स्तोत्र तुम्हारे लिए ही रचा है। हम तुम्हें कल्याणकारी जनक आहूत करते हैं।५। (१८)

सूक्त १६१

(ऋषि—यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः। देवता—राजयक्ष्मघ्नम्।
छन्द—त्रिष्टुप्)

मुञ्चामि त्वा हविशा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्रग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ।।१
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिक नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ।।२
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषापार्षमेनम्।
शतं यथेम शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ।।३
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनुर्दुः ।।४
आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ।।५।१९

हे रोगिन्! मैं तुम्हें अज्ञात क्षय रोग से और दुर्दान्त राजयक्ष्मा से यज्ञानुष्ठान द्वारा मुक्त करता हूं। इस प्रकार तुम्हारी प्राण-रक्षा होगी। यदि किसी पापग्रह ने इस रोगी को अपने पाश में डाल दिया है तो इन्द्र और अग्नि इसे उस पाश से छुढ़ावें।१। इस रोगी की आयु क्षीण होगई हो, यदि यह इस लोक से चले गये के सामन होगया हो, अथवा यह मृत्यु के मुख में जा चुका हो, तो भी मैं मृत्यु देवता निर्ऋति के निकट से उसे लौटाता हूं। यह मेरे स्पर्श द्वारा ही सौ वर्ष तक जीवित रहेगा।२। मैंने जो आहुति दी है, वह सहस्र नेत्र वाली है। वह सौ वर्ष की आयु प्रदान करती है। मैं उसी आहुति के अभाव से इस रोगी को पुनः लौटा लाया हूं। इन्द्र इसे सब दोषों से मुक्त कर सौ वर्ष की आयु दें।३। हे रोगिन्! तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो। तुम सुख से सौ वसंत और सौ हेमन्त तक जीओ। इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति और सविता इस अनुष्ठान

में हमारी हवियों से प्रसन्न होकर इसे शतायुष्य करें ।४। हे रोगिन् ! मैंने तुम्हें प्राप्त कर लिया । मैं तुम्हें लौटा लाया । तुम यहाँ पुनः नवीन होकर आये हो । मैंने तुम्हारे सभी अंगों, नेत्रों और परम आयु को भी पा लिया है ।५। [१९]

सूक्त १६२

(ऋषि–रक्षोहा ब्राह्मः । देवता–गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम् । छन्द-अनुष्टुप्)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितिः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२
यस्ते हन्ति पतयन्त निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघाँसति तमितो नाशयामसि ॥३
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेलिह तमितो नाशयामसि ॥४
यस्त्वा भ्राता परिभूंत्वाः जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥६।२०

अग्नि राक्षसों का संहार करने वाले हैं । वे हमारे स्तोत्र से सहमत होकर समस्त विघ्नों को दूर करें । वह हमारे सब उपद्रवों को शान्त करें । हे नारी ! जिन उपद्रवों से तुम रोगिणी बनी हो, उन सब उपद्रवों को अग्निदेव दूर कर दें ।१। हे नारी ! जिन पिशाचों राक्षसों रोग-व्याधियों ने तुम्हारे देह को आक्रान्त किया है, उन सबको, राक्षसों का नाश करने वाले अग्निदेव हमारे स्तोत्र से सहमत होकर नष्ट कर डालें ।२। हे नारी ! जो रोग रूप पिशाच तुम्हारे गर्भ को नष्ट करना चाहता है, उसे हम तेरे शरीर से दूर भगाते हैं ।३। जो रोग तुम्हें निश्चेष्ट कर तुम्हारे बल को खींच लेता है, उसे हे नारी ! हम तुम्हारी

देह से दूर करते हैं ।४। हे नारी ! जो रोग तुम्हें अनजाने में अथवा भूल से प्राप्त हुआ है और जो तुम्हारा सन्तान का नाश करने को तत्पर है, उस रोग को तेरे शरीर से निकालते हैं ।५। हे नारी ! जो व्याधि आलस्य रूप निद्रा के द्वारा प्राप्त हो गई है और वह तुम्हारे गर्भस्थ शिशु को नष्ट कर देने को तत्पर है, उसे हम तुम्हारे शरीर से दूर करते हैं ।।६।। (२०)

सूक्त १६३

(ऋषि—विवृहा काश्यपः । देवता—यक्ष्मघ्नम् । छन्द—अनुष्टुप्)

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ।।१
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य मासाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ।।२
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ।।३
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ।।४
मेहनाद्वनं करणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मतस्तमिदं वि वृहामि ते ।।५
अङ्गादङ्गाल्लोम्नो लाम्नो जतं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मन तमिदं वि वृहामि ते ।।६।२१

हे रोगिन् ! तुम्हारे दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नथुने, शिर, मस्तिष्क, जिह्वा और ठोड़ी आदि से यक्ष्मा रोग को बाहर निकालता हूं ।१। हे रोगिन् ! तुम्हारे कंठ की धमनियों, हड्डियों की संधि, दोनों बाहुओं, दोनों कंधों और स्नायु आदि में प्राप्त हुए रोग को बाहर करता हूं ।२। हे रोगिन् ! तुम्हारी अन्न नाड़ी, क्षुद्रनाड़ी, हृदय, मूत्राशय, वृहद्दण्ड, यकृत तथा अन्न विभिन्न अवयवों में प्राप्त तुम्हारे रोग को निकालता हूं ।३। हे रोगिन् ! तुम्हारी जंघाओं, गुल्मों, पावों, कटि

देश आदि से समस्त व्याधि को दूर करता हूँ ।४। हे रोगिन् ! तुम्हारे लोम, नख आदि शरीर के सभी उपाँगों से रोग को निकालता हूँ ।५। हे रोगिन् ! तुम्हारे शरीर के प्रत्येक संधिस्थान लोम आदि सर्वाङ्ग में, जहाँ कहीं भी रोग की उत्पत्ति हुई हो, वहीं से रोग को निकालता हूँ ।६। (२१)

सूक्त १६४

(ऋषि—प्रचेताः । देवता—दुःस्वप्नघ्नम् । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप, पंक्तिः)

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।
परो निऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ।।१
भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युजन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ।।२
यदाशसा निःशसभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ।।३
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ।।४
अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्न सङ्कल्पः पापो य द्विष्मस्तं स ऋच्छतु
यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ।।५।२२

हे दुःस्वप्न ! तुमने हमारे मन पर अधिकार किया है, तुम अब यहाँ से दूर भागो और वहीं विचरण करो । हमसे बहुत दूर जो निऋति देवता विराजमान हैं, उनसे हम पर कृपा करने को कहो । क्योंकि मनुष्य के अभीष्ट विस्तृत होते हैं और वे अभीष्टों को विफल करने वाली हैं ।१। प्राणवान् मनुष्य विस्तृत कामनाओं वाले होते हैं वे श्रेष्ठ अभीष्ट सम्पत्ति की कामना करते हैं । वे श्रेष्ठ फल प्राप्त करने की आशा में सदा रहते हैं । यमराज उन्हें अपने मङ्गलमय चक्षु से देखते हैं ।२। अपनी आशा को फलवती करने के लिए निराश होने पर, निद्रावस्था में अथवा जागते हुए ही हमसे जो अपराध बन जाते हैं, उनसे उत्पन्न पापों को अग्नि

हमसे दूर करें ।३। हे इन्द्र ! ब्रह्मणस्पते ! हमने जो दुष्कर्म किये हों और उनके फलस्वरूप हमारा जो अमंगल होने को हो, उस शत्रु रूप अमङ्गल में आंगिरस प्रचेता हमारी रक्षा करें ।४। आज हमारी विजय हुई है, पाने योग्य वैभव हमने प्राप्त कर लिया है । हम सभी अपराधों से भी मुक्त हो चुके हैं । हमारी सुषुप्तावस्थ में अथवा वाणी द्वारा ही जो पाप हमसे होगया हो, उसका दुष्ट फल हमारे शत्रु को पीड़ित करे । हम जिससे वैर करते हैं, वह उसी को प्राप्त हो ।५। (२०)

सूक्त १६५

(ऋषि—कपोतो नैऋतः । देवता-कपोताहहतो प्रायश्चित वैश्वदेवम् । छन्द—त्रिष्टुप्)

देवाः कपोतः इषितो यदिच्छन्दूतो निऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।१
शिवः कपोत इषितोनो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ।।२
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निवाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ।।३
यदुलोको वदति मोघमेद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एश एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु रुत्युवे ।।४
ऋचा कपौतं नुदत्त प्रणोदमिषं मदन्त परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानिविश्वा हित्वानऊज क्तात्पतिष्ठः ।।५।।१४

हे विश्वदेवो ! यह परावृत निऋति का भेजा हुआ दूत हैं । यह हमें पीड़ित करने को ही हमारे घर में आगया है । हम इस कपोत का पूजन करते हैं । हम इस अमङ्गल को अपने पास से दूरक रतो हैं । इस के द्वारा हमारे गौ, अश्व आदि पशु, पुत्र, पौत्र, दासी आदि मनुष्य व्याधि में

न फँसें ।१। हे विश्वेदेवो ! हमारे घर में जिस कपोत को प्रेरित किया गया, वह हमारा अमङ्गल न करे, कल्याणकारी ही हो। मेधावी ओर हमारे स्वजन अग्नि हमारी हवियों को स्वीकार करें । पशुओं का पंखमय तीक्ष्ण आयुध हमें छोड़ कर अन्यत्र चला जाय ।२। यह पंख वाला कबूतर हमारी हिंसा न करे । यह हमारे लिए आयुध रूप न हो जाय । विस्तृत स्थान में अग्नि देव प्रतिष्ठित हुए हैं, यह भी उसी स्थान पर बैठे । हे देवगण ! यह कपोत हमारे लिए अमङ्गल-जनक न हो। हमारे मनुष्यों और पशुओं का कल्याण हो ।३। इस उलूक की अमङ्गल-सूचक ध्वनि व्यर्थ हो जाय । यह कबूतर अग्नि स्थान में बैठता है । जिन यमराज का दूत होकर यह कपोत हमारे घर में आया है मृत्युरूपी उन यमराज को हम प्रणाम करते हैं ।४। हे देवगण ! यह कबूतर घर में रहने योग्य नहीं है, तुम इसे अपने प्रभाव से दूर भगाओ । इसके द्वारा जिस अमङ्गल की आशंका हुई है, उसे नष्ट करके हमारी गौ को सुखपूर्वक आहार प्राप्त करने वाली करो । यह अत्यन्त वेग से उड़ने वाला कबूतर हमारे अन्न को त्याग कर अन्यत्र गमन करे ।५। (२३)

सूक्त १६६

(ऋषि—ऋषभो वैराजः शाक्वरो वा । देवता—सपत्नघ्नम् ।

छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१
अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्टिताः ॥२
अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नीइव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥३
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥४
योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।

अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूकाइवोदकान्मण्डूका उदकादिव ।।५।२४

हे इन्द्र ! मुझे अपने समान पुरुषों में श्रेष्ठ करो । मैं अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूँ, अपने विरोधियों का संहार करूँ । तुम्हारी कृपा से मैं सर्वोत्कृष्ट होकर महान् गोधन को प्राप्त करूँ ।१। मैंने शत्रुओं का विध्वंस कर डाला । मुझे हिंसित करने में अब कोई समर्थ नहीं है । मेरे सब शत्रु मेरे द्वारा पददलित हुए ।२। हे शत्रुओ ! जैसे धनुष के दोनों छोरों को प्रत्यंचा से आबद्ध करते हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हें इस स्थान में बन्धनयुक्त करता हूँ । हे वाचस्पते ! इन शत्रुओं को आदेश दो कि यह मेरे विषय में किसी से कोई बात न करें ।३। मैं अपने तेज को कर्म के उपयुक्त बनाता हूं,मैं अपने उसी तेज के द्वारा शत्रु को पराजित करने में प्रवृत्त हुआ हूं । हे शत्रुओ ! मैं तुम्हारी बुद्धि, कार्य और संगठन सबको विनष्ट किये देता हूँ ।४। मैंने तुम्हारी अर्थ-संचय शक्ति को छीन लिया है,मैं तुमसे श्रेष्ठ होगया हूँ । मैं मस्तक के समान ही तुमसे ऊँचा हूं । जैसे जल में रहने वाले मेंढ़क कोलाहल करते हैं, वैसे ही तम मुझसे दब कर चीत्कार करो ।।५।। (२४)

सूक्त १६७

(ऋषि—विश्वामित्रजमदग्नी । देवता-इन्द्रः, लिङ्गोक्ताः । छन्द—जगती)

तुभ्येदमिन्द्र परिषिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ।।१
स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप ।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या बहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ।।२
सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ।।३
प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे ।
सुते सातेन यद्यगमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ।।४।२५

हे इन्द्र ! यह मधुर सोम रस तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है सोम-युक्त इस कलश के स्वामी तुम ही हो । तुमने अपने तप से स्वर्गपर विजय

प्राप्त की है । तुम हमें अभीष्ट धन और पुत्रादि प्रदान करो ।१।जिन इन्द्र ने स्वर्ग पर विजय पाई है और सोमरूप अन्न को पाकर विशिष्ट शक्ति सम्पन्न होते हैं । ऐसे उन इन्द्र को ही हम अपने प्रस्तुत सोमरस के समीप आमन्त्रित करते हैं । हे इन्द्र ! हमारे इस यज्ञ को जानो । हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त होकर तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ।२। हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी स्तुति करने में लीन हूं । मैं राजा वरुण के सोमयुक्त यज्ञ-स्थान में उपस्थित हुआ हूं । हे धाता ! हे विधाता ! तुम्हारा आदेश पाकर ही इस कलश में स्थित सोम-रस को मैंने पिया है ।३। हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रेरणा से ही मैंने चरु सहित विभिन्न पदार्थ एकत्र किये हैं । मैं स्तोता होकर तुम्हारे निमित्त इस स्तोत्र का पाठ करता हूं । (इन्द्र का कथन)है विश्वामित्र और जमदग्नि ऋषियो ! सोम के अभिषुत होने पर मैं जब गृह में धन सहित प्रविष्ट होऊँ, तब तुम भले प्रकार मेरा स्तव करना ।।४।।

[२५]

सूक्त १६८

(ऋषि–अनलो वातायनः । देवता––वायुः । छन्द–त्रिष्टुप्)

वातस्य नु महिमान रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥१
सम्प्रेरते अनुवातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।
ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजः ।।२
अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बहूब ।।३
आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥४।२६

रथ के समान वेगवान् वायु की महिमा का मैं बखान करता हूं । इनका शब्द वायु के समान घोर शक्ति वाला है । यह वृक्षादि को तोड़-फोड़ करते हुए आते हैं । यह सब ओर के वर्ण को बदलते हुए आते हैं । यह पृथिवी के रज-कणों को सब ओर बखेरते हैं ।१। इन वायु के वेग

से चलने पर पर्वत तक कम्पित होते हैं । जैसे अश्व वृद्धस्थल की ओर गमन करता है, वैसे ही पर्वत आदि सब वायु के आश्रय में जाते है । अश्वों की सहायता से रथारूढ़ हुए वायु देवता सब लोकों के राजा समान गमन करते हैं ।२। वायु जब अन्तरिक्ष में वेग से चलते हैं तब वे कठिनता से स्थिर होते हैं । यह जल के बन्धु एवं जल के आगे प्रकट होने वाले हैं। इनका स्वभाव सत्य से ओत-प्रोत है । यह कहाँ उत्पन्न हुए ? कहाँ से इनका आगमन हुआ ? ।३। वायु देवता प्राण रूप हैं । वह लोकों के असत्य के समान हैं । यह इच्छानुसार विचरण करते हैं । इनके रूप के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते । इनके गमन का शब्द ही सुना जाता है । हम उपासकगण अपने यज्ञ में श्रेष्ठ हविरत्न द्वारा इन वायु का पूजन करते हैं ॥४॥ (२६)

सूक्त १६९

(ऋषि—शबरः काक्षीवतः । देवता—गावः । छन्द—त्रिष्टुप्)

योभूर्वातो अभि वातूस्रः ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्तात् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृल ॥१
याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्टया नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२
या देवेषु तन्व मैरयन्त यासां सोमो विश्वारूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३
प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवः पितृभिः संविदानः ।
शिवा सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया स सदेम ॥४।२७

सुखप्रद वायु गौओं की ओर प्रवाहित हो । गौएं बल देने वाले तृण आदि का सेवन करें । यह जल पीकर तृप्त हों । हे रुद्र ! इन श्रेष्ठ गौओं को सुखपूर्वक रखो ।१। गौएँ कभी एक-से रंग की होती हैं और कभी विभिन्न रंग वाली होती हैं । यज्ञ में स्थित उन गौओं के ज्ञाता हैं। अंगरावंशियों ने उन्हें तप द्वारा पृथिवी पर उत्पन्न किया है। हे पर्जन्य ! तुम हमारी गौओं का मंगल करो ।२। गौऐं अपने शरीर का रस-रूप

दुग्ध देवताओं के यज्ञ के निमित्त प्रदान करती हैं। सोम उनकी विशिष्ट आहुतियों के साथी हैं। हे इन्द्र ! उन गौओं को सन्तानवती बनाकर दुग्ध से परिपूर्ण करो और हमारे गोष्ठ में भेजो ।३। प्रजापति ने देवताओं और पितरों के परामर्श से यह गौऐं मुझे प्रदान की हैं। इन गौओं को मंगलमयी बना कर हमारे गोष्ठ में स्थापित करते हैं। तब वे सन्तानवती होकर हमें दुग्ध प्रदान करती हैं।।४।। (२७)

सूक्त १७०

(ऋषि—विभ्राट् सूर्यः। देवता—सूर्यः। छन्द—जगती, पंक्तिः)

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षतित्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥४।२८

अत्यन्त तेजस्वी सूर्य हमारे मधुर सोम रस का पान कर तृप्त हों और अभिषवकर्त्ता यजमान को श्रेष्ठ आयु प्रदान करें। वे सूर्य वायु को प्रेरणा पाकर सब प्राणियों की रक्षा करते हुए उनका पालन-पोषण करते हैं और कभी भी न मिटने वाली शोभा को प्राप्त होते हैं।१। सूर्य के रूप से महान् ज्योतिःपिण्ड उदय को प्राप्त हुआ है। यह महान् तेजस्वी, भले प्रकार प्रतिष्ठित और सर्वश्रेष्ठ अन्न प्रदान करने वाले हैं। आकाश पर विराजमान होकर यह आकाश के ही आश्रय रूप बने हैं यह शत्रु का नाश करने वाले, वृत्र के मारने वाले, राक्षसों और वैरियों का संहार करने में असमर्थ हैं।२। समस्त ज्योति-पिण्डों में सूर्य सर्वश्रेष्ठ एवं अग्रगन्ता हैं। वे संसार के जीतने वाले एवं धन के भी जीतने वाले हैं। यह महान् तेजस्वी और समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले हैं। यह जल-वृष्टि के लिये प्रशस्त होने वाले

बल के साक्षात् रूप और तेज से सम्पन्न हैं।३। हे सूर्य! तुम अपने तेज द्वारा प्रकाशित होकर अन्तरिक्ष के दमकते हुए स्थान को प्राप्त हुए हो। तुम्हारी महिमा सभी श्रेष्ठ कर्मों में सहायक होती है। वही सब यज्ञों के अनुकूल होकर सब लोकों का पालन करती है।४। (२८)

सूक्त १७१

(ऋषि—इटो भार्गवः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः । अशृणो सोमिनो हवम् ॥१
त्वं मखस्यदोधतः शिरोऽवत्वचो भरः। अगच्छः सोमिनोगृहम् ॥२
त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् । मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥३
त्वं त्यमिन्द्रसूर्यंपश्चासन्तंपुरस्कृधि । देवानां चित्तिरोवशम् ॥४।२९

हे इन्द्र ! जब इट नामक ऋषि ने सोम का अभिषव किया, तब तुमने उन ऋषि की रक्षा करते हुए उनके श्रेष्ठ आह्वान को सुना था।१। हे इन्द्र ! जब तुमने यज्ञ को पृथक् किया तब वह भय से कम्पित हो गया। तब तुम सोमाभिषवकारी इट-ऋषि के घर में प्रविष्ट हुए।२। हे इन्द्र ! अस्त्रबुध्न के पुत्र ने तुम्हारा बारम्बार स्तोत्र किया था, तुमने इसीलिए बेन-पुत्र पृथु को उनके अधीन कर दिया।३। हे इन्द्र ! जब तेजस्वी सूर्य पश्चिम में गमन करते हैं, तब देवता भी नहीं जानते कि वे कहाँ छिप गये। उन सूर्य को तुम्हीं पूर्व में पुनः लेकर आते हो।४। (२९)

सूक्त १७२

(ऋषि—संवर्तः । देवता—उषा । छन्द—गायत्री)

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१
आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२
पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३
उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४।३

हे उषे ! तुम अपने तेज के सहित आगमन करो। गौऐं अपने दूध से भरे हुए थनों के सहित गमनशील हुई हैं।१। हे उषे ! यह श्रेष्ठ स्तोत्र

प्रस्तुत हैं। तुम उन्हें स्वीकार करने को यहाँ आगमन करो। यज्ञ करने वाले यजमान श्रेष्ठ सामग्री लेकर दानशील होता हुआ यज्ञ करता है।२। हम अन्न को एकत्र कर उत्कृष्ट पदार्थों को दान करने की इच्छा कर रहे हैं। हम इस यज्ञ को सूत्र के समान बढ़ाते हैं। हे उषा देवी ! हम यह यज्ञ तुम्हें प्रदान करते हैं।३। रात्रि की बहिन उषा है। उसने रात्रि के घोर अन्धकार को दूर कर दिया और श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त होकर अपने रथ को चलाया।४। (३०)

सूक्त १७३

(ऋषि—ध्रुवः। देवता—राज्ञःस्तुति। छन्द—अनुष्टुप्)

आ त्वाहाषमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वाद्राष्टमधि भ्रशत् ।।१
सहैवेधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलिः।
इन्द्रइवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमुधारय ।।२
इममिन्द्रो अदीधरन् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा।
तस्मै सामो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ।।३
ध्रुवा द्यौध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं धिश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ।।४
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुव देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ।।५
ध्रुव ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो वलिहृतस्करत् ।।६।२१

हे राजन् ! तुम राष्ट्र के अधिपति बनाये गये हो। इस राष्ट्र के स्वामी बनो। तुम स्थिर मति, अटल विचार और दृढ़ कार्यों के करने वाले होओ।तुम्हारी प्रजा तुम्हारे प्रति अनुरक्त रहे। तुम्हारे राष्ट्र का अमगल न हो।१। हे राजन् ! तुम पर्वत के समान अटल होकर यहीं निवास

करो। तुम इस राज्य से हटना नहीं। जैसे इन्द्र अविचल रूप से रहते हैं, वैसे ही तुम भी निश्चल होओ। तुम अपने राज्य को सुदृढ़ बनाने वाले बनो ।२। इन्द्र ने अक्षय यज्ञ सामग्री प्राप्त की और इस अभिषिक्त सम्राट् को अपना आश्रय प्रदान किया। ब्राह्मणस्पति ने भी इस राजा को आशीर्वाद दिया ।३। पृथिवी, आकाश सभी पर्वत और यह सम्पूर्ण जगत् जिस प्रकार अविचल हैं, उसी प्रकार यह राजा भी प्रजाओं के मध्य दृढ़ भाव से रहें ।४। हे राजन्! वरुण तुम्हारे राज्य को दृढ़ करें। बृहस्पति इसे अविचलित करे। इन्द्र और अग्नि देवता भी इस राष्ट्र को सुदृढ़ बनावें ।५। यह हवि अक्षय है, यह सोमरस कभी भी तीक्ष्ण नहीं होता। हम इन्हें एकत्र करते हैं। हे राजन्! इन्द्र ने भी तुम्हारी प्रजा को एक शासन में रहने वाली और कर देने वाली किया है ।६। (३१)

सूक्त १७४

(ऋषि—अभीवर्तः । देवता—राज्ञः स्तुतिः । छन्द—अनुष्टुप्)

अभीवर्तन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तये ॥१
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यतं तिष्ठाभि यो ना इरस्यति ॥२
अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥४
असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥३२

हम यज्ञ सामग्री एकत्र कर देवताओं की सेवा में उपस्थित होंगे। इन्द्र भी हव्य प्राप्त कर हमारे अनुकूल हो गये। हे ब्राह्मणस्पते! हमने हवन-सामग्री द्वारा भले प्रकार यज्ञ किया है। तुम हमें राज्य प्राप्ति के

कर्म में लगाओ ।१। हे राजन् ! जो हमारे विपरीत पक्ष वाले हैं, जो हमारी हिंसा की अभिलाषा करने वाले शत्रु, सेना एकत्र कर संग्राम के लिए आते हैं और जो हमसे बैर करते हैं, तुम उन सबको हराकर भगाओ ।२। हे राजन् ! तुमने सविता देव की अनुकूलता प्राप्त की है। सोम भी तुम्हारे प्रति अनुकूल हुए हैं। सब प्राणियों ने तुम्हारे प्रति अपनी अनुकूलता प्रकट की है। अतः तुम इस विश्व में सबके प्रिय हुए हो ।३। हे देवगण ! इन्द्र जिस अन्न के द्वारा कर्मों में प्रवृत्त होकर अन्नवान्, ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ हुए हैं, उसी अन्न के द्वारा मैं भी यज्ञानुष्ठान के द्वारा शत्रुओं से मुक्ति पा सका हूं ।४। मैंने अपने शत्रुओं को मार डाला, अब मेरे शत्रु नहीं रहे। मैं विपक्षियों का निवारण कर राज्य का अधिपति हो गया हूँ। इस देश के सब प्राणियों और राज्याधिकारिग्रों आदि का भी मैं स्वामी बना हूं ।५। (३२)

सूक्त १७५

(ऋषि—ऊर्ध्वग्रावार्बुदः। देवता—ग्रावाणः। छन्द—गायत्री)

प्र वो ग्रावाण सविता देव सुवतु धर्मणा। धूर्षु युज्यध्वं सुनत ॥१
ग्रावणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम्। उस्राः कर्तन भेषजम् ॥२
ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः। वृष्णे दधतो वृष्ण्यम् ॥३
ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा।
यजमानाय सुन्वते ॥४॥३३

हे सोम के निष्पीड़नकारी पाषाणो ! सवितादेव तुम्हें अपने बल से सोमाभिषव कर्म में प्रयुक्त करें। फिर तुम अपने कर्म में लगाकर सोमरस को सिद्ध करो ।१। हे पाषाणो ! दुःख के सब कारणों को हमसे पृथक् करो। कुमति को हमारे निकट से दूर भगाओ। गौओं का दुग्ध हमारे लिए औषधरूप हो ।२। परस्पर मिले हुए पाषाण, एक विस्तृत पाषाण के सब ओर सुशोभित हैं। रस का वर्षण करने वाले सोम पर वे पाषाण अपना बल प्रदर्शित करते हैं ।३। हे पाषाणो ! सवितादेव सोम-याग करने वाले यजमान के लिए सोमाभिषव कर्म में तुम्हें नियुक्त करें ।४। (३३)

सूक्त १७६

(ऋषि: सूनरार्भवः । देवता-ऋभवः, अग्निः । छन्द-अनुष्टुप, गायत्री)

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वाधायसोऽश्नन्धेनुं न भारतम् ॥१
प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥२
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥३
अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥४॥३४

जब ऋभुगण कर्म-क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए तब जैसे बछड़े अपनी जननी गौ को घेर कर खड़े होते हैं, वैसे ही विश्व को धारण करने के लिए भूमण्डल को घेर कर खड़े हो गये ।१। हे स्तोता ! अग्नि मेधावी हैं। उन्हें देवताओं के योग्य स्तोत्र से अपने अनुकूल करो । वह विधि-पूर्वक हमारे यज्ञीयद्रव्य को देवताओं के पास पहुंचावें ।२। अग्नि वही हैं, जो देवताओं के पास जाते हैं । यह होता हैं इन्हें यज्ञ कर्म की कामना से स्थापित किया जाता है । यह रथ के समान ही हव्य-वाहक हैं। यह अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त हैं । यह यज्ञ की सम्पन्नता के ज्ञाता ऋत्विजों द्वारा घिरे रहते हैं ।३। अग्नि का प्राकट्य अमृत के समान उपकारी है । यह अपने उपासकों के रक्षक हैं । यह बलवानों में भी बलवान हैं । यह परम आयु को बढ़ाने के लिए हमारे अनुष्ठान में प्रकट हुए हैं ।४।   (३४)

सूक्त १७७

(ऋषि—पतङ्गः प्राजापत्यः । देवता-मायाभेदः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥१
पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः ।

कर्म में लगाओ ।१। हे राजन् ! जो हमारे विपरीत पक्ष वाले हैं, जो हमारी हिंसा की अभिलाषा करने वाले शत्रु, सेना एकत्र कर संग्राम के लिए आते हैं और जो हमसे बैर करते हैं, तुम उन सबको हराकर भगाओ ।२। हे राजन् ! तुमने सविता देव की अनुकूलता प्राप्त की है। सोम भी तुम्हारे प्रति अनुकूल हुए हैं। सब प्राणियों ने तुम्हारे प्रति अपनी अनुकूलता प्रकट की है। अतः तुम इस विश्व में सबके प्रिय हुए हो ।३। हे देवगण ! इन्द्र जिस अन्न के द्वारा कर्मों में प्रवृत्त होकर अन्नवान्, ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ हुए हैं, उसी अन्न के द्वारा मैं भी यज्ञानुष्ठान के द्वारा शत्रुओं से मुक्ति पा सका हूं ।४। मैंने अपने शत्रुओं को मार डाला, अब मेरे शत्रु नहीं रहे। मैं विपक्षियों का निवारण कर राज्य का अधिपति हो गया हूँ। इस देश के सब प्राणियों और राज्याधिकारिग्रों आदि का भी मैं स्वामी बना हूं ।५। (३२)

सूक्त १७५

(ऋषि—ऊर्ध्वग्रावाबुंदः। देवता—ग्रावाणः। छन्द—गायत्री)

प्र वो ग्रावाण सविता देव सुवतु धर्मणा। धूर्षु युज्यध्वं सुनत ॥१

ग्रावणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम्। उस्राः कर्तन भेषजम् ॥२

ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः। वृष्णे दधतो वृष्ण्यम् ॥३

ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा।
यजमानाय सुन्वते ॥४।३३

हे सोम के निष्पीड़नकारी पाषाणो ! सवितादेव तुम्हें अपने बल से सोमाभिषव कर्म में प्रयुक्त करें। फिर तुम अपने कर्म में लगाकर सोमरस को सिद्ध करो ।१। हे पाषाणो ! दुःख के सब कारणों को हमसे पृथक् करो। कुमति को हमारे निकट से दूर भगाओ। गौओं का दुग्ध हमारे लिए औषधरूप हो ।२। परस्पर मिले हुए पाषाण, एक विस्तृत पाषाण के सब ओर सुशोभित हैं। रस का वर्षण करने वाले सोम पर वे पाषाण अपना बल प्रदर्शित करते हैं ।३। हे पाषाणो ! सवितादेव सोम-याग करने वाले यजमान के लिए सोमाभिषव कर्म में तुम्हें नियुक्त करें ।४। (३३)

सूक्त १७६

(ऋषिः सूनरार्भवः । देवता-ऋभवः, अग्निः । छन्द-अनुष्टुप, गायत्री)

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वाधायसोऽश्नन्धेनुं न भारतम् ॥१
प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥२
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥३
अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥४।३४

जब ऋभुगण कर्म-क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए तब जैसे बछड़े अपनी जननी गौ को घेर कर खड़े होते हैं, वैसे ही विश्व को धारण करने के लिए भूमण्डल को घेर कर खड़े हो गये ।१। हे स्तोता ! अग्नि मेधावी हैं। उन्हें देवताओं के योग्य स्तोत्र से अपने अनुकूल करो । वह विधि-पूर्वक हमारे यज्ञीयद्रव्य को देवताओं के पास पहुंचावें ।२। अग्नि वही हैं, जो देवताओं के पास जाते हैं । यह होता हैं इन्हें यज्ञ कर्म की कामना से स्थापित किया जाता है । यह रथ के समान ही हव्य-वाहक हैं। यह अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त हैं । यह यज्ञ की सम्पन्नता के ज्ञाता ऋत्विजों द्वारा घिरे रहते हैं ।३। अग्नि का प्राकट्य अमृत के समान उपकारी है । वह अपने उपासकों के रक्षक हैं । यह बलवानों में भी बलवान हैं । यह परम आयु को बढ़ाने के लिए हमारे अनुष्ठान में प्रकट हुए हैं ।४। (३४)

सूक्त १७७

(ऋषि—पतङ्गः प्राजापत्यः । देवता-मायाभेदः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥१
पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अंतः ।

तां द्युोतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥२
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३।३५

मेधावी जनों ने एक पतंग को देखा और मन में विचार किया कि उस पर आसुरी माया का प्रभाव पड़ चुका है । ज्ञानी जनों ने कहा कि यह समुद्र के समान परमात्मा में विलीन होना चाहता है । तब उन्होंने विधाता के तेज में प्रविष्ट होने की कामना की ।१। मन ही मन शब्द को धारण करते हुए पतंग को गर्भकाल में ही गंधर्व ने वाणी की शिक्षा दी । यह वाणी दिव्य एवं बुद्धि की अधिष्ठात्री है । यही स्वर्ग का सुख प्राप्त कराती है । सत्य मार्ग पर चलने वाले मेधावी जन इस वाणी की सदा रक्षा करते हैं ।२। इन्द्रियों के पालकर्त्ता प्राण का कभी नाश नहीं होता । वह कभी पास और कभी दूर तथा विभिन्न मार्गों में विचरण करता रहता है । वह कभी एक-एक वस्त्र धारण करता है और कभी अनेक वस्त्रों को एक साथ पहनता है। इस प्रकार उसका जगत् में आवागमन बारम्बार लगा रहता है ।३। (३५)

सूक्त १७८

(ऋषि—अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः । देवता—तार्क्ष्यः । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१
इन्द्रस्येव रातिमा जोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥२
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ।३।३६

जिस महान् पराक्रमी गरुड़ को सोम के लाने लिए देवताओं ने भेजा था, जो विपक्षियों को जीतने वाला, शत्रुओं के रथों को वशीभूत करने वाला, सेनाओं को संग्राम भूमि की ओर प्रेरित करने वाला है तथा जिसके रथ को कोई हिंसित नहीं कर सकता, उसी तार्क्ष्य का हम कल्याण

की इच्छा करते हुए आह्वान करते हैं ।१। हम तार्क्ष्य (गरुड़) की दान-शक्ति का आह्वान करते हैं, जैसे इन्द्र से हम उनके दान की याचना करते हैं, वैसे ही तार्क्ष्य से करते हैं । हम अपने कल्याण के लिए और विपत्ति से नौका के समान पार पाने के निमित्त उनकी दान-शक्ति का आश्रय ग्रहण करते हैं । हे आकाश पृथिवी ! तुम महान्, सर्व व्यापक और गम्भीर हो । हम तुम्हारे आश्रय में रहकर यात्रा-मार्ग में मृत्यु को कदापि प्राप्त न हों ।२। सूर्य जैसे अपने तेज द्वारा वर्षा के जल की वृद्धि करते हैं । वैसे ही तार्क्ष्य ने चार वर्णों और निषाद को शीघ्र ही ऐश्वर्य से भर दिया । उन तार्क्ष्य की गति हजारों धनों को देने वाली है, जैसे बाण अपने लक्ष्य की ओर चलता है तब उसे कोई रोक नहीं सकता ।३। (६)

सूक्त १७९

(ऋषि—शिविरौशीनरः, प्रतर्दनः काशिराजः, वसुमना रौहिदश्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥१
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥३७

हे ऋत्विजो! उठकर इन्द्र के योग्य यज्ञ-भाग को प्रस्तुत करो । यदि यज्ञीय हव्य का पाक हो चुका है तो यज्ञ करो और यदि अभी अपक्व है तो उसके पाक-कर्म को शीघ्रता से पूर्ण करो ।१। हे इन्द्र ! हव्य का पाक हो चुका है । तुम हमारे पास आगमन करो । सूर्य अपने दैनिक मार्ग में आधे से कुछ कम मार्ग की यात्रा कर चुके हैं । जैसे कुल की रक्षा करने वाले पुत्र इधर-उधर जाने वाले गृहस्वामी के आगमन की

प्रतीक्षा करते हैं,उसी प्रकार इस यज्ञ में सभी बन्धुजन यज्ञ योग्य पदार्थों को एकत्र कर तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।२। गौ के थन में दुग्ध का प्रथम पाक होता है । फिर वह दुग्ध अग्नि में पकाया जाता है तब पाक की श्रेष्ठ क्रिया पूर्ण होती है । उस समय वह नवीन रूप में और निर्दोष हो जाता है । हे इन्द्र ! तुम बहुत से धनों को बाँटते हो मध्याह्नकालीन यज्ञ में जो 'दध्निधर्माख्य' हवि तुम्हें अर्पित की जाती है, उस हवि को तुम अत्यन्त रुचि के साथ सेवन करो ।३। (३७)

सूक्त १८०

(ऋषि--जयः । देवता—इन्द्रः । छन्द— त्रिष्टुप्)

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रुञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतानाम् ॥१
मृगो नः भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्तालिह वि मृधो नुदस्व ॥२
इन्द्र क्षत्रमभि बाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥३।३८

हे इन्द्र ! तुम्हारा बहुतों ने आह्वान किया । तुम्हारा तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है । तुम विपक्षियों को पराभूत कर भगा देते हो । तुम्हारा दान यहाँ अवस्थित हो । तुम अपने दक्षिण हस्त द्वारा धन प्रदान करो,क्योंकि तुम धन राशि के अधिपति हो ।१। पर्वत पर रहने वाला, कुत्सित पाँव वाला पशु जैसे विकराल रूप वाला होता है,वैसे ही विकराल रूप में तुम अत्यन्त दूरस्थ धाम स्वर्ग से यहाँ आये हो । हे इन्द्र ! तुम अपने महान् वज्र को तीक्ष्ण करो और उसके द्वारा शत्रुओं तथा विपक्षियों को मार कर भगाओ ।२। हे इन्द्र ! तुम उत्पन्न होते ही इतने तेजस्वी हुए हो कि अत्याचारियों के दुष्ट कर्मों को रोकते हो । तुम धर्मानुयायी पुरुषों के अभीष्टों को सिद्ध करते हो और शत्रुता करने वाले पापियों को ललकारते हो इस जगत् को तुमने देवताओं के पालनार्थ विस्तृत किया है ।३।(३८)

सूक्त १८१

(ऋषि—प्रथो वसिष्ठः, सप्रथो भारद्वाजः, धर्मः, सोर्यः । देवता-विश्वेदेवा छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥१
अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोभरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥२
तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥३।३६

वसिष्ठ वंशज प्रथ और भारद्वाज-वंशज सप्रथ हैं । उनमें से वसिष्ठ तेजस्वी, सविता, विष्णु और धाता के निकट से रथन्तर सोम को ले आए हैं । वह अनुष्टुप् छन्द वाला मन्त्र धर्म नामक हविका शोधन करने वाला और श्रेष्ठ है ।१। जिस बृहत् सोम द्वारा अनुष्ठान किया जाता है तथा जो तिरोहित था,इस बृहत् को सविता आदि देवताओं ने प्राप्त किया था । तेजस्वी सविता, धाता, अग्नि और विष्णु के पास से उस बृहत् को भारद्वाज ले आये ।२। अभिषेक की क्रिया को सम्पन्न करने वाला धर्म (यजुर्मन्त्र) यज्ञ के कार्य में मुख्य रूप से उपयोगी है । धाता आदि देवताओं ने उसे ध्यान के द्वारा प्राप्त किया था । धाता, विष्णु और सूर्य के पास से उस बृहत् को पुरोहितगण ले आये ॥३॥ (३६)

सूक्त १८२

(ऋषि—तपूर्मूर्धा बार्हस्पत्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥१
नराशंसो नोऽवतु प्रजाये शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ।।२

तपुमूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥३।४०

बृहस्पति दुर्गति का नाश करें। हमारे पाप को दूर करने के लिए हमारे स्तोत्र को समृद्ध करें। वह यजमान के रोग और भय को निकाल कर ले जाँय और समस्त अमङ्गलों का नाश करें।१। नाराशस नामक अग्नि प्रयाज में हमारे रक्षक हों। अनुयाज में भी वे हमारा कल्याण करने वाले हों। वे हमारे अकल्याण और दुर्बुद्धि का नाश करें। यजमान के रोग और भय को निकाल कर ले जाँय और समस्त अमंगलों को भी नष्ट करें।२। स्तोत्र से विद्वेष रखने वाले राक्षसों को वृहस्पति भस्म कर दें। उनके इस यत्न से हिंसाकारी राक्षसों का नाश होगा। वे हमारी कुबुद्धि व अकल्याण का नाश करें। वे यजमान के रोग को दूर करें और उसे भय रहित बनावें ॥३॥ [४०]

सूक्त १८३

(ऋषि—प्रजावन्प्राजापत्यः। देवता—अन्वृचं यजमानयजमानपत्नी-होत्राशिषः। छन्द—त्रिष्टुप्)

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तदसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥१
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥२
अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥३।४१

हे यजमान ! हृदय-चक्षु द्वारा मैंने तुम्हें देखा है। तुम तपस्या द्वारा उत्पन्न होकर ज्ञानी हुए हो। तपस्या के द्वारा ही तुम समृद्धि को पा सके हो। तुम यहाँ पुत्र की कामना करते हो, इसलिए पुत्र को प्राप्त करो और धन लाभ करते हुए इस लोक में रहो।१। हे भार्ये ! हृदय-चक्षु द्वारा मैंने तुम्हें देखा है। तुम श्रेष्ठ रूप वाली हो। तुम यथा समय अपत्य कामना करती हो तुमने पुत्र की कामना की है अतः तुम्हारी वह कामना

सर्वथा फलवती हो ।२। मैं होता हूं, वृक्षादि फलयुक्त करता हूँ। मैं अन्य प्राणियों को भी अपत्यवान् करता हूँ। मैं पृथिवी पर प्रजोत्पादन कर्म करता हूं और यज्ञानुष्ठान द्वारा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ हूँ ।।३।।[४१)

सूक्त १८४

(ऋषि— त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णूर्वा प्राजापत्य: । देवता—लिङ्गक्ता: (गर्भार्थाशी:) । छन्द—अनुष्टुप्)

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।.१
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुरस्करस्रजा ।।२
हिरण्मयी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
ततेगर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ।।३।४२

विष्णु इस नारी को अपत्यवती करें। त्वष्टा इसे प्रजनन योग्य बनावें प्रजापति इसे गर्भ-शक्ति दें और धाता इसे गर्भ धारण योग्य बनावें ।१। हे सिनीवाली, हे सरस्वती ! इसके गर्भ की रक्षा करो। हे अश्विनीकुमारो ! तुम स्वर्णिम कमल से अलंकृत होते हो। तुम इस नारी के गर्भ का पालन करो। हे पत्नी ! अश्विनीकुमारों ने तुम्हारे जिस गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिये सुवर्णमय दो अरणियों को परस्पर घिसा है, दशवें मास में प्रसव होने पर उसी शिशु को हम यहाँ बुलाते हैं ।३। (४२)

सूक्त १८५

(ऋषि—सत्यधृतिर्वारुणि: । देवता—अदिति: (स्वस्त्यनम्) । छन्द-गायत्री)

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्ष वरुणस्य ।।१
नहि तेषमामा चन नाध्वसु वारणेषु । ईये रिपुरघशंसः ।।२

यस्मैपुत्रासोअदितेःअजीवसेमर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३।४३

मित्र, अर्यमा और वरुण का अत्यन्त तेज वाले, महान् और दुर्धर्ष आश्रय को हम प्राप्त हों ।१। उक्त तीनों देवताओं के आश्रय में जो निवास करते हैं, उन पुरुषों पर घर, मार्ग, वन आदि बीहड़ स्थानों में भी वैरियों की हिंसक-गति व्यर्थ हो जाती है ।२। उक्त तीनों अदिति के पुत्र हैं । जिसे निरन्तर ज्योति प्रदान करते हैं, उसका जीवन सङ्कट-ग्रस्त नहीं होता और शत्रु के हिंसामय यत्न उसके प्रति निरर्थक हो जाते हैं ।।३।। [४३]

सूक्त १८६

(ऋषि—उलो वातायनः । देवता—वायुः । छन्द—गायत्री)

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्रणआँयूषितारिषत् ।१
उत वात पितासि न उत भ्रातोतनः सखा । स नोजीवातवेकृधि ।।२
यददो वात ते गृहे मृतस्य निर्धिर्हितः । ततोनो देहि जीवसे ।।३।४४

वायु देवता औषधि के समान गुणकारी होकर हमारे पास आवें । वे हमारी आयु को बढ़ावे और मगलमय तथा सुखकारी हों ।१। हे वायो ! तुम हमारे पिता और भाई हो । हमारे जीवन के लिए औषधियों को गुणवती करो ।२। हे वायो ! तुम्हारे धाम में अमृत की जो निधि प्रतिष्ठित है, उसके द्वारा हमारे शरीर को जीवन दो ।।३।। [४४]

सूक्त १८७

(ऋषि—वत्स आग्नेयः । देवता—अदितिः । छन्द—गायत्री)

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः ।।१
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः ।।२
यो रक्षांसि निजूर्वतिवृषा शुक्रेण शोचिषा । सनः पर्षदतिद्विषः ।।३
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं चपश्यति । सनः पर्षदतिद्विषः ।।४
यो अस्य पारे रजसः शुक्रोअग्निरजायत । सनःपर्षदतिद्विषः ।।५।४५

हे स्तोताओ ! मनुष्यों की कामनाओं के सिद्ध करने वाले अग्नि की स्तुति करो । वे शत्रु के हाथ से हमारी रक्षा करें ।१। यह अग्नि अत्यन्त दूरस्थ धाम से अन्तरिक्ष को लाँघ कर यहाँ आये हैं, यह हमें शत्रु के हाथ से रक्षित करें ।२। यह अग्नि जल की वर्षा करने वाले और अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से राक्षसों को मारने वाले हैं । यह हमें शत्रु के हाथ से रक्षित करें ।३। अग्नि सब लोकों का पृथक्-पृथक् निरीक्षण करते हैं और एकत्र भाव से भी देखते हैं । वे हमें शत्रु के हाथ से छुड़ावें ।४। उन्हीं अग्नि ने स्वर्ग के ऊपर श्रेष्ठ तेजोमय रूप से जन्म धारण किया । वे हमें शत्रु के हाथ से छुड़ावें ।।५।। [४५]

सूक्त १८८

(ऋषि—श्येन आग्नेयः । देवता—अग्निर्जातवेदाः । छन्द—गायत्री)

प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम् । इदं नो बर्हिरासदे ।।१
अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्यमीलहुषः । महीमियर्मिसुष्टुतिम् ।।२
या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः ।
ताभिर्नो यज्ञमिवन्तु ।।२।४६

हे पुरोहितो और यजमानो ! अग्नि मेधावी हैं, तुम उन्हें प्रदीप्त करो । वे अन्नवान् हैं और चारों दिशाओं को व्याप्त करते हैं । वे हमारे कुश पर विराजमान हों ।१। मेधावी यजमान अग्नि के पुत्र रूप हैं । अग्नि वर्षा के जल को सींचते हैं । मैं इन अग्नि के लिए सुन्दर स्तोत्र प्रस्तुत करता हूं ।२। हे अग्ने ! तुम अपनी तेजस्विनी धूम्रमयी शिखाओं द्वारा देवताओं को हवि पहुंचाते हो । तुम उन देवताओं के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो ।।३।। [४६]

सू १८९

(ऋषि–सार्पराज्ञी । देवता–सार्पराज्ञी सूर्यो वा । छन्द–गायत्री)

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ।।१
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानतो व्यख्यन्महिषो दिवम् ।।२
त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ।।३।४७

महान् तेजस्वी और गतिपारायण सूर्य उदित होकर अपनी मातृभूत-पूर्व दिशा से मिलते हैं । फिर वे अपने पिता आकाश की ओर गमन करते हैं ।१। सूर्य के देह से प्रकाश निकलता है । वह प्रकाश इनके प्राण के मध्य से प्रकट हुआ है । इन्होंने महान् होकर व्योम को व्याप्त कर लिया है ।२। सूर्य के तीसों स्थान सुशोभित हैं । सूर्य गतिमान् हैं । इनके लिए स्तुतियों का पाठ होता है । यह अपनी रश्मियों से अलंकृत हुए नित्यप्रति प्रकाशित होते हैं ।।३।। [४७]

सूक्त १९०

(ऋषि–अघमर्षणो माधुच्छन्दसः । देवता–भाववृतम् । छन्द–अनुष्टुप्)

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।।१
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ।।२
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।३।४८

तेजोमय तप के द्वारा यज्ञ और सत्य की उत्पत्ति हुई । फिर दिवस

और रात्रि उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् जल से परिपूर्ण समुद्र उत्पन्न हुआ ।१। जल से परिपूर्ण समुद्र से संवत्सर की उत्पत्ति हुई। ईश्वर ने दिवस रात्रि की रचना की। निमिष आदि से युक्त विश्व के ईश्वर ही अधिपति हैं ।२। प्राचीनकाल के अनुसार ही ईश्वर ने सूर्य, चन्द्र, स्वर्ग लोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष की रचना की ॥३॥ [४८]

सूक्त १९१

(ऋषि—संवननः। देवता—अग्नि, संज्ञानम्। छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥२

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४।४९

हे अग्ने ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम सब प्राणियों में निवास करते हो। तुम्ही यज्ञ-वेदों पर प्रदीप्त होते हो। तुम हमें धन प्रदान करो ।१। हे स्तोताओ ! तुम एकत्र होओ। समान रूप से स्तोत्र का उच्चारण करो। तुम समान मन वाले होओ। जैसे देवगण समान मति वाले होकर यज्ञ में हविरत्न ग्रहण करते हैं, वैसे ही तुम भी समान मति वाले होकर धनादि ग्रहण करने वाले होओ ।२। इन स्तोताओं के स्तोत्र समान हों यह एक साथ यहाँ आवें। इनके मन भी समान हों।

हे पुरोहितो, मैं तुम सबको समान मन्त्र से अभिमन्त्रित करता हुआ साधारण हवि द्वारा तुम्हारा यज्ञ करता हूं ।३। हे यजमानो और पुरोहितो । तुम्हारा कर्म समान हो । तुम्हारे हृदय और मन भी समान हों, तुम समान मति वाले होकर सब प्रकार सुसंगठित होओ ।४। (४९)

।। इति दशमं मण्डल समाप्तम् ।।

।। ऋग्वेद संहिता समाप्त ।।
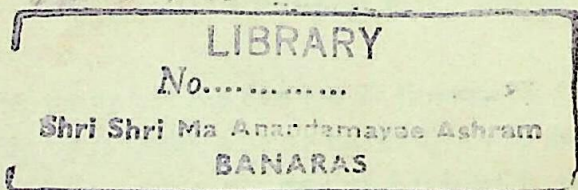
भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्मग्रन्थ

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित

१-चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	२७)	यजुर्वेद १ खण्ड	६)७५
अथर्व वेद २ खण्ड	१३)५०	सामवेद १ खण्ड	६)७५

२-१०८ उपनिषद् (३ खण्ड) २१)२५

३-षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	४)	सांख्य दर्शन	४)
योग दर्शन	४)	वैशेषिक दर्शन	४)
न्याय दर्शन	४)	मीमांसा दर्शन	५)

४-२० स्मृतियाँ २ खण्ड — १५)

पुराण

५-शिव (२ खण्ड)	१५)	वायु (२ खण्ड)	१५)
विष्णु (२ खण्ड)	१५)	अग्नि (२ खण्ड)	१५)
मार्कण्डेय (२ खण्ड)	१५)	गरुड़ (२ खण्ड)	१५)
हरिवंश (२ खण्ड)	१५)	भविष्य (२ खण्ड)	१५)
पद्म (२ खण्ड)	१५)	देवीभागवत (२ खंड)	१५)
लिङ्ग (२ खण्ड)	१५)	वामन (२ खण्ड)	१५)
मत्स्य (२ खण्ड)	१५)	ब्रह्मवैवर्त (२ खंड)	१५)
कूर्म (२खण्ड)	१५)	ब्रह्म (२ खण्ड)	१५)
स्कन्द (२ खण्ड)	१५)	नारद (२ खण्ड)	१५)
सूर्य (१ खण्ड)	७)५०	कल्कि (१ खण्ड)	७)७५

६-विष्णु रहस्य	७)५०	१६-छान्दोग्योपनिषद्	३)
७-शिव रहस्य	७)५०	१७-बृहदारण्यकोपनिषद्	३)
८-तन्त्रमहाविज्ञान २ खण्ड	१५)	१८-पञ्चदशी	१२)
९-योग वासिष्ठ (२ खण्ड)	१८)	१९-ज्ञानेश्वरी गीता	७)५०
१०-२४ गीता (२ खण्ड)	१५)	२०-पंचतंत्र	६)
११-मंत्रमहाविज्ञान४खण्ड	२४)	२१-मंत्र शक्ति से रोग निवारण	४)७५
१२-उपासना महाविज्ञान	७)५०		
१३-हस्तरेखामहाविज्ञान	८)		
१४-गृह्य सूत्र संग्रह	७)५०		
१५-वैदिक मंत्र शिक्षा	६)		

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ०प्र०)।

इन मूल्यों में परिवर्तन हो गया है।

नई सूची पत्र मंगा लें।